a Samaj Foundation Chenna

INDIRA PODA

2

R
027
196.2

Gurukul Kangri Coll

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंकिम ग्रंथावली

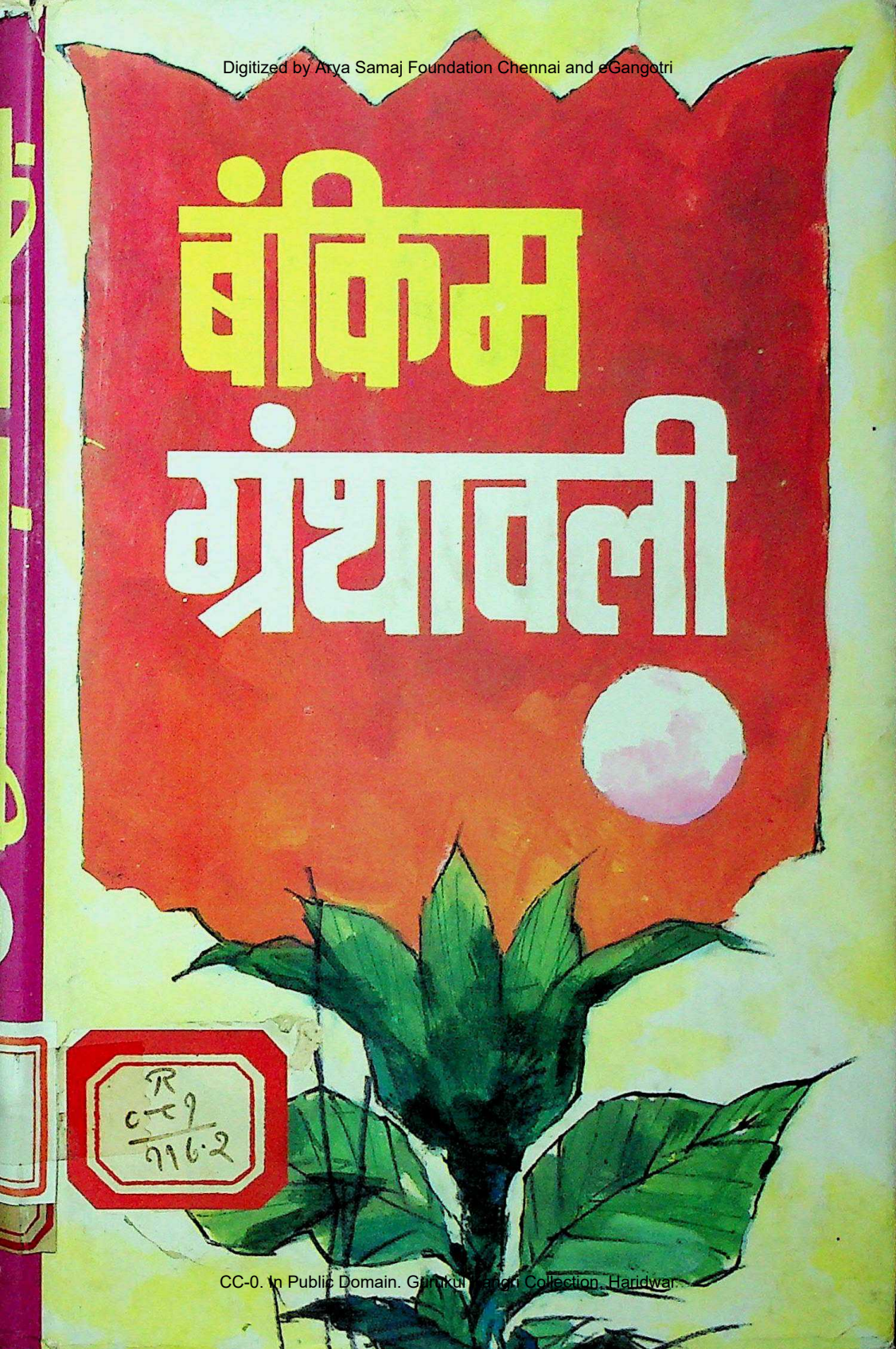

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
०८९
११६.२

१०८२८६

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
०८१
११६·२

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

वर्ग संख्या..... आगत संख्या 102986

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३०वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंकिम ग्रन्थावली

2

बंकिम चंद्र

शब्दलोक, मेरठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

BANKIM GRANTHAWALI
PART-2

© प्रकाशक

मूल्य : 300 रुपये मात्र / प्रकाशन वर्ष : 1997
प्रकाशक : शब्दलोक, छीपी तालाब, कचहरी रोड, मेरठ (उ. प्र.)
लेज़र टाईपसैटिंग : मानस टाईपसैटर, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
मुद्रक : एस. एन. प्रिंटर्स, एम-72, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

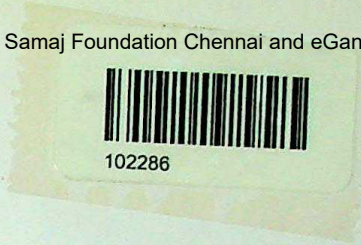

बंकिम
ग्रंथावली

2

102286

उत्तर प्रदेश भाषा संस्थान
के सौजन्य से

दुर्गेशनन्दिनी
देवी चौधरानी
इन्दिरा राधारानी
मृणालिनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
0-27
796.2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंकिम ग्रंथावली

दुर्गेशनन्दिनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्गेशनन्दिनी

1

एक अश्वारोही जंगल में अंधकारपूर्ण रात्रि के समय पगडंडी से आगे बढ़ रहा था। तभी उसके घोड़े के पैर से कोई कठोर वस्तु टकराई। अश्वारोही छलांग लगाकर घोड़े से कूद गया। उसने विद्युत के प्रकाश में देखा, सामने एक मन्दिर था। वह घोड़े को एक ओर छोड़कर मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ने लगा, क्योंकि उस समय तक तीव्र वर्षा होने लगी थी।

युवक ने मन्दिर के द्वार पर जाकर देखा, वह बन्द था। उसने जोर से द्वार थपथपाया परन्तु किसी ने द्वार न खोला। तब उसने जोर का धक्का लगाया और द्वार की सांकल नीचे जा गिरी। द्वार खुल गया। उसने अन्दर जाकर कहा, 'मन्दिर में कौन है ?'

युवक को प्रश्न का कोई उत्तर न मिला, परन्तु उसके कानों में कुछ अलंकारों की झंकार पड़ी। वह बोला, 'मन्दिर में जो भी है, वह सुन ले। मैं द्वार के निकट सहन में बैठा हूं। मेरे विश्राम में कोई विघ्न उपस्थित न करे। किसी ने विघ्न उपस्थित करने का प्रयास किया तो उसे उसका फल भोगना होगा।'

'आप कौन हैं ?' मन्दिर के मध्य नारी-कण्ठ का स्वर मुखरित हुआ।

'मेरा परिचय आप क्यों जानना चाहती हैं ?'

'हम बहुत भयभीत हैं।'

'मैं कोई भी हूं, आप निश्चिन्त होकर विश्राम करें। मेरे रहते किसी स्त्री का कोई अनिष्ट न होगा।'

'आपके आश्वासन से हमें धैर्य बंधा। हम यहां शैलेश्वर की पूजा करने आई थीं। आंधी-मेह आने पर हमारे दास-दासी हमें छोड़कर कहीं चले गए।'

'आप चिन्ता न करें। मैं प्रातः आपको आपके निवास-स्थान पर छोड़ आऊंगा।'

'शैलेश्वर आपका मंगल करें।' स्त्री ने कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्षा रुकने पर युवक ने मन्दिर के पुजारी के घर से दीपक लाकर मन्दिर में प्रकाश किया। उसने दीपक के प्रकाश में देखा, शिवमूर्ति के निकट दो रमणियां खड़ी थीं। उनमें से एक ने प्रकाश होते ही अपना घूंघट खींच लिया और सिर झुकाकर बैठ गई।

युवक बोला, 'आपका परिचय ज्ञात करने में संकोच हो रहा है, फिर भी क्या मैं परिचय ज्ञात करने का साहस कर सकता हूं ?'

ज्येष्ठा ने कहा, 'स्त्रियों का क्या परिचय ? जब वे अपने पति का नाम उच्चारण ही नहीं कर सकती तो कैसे परिचय दें ?'

नवीना घूंघट की ओट से युवक की ओर देख रही थी। तभी अनायास युवक की दृष्टि नवीना पर जा गिरी। दोनों की आंखें एक-दूसरे की आंखों से जुड़ गयीं।

ज्येष्ठा बोली, 'महाशय ! अब आंधी रुक गयी है। शायद अब हम पैदल वापस लौट सकें।'

'यदि आप अभी जाना चाहती हैं तो चलिए मैं आपको पहुंचा आता हूं।'

'आप हमें पहुंचा आएंगे, यह हमारा सौभाग्य है, परन्तु जब इस कन्या के पिता पूछेंगे कि हम रात्रि में किसके साथ आई हैं, तो हम क्या उत्तर देंगी ?'

'आप उत्तर देना कि आप महाराज मानसिंह के पुत्र जगतसिंह के साथ आई हैं।'

युवक के ये शब्द सुनकर दोनों स्त्रियां तत्काल उठकर खड़ी हो गई। छोटी शिवलिंग के पीछे सरक गयी। बड़ी बोली, 'युवराज ! अनजाने में हमसे कोई अपराध बन पड़ा हो तो क्षमा करना।'

'परिचय प्राप्त करने पर अपराध क्षमा किया जा सकता है। यदि परिचय न दिया तो दण्ड भुगतना होगा।'

नवीना ने मुस्कराकर कहा, 'दण्ड दीजिए। दासी दण्ड स्वीकार करेगी।'

'दण्ड यही है कि मैं आप लोगों के साथ जाकर आपको घर पहुंचा आऊंगा।'

ज्येष्ठा धर्मसंकट में फंसी थी। वह विशेष कारणवश नवीना का परिचय जगतसिंह को नहीं देना चाहती थी।

उसी समय मन्दिर के द्वार पर घोड़ों की टापें सुनाई दीं। जगतसिंह ने मन्दिर के बाहर जाकर देखा, लगभग सौ, उन्हीं के दल के राजपूत, चले आ रहे थे। वह अपने उन साथियों से आगे निकल आए थे।

एक सरदार ने सामने आकर जगतसिंह को प्रणाम किया। जगतसिंह ने उसे आदेश दिया, 'दो सैनिकों को निकट के ग्राम में भेजकर एक पालकी मंगाओ।'

सरदार ने आज्ञा का पालन किया।

जब जगतसिंह अपने सरदार से ये बातें कर रहे थे तो नवीना ने अपनी ज्येष्ठा से पूछा, 'विमला ! तुम राजपूत को अपना परिचय देने में संकोच क्यों कर रही हो?'

'तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मैं तुम्हारे पिता की उपस्थिति में दूंगी।'

जब तक पालकी लेने गए सैनिक पालकी लेकर लौटते, उन स्त्रियों के सेवक,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो आंधी आने पर निकट के गांव में चले गए थे, लौट आए। उन्हें देखकर जगतसिंह ने ज्येष्ठा से पूछा, 'ये लोग, जो पालकी लेकर आ रहे हैं, देखो, तुम्हारे आदमी तो नहीं हैं। ?'

विमला ने द्वार पर आकर उन्हें देखा और कहा, 'ये हमारे ही सैनिक हैं।'

जगतसिंह बोला, 'तब मैं विदा लूंगा। मैं उनके आने की प्रतीक्षा नहीं करूंगा। उनके निकट आने से मेरा अनिष्ट हो सकता है। शैलेश्वर से प्रार्थना है कि आप लोग सकुशल वापस पहुंच जाएं। आप यहां मुझसे भेंट होने का रहस्य एक सप्ताह तक गुप्त रखना। मैं तुम्हारी राजकुमारी का परिचय न पा सका यह रहस्य मेरे हृदय में स्मृति चिह्न बनकर रहेगा।' यह कहकर उसने अपना स्मृति-चिह्न, अपनी पगड़ी का मुक्ताहार, विमला को दे दिया।

'मैंने राजकुमारी का परिचय नहीं दिया, इसके लिए युवराज मुझे अपराधिनी न मानें। इसका निश्चय ही उपयुक्त कारण है। कृपया बताएं कि एक पखवाड़े के पश्चात् आपसे कहां भेंट होगी ?'

एक पखवाड़े पश्चात् मैं रात्रि में इसी मन्दिर में आऊंगा। मैं यहां न मिलूं तो समझना कि फिर कभी भेंट न होगी।'

'देवता आपकी रक्षा करें।' कहकर विमला ने प्रणाम किया।

जगतसिंह ने एक बार फिर राजकुमारी की ओर देखा और अपने घोड़े की पीठ पर चढ़कर घोड़े को ऐड़ लगाई।

2

जगतसिंह ने शैलेश्वर-मन्दिर से अपने सैनिकों के साथ प्रस्थान किया।

बंग देश में कतलूखां पठान द्वार मुगल प्रतिनिधि आजमखां और शाहबाजखां को परास्त किए जाने पर अकबर ने राजा मानसिंह को बंग देश भेजा था। मानसिंह के साथ उनका पुत्र जगतसिंह भी बंग देश गया था।

राजा मानसिंह ने जगतसिंह को अपनी अश्वारोहियों की सेना के साथ शत्रु-शिविर पर आक्रमण करने के लिए भेजा था। उसी कार्य को पूरा कर जगतसिंह शैलेश्वर-मन्दिर में आये थे।

शैलेश्वर-मन्दिर से प्रस्थान कर जगतसिंह अपने पिता के शिविर में आये तो वहां वह अपने सरदारों से मंत्रणा कर रहे थे। मानसिंह कह रहे थे, 'दिन-दिन गांव-परगने दिल्लीश्वर के हाथों से निकलते जा रहे हैं। पठान संख्या में हमसे अधिक हैं। उनके पास सुदृढ़ दुर्ग भी है। वे आक्रमण करके दुर्गों में सुरक्षित हो जाते हैं। मेरा विचार है कि सम्पूर्ण सेना का विनाश न कराकर थोड़ी सेना किसी दक्ष सेनापति के नेतृत्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भेजी जाए।'

एक सरदार बोला, 'महाराज, जहां पूरी सेना भेजने में खतरा है, वहां छोटी सेना भला क्या करेगी ?'

'मैं छोटी सेना आमने-सामने युद्ध करने के लिए नहीं भेजना चाहता। छोटी सेना गुप्त रूप में जाकर ग्रामवासियो पर पठानों के दमन को रोक सकती है।'

'इस कार्य के लिए मृत्यु के मुख में कौन जायेगा ?'

'क्या इतने राजपूतों और मुगलों में एक भी ऐसा वीर नहीं है, जो मृत्यु से न डरता हो।'

राजा मानसिंह के ये शब्द सुनकर पांच-सात मुगल और राजपूत एक स्वर में बोले, 'आज्ञा करें महाराज ! हम उद्यत हैं।'

'मुझे हर्ष हुआ तुम्हारा साहस देखकर। तुममें से जो सबसे छोटी सेना लेकर जाने को उद्यत हो, उसे जाने की आज्ञा दी जायेगी। मैं चाहता हूं वह वीर केवल दस हजार सैनिक लेकर जाये।'

जगतसिंह बोले, 'महाराज ! मुझे आज्ञा हो तो मैं पांच हजार सैनिकों को लेकर कतलूखां को सुवर्ण रेखा के उस पार खदेड़ आऊं।'

जगतसिंह का साहस देखकर महाराज मानसिंह स्तब्ध रह गये। वह बोले, 'पुत्र जगतसिंह ! लगता है तुम दुस्साहस दिखा रहे हो।'

जगतसिंह बोला, 'महाराज ! सेवक यदि प्रतिज्ञा पूरी कर मुगल-सम्राट की सेना के विनाश का कारण न बने तो राजदण्ड प्राप्त करे।'

महाराजा मानसिंह सहर्ष बोले, 'तुम क्षत्रिय-धर्म का पालन करने के लिए जाओ जगतसिंह। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं।'

जगतसिंह ने उसी दिन पांच हजार सैनिकों को साथ लेकर मान्दारण नगर की दिशा में प्रस्थान किया। जिन रमणियों से जगतसिंह की शैलेश्वर-मन्दिर में भेंट हुई थी, उन्होंने उसी नगर की ओर प्रस्थान किया था।

मान्दारण में कई गढ़ थे, इसीलिये उसे मान्दारण गढ़ नाम से पुकारा जाता था। नगर के मध्य आमोदर नदी बहती थी। यहां के एक विशाल गढ़ का निर्माण हुसेनशाह के सेनापति इस्माइलगाजी ने कराया था। इस समय वह गढ़ वीरेन्द्रसिंह के अधिकार में था। उसके पिता जयधरसिंह, उसका विवाह एक स्वजातीय कन्या से कराना चाहते थे, जिससे वह पर्याप्त सम्पत्ति और धन का स्वामी बनता, परन्तु उसने एक पति पुत्र विहीना दरिद्रा की पुत्री से चुपके से विवाह कर लिया। इससे क्रुद्ध होकर पिता ने पुत्र को घर से निकाल दिया था।

वीरेन्द्रसिंह ने योद्धा-वृत्ति प्राप्त करने के लिए दिल्ली को प्रस्थान किया और उसकी पत्नी गर्भवती होने के कारण अपनी मां के पास रही।

वीरेन्द्रसिंह के चले जाने पर उनके पिता ने पुत्र की खोज की, परन्तु उनका कहीं पता न चला। निराश होकर वह उसकी पत्नी को अपने घर ले आये, जहां उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पुत्री को जन्म दिया, परन्तु दुर्भाग्यवश मां की मृत्यु हो गयी।

दिल्ली जाकर वीरेन्द्रसिंह सम्राट अकबर की सेना में भर्ती हो गए और उच्चपद प्राप्त किया। कई वर्ष पश्चात् जब उन्हें पिता का देहान्त होने का समाचार मिला तो वह घर लौटे। उनके साथ दिल्ली से उनके कई सहचर भी आये। उनमें एक परिचारिका विमला और एक परमहंस अभिराम स्वामी थे।

विमला वीरेन्द्रसिंह की कन्या की देखभाल करती थी। विमला यौवन-काल में परम सुन्दरी रही होगी। इस आयु में भी उसका रूप अद्वितीय था।

विमला विधवा थी अथवा सधवा, यह कोई नहीं जानता था। वह आचरण सभी सधवा के करती थी।

वीरेन्द्रसिंह की पुत्री दुर्गेशनन्दिनी को वह अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी।

अभिराम स्वामी कभी-कभी देश-भ्रमण के लिए चले जाते थे। पुरवासी समझते थे कि अभिराम स्वामी वीरेन्द्रसिंह के दीक्षा गुरु हैं। वीरेन्द्रसिंह उनका जैसा आदर करते थे, उससे यही प्रकट होता था। वह अपना कोई भी कार्य अभिराम स्वामी से पूछे बिना न करते थे।

विमला और अभिराम स्वामी के अतिरिक्त एक आसमानी नाम की दासी भी दिल्ली से वीरेन्द्रसिंह के साथ मान्दारण आयी थी।

वीरेन्द्रसिंह का मान्दारण में एकछत्र राज्य था, परन्तु राज्य बहुत छोटा ही था। उसकी समानता पठानों तथा मुगलों की सत्ता से नहीं की जा सकती थी।

जगतसिंह को ज्ञात हुआ था कि पठानों की दृष्टि मान्दारण पर गड़ी है। इसीलिए उसने पहिले मान्दारण की दिशा में ही प्रस्थान किया था।

3

दुर्गेशनन्दिनी और विमला के शैलेश्वर-मन्दिर से निर्विघ्न लौटने के कुछ दिन पश्चात् जब वीरेन्द्रसिंह अपने दीवानखाने में बैठे थे तो अभिराम स्वामी उनके पास आये।

वीरेन्द्रसिंह ने उन्हें उठकर प्रणाम किया।

अभिराम स्वामी वीरेन्द्रसिंह के निकट बैठ गए। फिर बोले, 'वीरेन्द्र ! आज तुमसे एक विशेष बात कहनी है।'

'आज्ञा कीजिए गुरुदेव !'

'बंग देश में मुगल और पठानों के बीच शीघ्र ही एक बड़ा घोर युद्ध होने की संभावना है।'

'मुझे ज्ञात है गुरुदेव !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इस परिस्थिति में तुमने अपना क्या कर्तव्य निश्चित किया ?'

'जो भी शत्रु मान्दारण की ओर दृष्टि उठाएगा, उसका अपने बाहुबल से सामना करूंगा।'

'यह तुम जैसे वीर का उपयुक्त उत्तर है, परन्तु केवल वीरता से विजय प्राप्त नहीं होती। तुम वीरों में अग्रणीय अवश्य हो, परन्तु तुम्हारी सेना बहुत छोटी है। अपने से सौगुनी सेना को तुम कैसे खदेड़ पाओगे ? तुम्हें एक पक्ष की सहायता लेकर दूसरे पक्ष से युद्ध करना होगा। दोनों ही पक्षों से शत्रुता रखने से कोई लाभ न होगा, हानि ही होगी। मेरे विचार से तुम्हें एक पक्ष का सहारा लेना चाहिए।'

'आप किसका सहारा लेने को कहते हैं ?'

'हमने इस विषय में नक्षत्र-गणना करके देखा है वीरेन्द्र ! हमने देखा है कि मुगल-सेनापति का सहारा लेने में दुर्गेशनन्दिनी का हित है।'

यह सुनकर वीरेन्द्रसिंह का मुख मलिन हो गया।

अभिराम स्वामी बोले, 'मुगलों के पक्ष में होने से तुम्हारी पुत्री का मंगल तथा उनका विरोध करने में अमंगल होगा। हमने अपनी गणना का फल तुम्हें बतला दिया। अब तुम जैसा उचित समझो करो। द्वार पर कतलूखां का दूत खड़ा हुआ है। मेरे कहने पर द्वार-रक्षकों ने उसे अन्दर आने से रोक रखा है। दूत को अन्दर बुलाकर उचित उत्तर दो।'

वीरेन्द्र बोले, 'गुरुदेव ! जब तक मैंने दुर्गेशनन्दिनी को नहीं देखा था, तब तक मुझे उसकी याद भी नहीं थी। अब उसके अतिरिक्त संसार में मेरा अन्य कोई नहीं है। मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा। पहिले की बातों को भूलकर मैं मानसिंह का साथ दूंगा।'

दरबान दूत को लिवा लाया। दूत ने कतलूखां का पत्र वीरेन्द्र को दिया। पत्र में लिखा था, 'वीरेन्द्रसिंह ! एक हजार घुड़सवार और पांच हजार स्वर्ण-मुद्रा पठान-छावनी में भेज दो, नहीं तो मैं बीस हजार सेना गढ़ मान्दारण पर चढ़ाई करने को भेज दूंगा।'

वीरेन्द्रसिंह पत्र पढ़कर बोले, 'दूत ! अपने प्रभु से कहना कि वह सेना भेज दें।'

दूत ने सिर झुकाकर प्रस्थान किया।

विमला एक ओर खड़ी ये सब बातें सुन रही थी। वह दुर्गेशनन्दिनी की ओर चल दी।

दुर्गेशनन्दिनी खिड़की में बैठी नदी के पानी को देख रही थी। संध्या समय था। सूर्य लगभग छिप चुका था। रात्रि की कालिमा पानी के जल पर छा रही थी। नदी पार की अट्टालिका चित्रवत् दिखाई दे रही थी।

दुर्गेशनन्दिनी कमरे में बैठकर क्या कर रही थी ? क्या वह सांध्य-शोभा देख रही थी ? परन्तु उसकी आंखें भूमि की ओर क्यों थीं ? उसके ललाट पर पसीना क्यों था ? क्या वह गोचारण देख रही थी ? वह भी नहीं था। गाएं तो धीरे-धीरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने घर चली गई थीं। उसके चेहरे पर इतनी म्लानता क्यों थी ? वह किस चिन्ता में थी ?

दासी दीपक लेकर आई। दुर्गेशनन्दिनी एक पुस्तक पढ़ने बैठ गई। वह पढ़ना चाहती थी। उसने अभिराम स्वामी से संस्कृत सीखी थी। यह पुस्तक कादम्बिनी थी। कुछ देर पढ़कर विरक्ति से उसे रख दिया। दूसरी पुस्तक ले आई वासवदत्ता। उसे भी पढ़ती, कभी सोचती, फिर पढ़ती, फिर अन्य विचार में डूब जाती। वासवदत्ता भी भली न लगी। उसे छोड़कर वह गीतगोविन्द पढ़ने लगी। गीतगोविन्द कुछ अच्छी लगी। पढ़ते-पढ़ते मुस्कुराकर उसने पुस्तक को रख दिया। फिर शय्या पर लेट गई। सामने कलम दवात रखे थे। वह पलंग की पट्टी पर क, ल, घर, द्वार, वृक्ष, मनुष्य लिखने लगी। चारपाई की पट्टी स्याही से भर गई। जब जगह न रही, तब चेतना लौटी। वह मुस्कुराई, फिर लिखा, फिर हंस-हंसकर पढ़ने लगी। क्या लिखा था ? 'वासवदत्ता', 'विमला', और क्या लिखा था ?

'कुमार जगतसिंह !'

लज्जा से दुर्गेशनन्दिनी के चेहरे पर लाली छा गई।

'कुमार जगतसिंह !' दुर्गेशनन्दिनी ने दो बार, तीन बार, कई बार कहा। वह द्वार की ओर देखती, फिर पढ़ती, फिर देखती, फिर पढ़ती, मानो चोर बनकर वह किसी की चोरी कर रही थी।

अधिक देर पढ़ने का साहस न हुआ। उसने पानी लेकर वह सब धो डाला। फिर कपड़े से अच्छी तरह पोंछा।

परन्तु 'कुमार जगतसिंह' न मिट सका। ये अक्षर उनके हृदय पर लिख गए थे। वह इसी धोने-पोंछने में लगी थी कि तभी विमला वहां पर आ गई। उसने उससे कुछ बातें कीं।

विमला दुर्गेशनन्दिनी के पास से सीधी अभिराम स्वामी की कोठरी में गई। अभिराम स्वामी आसन पर बैठे थे। जगतसिंह से जिस प्रकार विमला और दुर्गेशनन्दिनी की भेंट हुई थी, विमला ने वह सब अभिराम स्वामी को सुनाया। वह बोली, 'आज चौदहवां दिन है कल पक्ष पूरा होगा।'

'तुमने क्या निश्चय किया ?'

'उचित सलाह के लिए ही मैं आपके पास आई हूं।'

'मेरी सलाह यह है कि इसे अब मन में स्थान न दो।'

विमला दुःखी होकर चुप हो गई। अभिराम स्वामी बोले, 'तुम दुःखी क्यों हो गईं ?'

'दुर्गेशनन्दिनी का क्या होगा ?'

अभिराम स्वामी ने विस्मय के साथ पूछा, 'क्यों ? क्या उसके मनमें भी अनुराग का संचार हो गया है ?'

'आपसे क्या कहूं ? मैं चौदह दिन से उसकी भाव-गति को देख रही हूं। उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन में बहुत गहरे अनुराग का संचार हुआ है।'

परमहंस मुस्कुराकर बोले, 'तुम स्त्री हो। मन में अनुराग का लक्षण देखते ही गहरा अनुराग समझ बैठती हो। तुम दुर्गेशनन्दिनी के लिए चिन्तित न हो। इस विषय में कोई बातचीत न करने से वह शीघ्र ही जगतसिंह को भूल जाएगी।'

'नहीं-नहीं प्रभो ! यह बात ऐसी नहीं है। उसका स्वभाव बदल गया है। वह अब मुझसे या अपनी सहेलियों से हंसकर बातें भी नहीं करती। अब तो अधिक बोलती भी नहीं। वह दिन-रात न जाने क्या-क्या सोचती रहती है।'

यह सुनकर अभिराम स्वामी चुप हो गए। वह बहुत देर पश्चात् बोले, 'मैं समझता था कि केवल देखने भर से गहरा अनुराग उत्पन्न नहीं हो सकता। मैं अब क्या करूं? वीरेन्द्र क्या इस पर सहमत होंगे ?'

विमला ने कहा, मैंने इसी आशंका से अब तक कुछ नहीं कहा। मैंने जगतसिंह को परिचय भी नहीं दिया। अब यदि....।' कहते-कहते विमला के चेहरे का भाव बदल गया, 'अब यदि वह मानसिंह से मित्रता कर रहे हैं तो जगतसिंह को दामाद बनाने में उन्हें क्या आपत्ति हो सकती है ?'

'परन्तु मानसिंह क्यों राजी होंगे ?'

'युवराज इसके लिए स्वाधीन हैं।'

'जगतसिंह वीरेन्द्रसिंह की कन्या से क्यों विवाह करेंगे ?'

'जाति और कुल का दोष किसी पक्ष में भी नहीं है। ये भी तो यदुवंशी क्षत्री हैं।'

'यदुवंशी की कन्या मुसलमान के साले के पुत्र से भला कैसे ब्याही जा सकती है ?'

विमला ने उदासीन होकर कहा, 'नहीं क्यों होगा ? क्या यदुवंशी का कुल घृणा के योग्य है ?'

यह सुनकर परमहंस की आंखों से चिनगारियां निकल पड़ीं। वह कठोर स्वर में बोले, 'पापिनी ! अपने अभाग्य को भूली नहीं क्या ? दूर हो यहां से।'

4

जगतसिंह ने छावनी से प्रस्थान कर पठान-सेना का दिल दहला दिया। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि पांच हजार सेना लेकर कतलूखां के पचास हजार जवानों को सुवर्ण रेखा से पार कर देंगे। उन्होंने छावनी से आकर दो सप्ताह में जो पराक्रम दिखाया, उसे सुनकर मानसिंह बोले, 'मेरा कुमार राजपूतों के गौरव की रक्षा करेगा।'

जगतसिंह जानते थे कि पांच हजार सेना से पचास हजार को विमुख करना सरल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम नहीं है। पराजय या मृत्यु को वह निश्चित मानकर चले थे। उन्होंने सामने जमकर युद्ध करने की प्रणाली नहीं अपनाई। वह अपनी सेना को वन या ऊंची-नीची भूमि में छिपाकर रखते थे। वह जहां थोड़े से पठानों की सेना देखते, उसका सफाया कर डालते। उनके गुप्तचर फल, मछली आदि बेचने के बहाने अनेकों स्थानों पर भ्रमण करके पठान-सेना की गतिविधि का पता लगा लेते थे। समाचार पाकर जगतसिंह सावधानी से ऐसी जगह अपनी सेना को ले जाते जहां से वह पठानों पर आक्रमण कर सकते थे। यदि पठान अधिक संख्या में न होते तो मौका देखकर शेर की तरह उन पर टूटकर उनके टुकड़े-टुकड़े कर डालते। पठान यह नहीं समझते थे कि शत्रु इतना समीप है, इसलिए वे युद्ध के लिए तैयार न रहते थे।

इस प्रकार बहुत-सी पठान-सेना मारी गई और पठान बहुत घबरा गए। वे अब जगतसिंह की सेना के सामने जमकर युद्ध करने का यत्न करने लगे, परन्तु उन्हें यह पता नहीं था कि जगतसिंह की सेना है कहां। केवल यमदूत की तरह पठान-सेना को मृत्यु के समान जगतसिंह की सेना दिखाई देती थी और इस प्रकार उनका काम तमाम कर फिर न जाने कहां चली जाती थी। वह पांच हजार सेना को एक जगह न रखते थे। कहीं हजार, कहीं पांच सौ, कहीं दो हजार। इस तरह उसके कई भागों में रहने से शत्रु उसका पता न लगा पाते थे। पठान समझ न पाते थे कि राजपूत कहां हैं। कतलूखां के पास नित्य अपनी सेना के विनाश का समाचार पहुंचता था। परिणाम यह हुआ कि पठान-सेना का थोड़ी संख्या में किले से बाहर निकलना कठिन हो गया और इधर-उधर लूट-पाट बन्द हो गई। उनकी सेना किले में चली गई। उन्हें अब रसद इकट्ठी करनी कठिन हो गई। शत्रु-पीड़ित प्रदेश की मुक्ति का समाचार पाकर महाराजा मानसिंह ने पुत्र को लिखा, 'कुलतिलक ! मैं समझ गया कि तुम्हारे द्वारा पठानों की जबरदस्त हानि हुई है। तुम्हारी सहायता के लिए मैं दस हजार सेना और भेज रहा हूं।'

युवराज ने उत्तर दिया, 'महाराज की जैसी इच्छा। यदि और सेना आए, तो अच्छा ही है, नहीं तो आपके आशीर्वाद से पांच हजार सेना से ही मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करूंगा।'

कुमार बिना रोक-टोक रण जीतने लगे। आज उन्होंने सोचा, शिव मन्दिर में जिस सुन्दरी की सरल दृष्टि से वह पराजित हुए थे, उस सुन्दरी को वह भूल ही गए।

उधर अभिराम स्वामी ने विमला पर क्रुद्ध होकर उसे कुटिया से निकाल दिया था। दूसरे दिन संध्या समय विमला अपनी कोठरी में बैठी शृंगार कर रही थी। यौवन रूप से जाना जाता है। जिसमें रूप नहीं, वह सोलह वर्ष में बूढ़ी है। जिसके पास रूप है वह हर समय युवती है। जिसमें रस नहीं, वह सदा प्रवीणा है, जिसमें रस है, वह सर्वदा नवीना है। विमला का रूप अब भी झलमला रहा था।

विमला के होठों की लाली बता रही थी कि वह अभी युवती थी। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें देखकर कौन कहता कि वह चौबीस वर्ष से अधिक की थी। विमला युवती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। वह स्थिरयौवना थी। उसके बदन की कोमलता बता रही थी कि वह षोडशी थी। उसके केशों की घुंघराली लटें कान के पास से नीचे कपोलों तक लटक रही थीं।

विमला ने केश झाड़कर चोटी बनाई। इत्र-बसे रूमाल से मुंह साफ किया। रेशम की चोली पहनी। सोने के आभूषण पहिने। कसीदे की धोती पहिनी और मोतीजड़ी जूतियां।

विमला दुर्गेशनन्दिनी की कोठरी में गई तो दुर्गेशनन्दिनी ने विस्मय से कहा, 'यह क्या विमला ? यह श्रृंगार किसके लिए है ?'

'तुम्हें इन बातों से क्या मतलब ?' विमला ने कहा।

'सच कहो, कहां जाओगी ?'

'तुम से क्यों बताऊं कि मैं कहां जाऊंगी ?' विमला ने मुस्कुराकर कहा।

'कहां जाओगी, बोलो ना ?' दुर्गेशनन्दिनी ने फिर पूछा।

विमला बोली, 'भला बताओ तो मैं जानूं।'

दुर्गेशनन्दिनी विमला का मुंह देखने लगी।

विमला उसका हाथ पकड़कर बोली, 'सुनो' कहती हुई उसे खिड़की के पास ले गई। उसने धीरे से उसके कानमें कहा, -मैं शिव-मन्दिर में जाऊंगी। वहां किसी राजपुत्र से भेंट होगी।'

दुर्गेशनन्दिनी का बदन रोमांचित हो उठा। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। बस देखती रही उसकी ओर।

विमला बोली, 'अभिराम स्वामी से मैंने बातें की थीं। उनके विचार से जगतसिंह के साथ तुम्हारा विवाह नहीं हो सकता। तुम्हारे पिता राजी न होंगे। उनके सामने कुछ कहने से मार खानी होगी।'

'क्यों ? यदि यह बात है तो तुम क्यों जा रही हो ?'

'मैं राजपुत्र से कह आई थी कि आज रात को उनसे भेंट होगी। अभी परिचय दे दूं उन्हें, अन्य विचार बाद में करेंगे। राजपुत्र यदि तुम पर अनुरक्त हुए तो....।' विमला चुप हो गई।

दुर्गेशनन्दिनी ने उसके मुंह पर अपना हाथ रख दिया। फिर बोली, 'तुम्हारी बात सुनकर लज्जा आ रही है। तुम्हारी जहां इच्छा हो चली जाओ। मेरी बात किसी से न कहना। मेरे सामने और किसी की बात भी न कहना कभी।'

विमला हंसकर बोली, 'तुम इस छोटी-सी उम्र में प्रेम-समुद्र में क्यों कूदीं दुर्गेश?'

'तुम जाओ। मैं तुम्हारी कोई बात सुनना नहीं चाहती।'

'मैं मन्दिर में जाऊंगी।' विमला ने कहा।

'मैं क्या मना करती हूं ? जहां इच्छा हो, जाओ।'

'तब मैं नहीं जाऊंगी।' विमला रूठ गई।

'जाओ, जाओ, मैं कहती हूं जाओ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमला हंसने लगी। फिर बोली, 'मैं जाती हूं। मैं जब तक न आऊं, तब तक सोना नहीं।'

दुर्गेशनन्दिनी हंसने लगी। फिर बोली, 'मैं जाती हूं। मैं जब तक न आऊं, तब तक सोना नहीं।'

दुर्गेशनन्दिनी ने मन में कहा, 'नींद आएगी ही कहां ?'

जाते समय विमला ने दुर्गेशनन्दिनी की ठोढ़ी ऊपर करके सरल दृष्टि से उसकी ओर देखकर उसका मुंह चूम लिया। फिर कहा, 'वेश बदल कर जाओ।'

'कोई भय नहीं है।' विमला बोली।

विमला पहिले वीरेन्द्रसिंह के पास गई। वीरेन्द्रसिंह लेटे थे। एक दासी उनके पैर दबा रही थी और दूसरी पंखा झल रही थी। पलंग के पास जाकर विमला बोली, 'मेरे लिए क्या आज्ञा है ?'

वीरेन्द्रसिंह सिर उठाकर बोले, 'विमला ! क्या तुम किसी काम से बाहर जा रही हो ?'

'जी हां, मेरे लिए और क्या आज्ञा है ?'

'दुर्गेश कैसी है ? उसका चित्त ठीक नहीं था। अब क्या दशा है उसकी ? ठीक है ना अब वह !'

'अच्छी है।' विमला ने कहा।

'तुम कुछ देर मुझे पंखा झलो।' और दूसरी दासी से कहा, 'तुम दुर्गेश को मेरे पास बुला लाओ।'

पंखा झलने वाली पंखा रखकर दुर्गेश को बुलाने चली गई।

विमला ने दासी को बाहर ठहरने का संकेत किया। वीरेन्द्र ने तीसरी दासी से कहा, 'लछमनी, मेरे लिए पान तैयार करो।'

पैर दबाने वाली दासी भी चली गई।

'विमला आज तुम्हारा यह कैसा वेश है ?'

'आज मुझे आवश्यकता है इसकी।'

'मैं भी तो सुनूं कि क्या आवश्यकता है ?'

'मैं इस समय अभिसार के लिए जा रही हूं।' विमला ने कहा।

'क्या यम के साथ अभिसार करना है तुझे ?'

'क्यों, क्या मनुष्य के साथ नहीं हो सकता ?'

'वह मनुष्य अभी पैदा नहीं हुआ।'

'एक को छोड़कर।' यह कहकर विमला वहां से उठकर चली गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5

दासी बाहर विमला की प्रतीक्षा कर रही थी। विमला उससे बोली, 'आसमानी! तुमसे मैं कुछ अपनी गुप्त बातें कहती हूं।'

'तुम्हारी वेश-भूषा बता रही है कि आज कोई विशेष बात है।'

'मुझे किसी विशेष कार्य से आज दूर जाना है। रात में मैं अकेली नहीं जा सकती। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसी पर मेरा विश्वास नहीं है। तुम्हें मेरे साथ चलना होगा।'

'कहां जाना है तुम्हें ?' आसमानी ने पूछा।

'आसमानी ! पहिले तो तूने कभी इस प्रकार का प्रश्न नहीं किया था मुझसे।'

'तनिक ठहरो, मैं थोड़ा काम कर आऊं।'

'और हां, मान लो तुम्हारी किसी पहिले आदमी से भेंट हो जाए तो क्या वह तुम्हें पहिचान लेगा ?'

'मैं क्या जानूं ? परन्तु कौन ?'

'मान लो कुमार जगतसिंह मिल जाएं तो क्या वह तुम्हें पहिचान सकेंगे ?' विमला ने उससे पूछा।

'वह मुझे क्यों न पहिचानेंगे ? क्या यह सौभाग्य सम्भव है ?'

'तब मैं तुझे नहीं ले चलूंगी, परन्तु अकेली कैसे जा सकती हूं ? किसी अन्य व्यक्ति को साथ ले जाऊंगी।'

'विमला ! मेरी कुमार को देखने की बहुत इच्छा है।' यह कहकर वह हंसने लगी।

उसे हंसतीं देखकर विमला बनावटी क्रोध करके बोली, 'देखने की इच्छा है तो मैं क्या करूं ? तू व्यर्थ हंसती क्यों है ?'

'मैं गजपति को तुम्हारे साथ भेज देती हूं। उसके साथ रहने से हानि न होगी।' आसमानी ने कहा।

'हां, यह ठीक रहेगा। मैं रसिकराज को अपने साथ ले जाती हूं। मैं उस पर विश्वास भी कर सकती हूं और वह महामूर्ख भी है, परन्तु वह जाएगी भी मेरे साथ ?'

आसमानी हंसती हुई बोली, 'साथ तो मैं भेज दूंगी। तुम फाटक पर ठहरो। मैं उसे अपने साथ लेकर आती हूं।' यह कहकर आसमानी हंसती हुई कुटी की ओर चली गई।

अभिराम स्वामी के शिष्य गजपति गढ़ के अन्दर कुटी में रहते थे। उनका कद साढ़े पांच हाथ लम्बा, एक हाथ की चोटी, ऊंट जैसी टांगें, पीठ पर कूब, लम्बी नाक, यह सब मिलाकर शुतुरमुर्ग दिखाई देते थे। उनका नाम गजपति विद्यादिग्गज था, परन्तु पढ़े-लिखे खाक नहीं थे। पाणिनी के सूत्र रटे थे और धातु का रूप उच्चारण नहीं कर सकते थे। पन्द्रह वर्ष में शब्द-काण्ड समाप्त करके जब दूसरा काण्ड आरम्भ करने का समय आया तो परीक्षा ली गई। आचार्यजी ने पूछा, 'राम शब्द के बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अम जोड़ने से क्या बनेगा ?' वह बोले, 'राममम !' इस पर गुरुदेव ने हाथ जोड़कर कहा, 'बेटे ! शिक्षा समाप्त हो गई। अब कुछ सीखना शेष नहीं रहा।'

गजपति बोले, 'तब तो गुरुजी ! मुझे उपाधि प्राप्त होनी चाहिए।'

'महाउपाधि लो बेटा ! आज से तुम विद्यादिग्गज की उपाधि को प्राप्त हुए।' गुरुदेव ने कहा था।

गजपति ने गुरुजी के चरण छुए। सोचा व्याकरण समाप्त हुआ, अब श्रुति-स्मृति का श्राद्ध करो। इसके लिए अभिराम स्वामी के पास आए। स्वामीजी के अनेकों शिष्य थे, परन्तु वह कभी किसी से यह न पूछते थे कि उसने क्या पढ़ा है ? विद्यादिग्गज गजपति अपने को कृष्ण और आसमानी को गोपी समझते थे। आसमानी को भी दिल बहलाने को वह एक बन्दर मिल गया था। विमला भी उससे कभी-कभी अपना रसास्वादन कर लेती थी।

आसमानी गजपति की कुटी पर पहुंची तो देखा द्वार बन्द था। दीपक जल रहा था। आसमानी ने पुकारा, 'महाराज ! अजी पण्डित जी !'

कोई उत्तर न आया। आसमानी ने एक छेद से झांककर देखा तो वह भोजन कर रहे थे। भोजन के समय वह बोलते नहीं थे। बोल देते तो फिर खाना नहीं खाते थे। आसमानी बोली, 'एजी, रसिकजी महाराज ! ऐ रसिकराज !'

'रसिकराज मुंह बन्द रखकर बोले, 'हूं-हूं।'

'आप बोल क्यों नहीं रहे ?'

'ऊं-ऊं-ऊं !'

आसमानी मुंह में आंचल ठूंसकर हंसी। फिर कहा, 'तो लो, न बोलो, मैं चली।'

रसिकराज को घबराकर बोलना पड़ा, 'मैं खा चुका, बो बोल रहा हूं। आसमानी ठहरो।'

'द्वार तो खोलो।' आसमानी ने कहा।

वह भात छोड़कर उठने लगे। आसमानी बोली, 'नहीं प्यारे, भोजन करके उठो।'

'अब कैसे खाऊंगा ? बोल जो पड़ा।'

'तुम्हें मेरी कसम, खाना अवश्य खाना होगा।'

'हरे कृष्ण ! कहीं बोलने के बाद भी खाना खाया जाता है ?'

'न खाओगे तो मैं जाती हूं।'

गजपति बोले, 'अरे नहीं आसमानी ! मैं खाता हूं, तुम जाओ नहीं, मैं खाना खाता हूं।'

वह फिर भात खाने लगे। दो-तीन ग्रास खा लिए तो आसमानी बोली, 'चलो खा लिया, अब द्वार खोलो।'

'ठहरो यह भी तो खा लूं जरा।'

'क्या पेट नहीं भरा अभी ? द्वार खोलो, नहीं तो मैं सबसे कह दूंगी कि आपने बोलकर भोजन किया है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गजपति ने घबराकर द्वार खोल दिए।

आसमानी ने कुटिया में प्रवेश किया तो गजपति बोले, 'आओ हृदयेश्वरी ! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूं।'

'वाह रे, क्या उपहास करते हो मेरा ?'

'भला मैं तुम्हारा भी कभी उपहास कर सकता हूं ?'

'कभी नहीं गजपति !'

'प्यारी ! तुम बैठो मैं हाथ-मुंह धो आऊं।'

'वाह ! हाथ क्यों धोओगे ? इस भात को तो खा लो।'

'यह भला कैसे हो सकता हे ? बातें भी कर लीं और चौके से उठ भी आया। अब कैसे खा सकता हूं इसे ?'

'तो क्या भूखे मरोगे ?'

गजपति ठण्डी सांस लेकर बोले, 'क्या करूं ? तुमने खाने ही नहीं दिया भात। भूखा ही रह लूंगा।'

'यह तुम्हें खाना ही पड़ेगा। आज मैं तुम्हें अपना जूठा खिलाऊंगी।' यह कहकर आसमानी ने भात उठाकर अपने मुंह में डाल लिया।

गजपित को काठ मार गया। थाली जूठी करके आसमानी बोली, 'लो अब खाओ इसे। तुम्हें जूठा ही खाना होगा मेरा।'

गजपति को भूख लगी थी। वह कभी भात और कभी आसमानी को देख रहे थे। आसमानी बोली, 'घबराओ नहीं, मैं किसी से न कहूंगी। तुम खा लो। चलो भात खाओ।'

'इससे क्या होगा, जानती हो ?' गजपति ने कहा।

'क्या तुम मेरा कहना नहीं मानोगे ?'

'लो भाई ! यदि मैं अपनी हृदयेश्वरी का कहना भी न मानूंगा तो किसका कहना मानूंगा ?' वह फिर खाने बैठ गए।

'यदि कोई शूद्र छू ले तो तुम क्या करोगे ?'

'स्नान कर लूंगा।' गजपति ने कहा।

'ठीक है, तो लो मैं जाती हूं।'

'अरे नहीं, मैं तुम्हारे लिए नहीं कह रहा हूं ? मैं तो तुम्हें अपने हाथ से भात खिला सकता हूं।'

'तो फिर खिलाओ मुझे।' आसमानी ने कहा।

गजपति को भूख लगी थी। वह भात सानने लगे। आसमानी बोली, 'अच्छा सुनो, एक बात कहती हूं।'

आसमानी ने कहना आरम्भ किया और गजपति पण्डित अपनी सुध भूल गए। उनके पेट में चूहे कूद रहे थे। वह भात सान रहे थे और आंखें आसमानी के रूप पर टिकी थीं। हाथ का भात मुंह तक आया और अन्दर चला गया। मुंह चला और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाल फूल गए।

आसमानी हंसकर बोलीं, 'गजपति ! यह क्या खा रहे हो ?'

रसराज आसमानी के पैरों पर गिर पड़े। वह बोले, 'प्यारी ! तुम्हें मेरी कसम, किसी से कहना नहीं यह बात।'

तभी द्वार पर विमला आ गई। उसने द्वार खटखटाया। गजपति का मुंह सूख गया। आसमानी बोली, 'डरो नहीं, विमला है। छिप जाओ जल्दी से एक कोने में जाकर।'

'कहां छिपूं ? कहीं भी तो जगह नहीं है।'

'हांडी सिर पर रखकर छिप जाओ।'

गजपति ने वही किया। हांडी सिर पर रख ली और अंधेरे में छिप गए। हांडी की दाल बहकर उसके शरीर पर फैल गई। विमला ने अन्दर आकर गजपति को देखा तो उसे दया आ गई। वह बोली, 'यह दाल पोंछकर खा जाओ गजपति, मैं किसी ने न कहूंगी।'

गजपति तुरन्त दाल खाने लगे। दाल के साथ सारा भात भी खा लिया। उनके पेट में कुछ शांति हुई

भोजन के पश्चात् आसमानी ने उन्हें स्नान कराया। तब विमला बोली, 'मैं आपसे एक बात पूछने आई हूं।'

'क्या बात प्यारी !' गजपति ने पूछा।

'तुम हम लोगों को प्रेम करते हो या नहीं ?'

'यह भी क्या पूछने की बात है ?'

'हम दोनों से या एक से ?'

'दोनों से।' गजपति ने कहा।

'तो हम जो कहेंगी, वह करोगे ?'

'अवश्य करूंगा।' गजपति ने कहा।

'इसी समय करोगे।' विमला ने पूछा।

'तुरन्त करूंगा।' गजपति ने कहा।

'हम दोनों तुम्हारे साथ भाग चलने को तैयार हैं।'

गजपति अवाक् रह गए। विमला ने बड़ी कठिनाई से हंसी रोकी। वह बोली, 'बोलते क्यों नहीं ? उत्तर दो।'

'ऐं-ऐं-ऐं—तो-तो-तो' मुंह से बात न निकली।

आसमानी बोली, 'क्या कहते हो गजपति ?'

'मैं जरा स्वामीजी से कह आऊं।' गजपति ने कहा

'स्वामीजी से क्या कहोगे ? क्या तुम अपनी मां का श्राद्ध करने जा रहे हो जो उन्हें आमंत्रित करोगे ?' विमला ने कहा।

'तो नहीं जाऊंगा, परन्तु कब चलना होगा ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कब क्या, अभी। देखते नहीं, मैं सब गहना लेकर आई हूं।'

'अभी ! इसी समय।' गजपति को आश्चर्य हुआ।

'तुम न चलो तो हम दूसरे आदमी की खोज करें ? कोई-न-कोई तो मिल ही जाएगा हमें ले चलने को।'

गजपति बोले, 'चलो चलते हैं। तुम्हारी बात को क्या मैं टाल सकता हूं ? आखिर प्यार करता हूं तुम्हें।'

'दुपट्टा ले लो अपना।' विमला ने कहा।

गजपति ने रामनामी गले में डाली। विमला आगे और गजपति पीछे-पीछे चले। गजपति बोले, 'सुन्दरी !'

'क्या है ?' विमला ने मुड़कर कहा।

'फिर कब लौटोगी यहां ?' गजपति ने पूछा।

'क्या फिर भी लौटूंगी ? हम हमेशा के लिए जा रहे हैं।'

गजपति का मन खिल उठा। वह बोले, 'परन्तु मेरे ताड़-पत्र तो वहीं पड़े रह गए। उन्हें भी साथ लेता चलूं।'

'वे और खरीद दूंगी तुम्हें।' विमला ने कहा।

'और शास्त्र-पुस्तकें ?' गजपति ने पूछा।

'वे भी और मंगा दूंगी।'

आसमानी बोली, 'तुम लोग आगे चलो, मैं पीछे-पीछे आती हूं।' यह कहकर आसमानी लौट गई और विमला तथा गजपति आगे चले गए। अंधकार में दोनों दुर्ग-द्वार से बाहर निकले। कुछ दूर जाकर गजपति बोला, 'आसमानी नहीं आई ? वह कहां रह गई ?'

'ज्ञात होता है वह नहीं आ सकीं। फिर उसे क्यों पूछते हो तुम ? मैं अकेली क्या कम हूं तुम्हारे लिए ?'

गजपति चुप हो गए। क्या कहते ?

6

विमला और गजपति ने मन्दारण पीछे छोड़ दिया। रात अंधेरी थी। वे दोनों सावधानी से चलने लगे। जंगल में विमला कुछ सशंकित हुई। गजपति पीछे-पीछे आ रहे थे। विमला ने गजपति से पूछा, 'रसिकराज ! क्या सोच रहे हो ? जल्दी-जल्दी पग बढ़ाओ।'

'सोच रहा हूं ताड़-पत्र तो रह ही गए।'

विमला गजपति की बात सुनकर हंसने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ देर आगे बढ़कर विमला ने पूछा, 'क्या तुम भूत से डरते हो गजपति ? डर लग रहा है ?'

'राम का नाम लो।' कहते हुए विमला के और समीप आ गए।

विमला बोली, 'इस मार्ग में कई भूत हैं।'

गजपति ने विमला का आंचल पकड़ लिया।

विमला बोली, 'हम लोग उस दिन शिव की पूजा से लौट रहे थे तो देखा राह में बड़ के पेड़ के नीचे एक बड़ा भारी भूत खड़ा था।'

विमला ने देखा गजपति थर-थर कांप रहे थे। उसने सोचा कि यदि और कुछ कहा तो आगे न बढ़ेगा। इसलिए बात बदलकर बोली, 'गजपति ! तुम तो गाना भी जानते हो ? आसमानी तुम्हारी प्रशंसा कर रही थी।'

'जानता क्यों नहीं ? मैं बहुत अच्छा गाता हूं।'

'तो एक गीत गाकर सुनाओ।' विमला बोली।

'सखी किस कुसांयत में देखा, चढ़े श्याम कदम की डाली।'

विमला ने भी गजपति के साथ गाना आरम्भ किया। जंगल स्वरमय संगीत से पूर्ण हो उठा। शीतल पवन बह रहा था।

जब गाना समाप्त हुआ तो गजपति बोले, 'एक गाना और सुनाओ विमला ! तुम तो बहुत सुरीला गाती हो।'

'कौन-सा गाना गाऊं ?' विमला ने पूछा।

102286

'कोई रस भरा गाना गाओ।' गजपति ने कहा।

'गाती हूं', कहकर विमला ने एक और गाना गाया।

विमला ने अनुभव किया कि उसका आंचल जोर से खिंच रहा था। उसने देखा कि गजपति उसके पैरों पर गिरे पड़े थे। उन्होंने खूब कसकर आंचल पकड़ा हुआ था। विमला ने पूछा, 'यह क्या हुआ है तुम्हें ? कोई भूत है क्या, जिससे इस प्रकार डर रहे हो ?'

पुस्तकालय कुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

ब्राह्मण ने उंगली दिखाकर बताया, 'वहां है वह।'

विमला उधर देखने लगी। गजपति के दिखाए स्थान पर उसने कुछ देखा। उसने पास जाकर देखा कि एक घोड़ा मृत्यु के मुंह में पड़कर अंतिम श्वांस छोड़ रहा था। उसका अंतिम समय निकट था।

विमला की चिन्ता बढ़ने लगी। बहुत देर तक वह कुछ न बोली। कुछ और आगे बढ़ने पर गजपति ने फिर उसका आंचल खींचा।

'क्या है ?' विमला ने गजपति से पूछा।

गजपति ने फिर कुछ दिखाया। विमला देखकर बोली, 'यह किसी सैनिक की पगड़ी है।' विमला फिर चिन्ता में पड़ी। उसने सोचा, 'जिसका घोड़ा है, उसी की पगड़ी होगी ?'

चन्द्रमा निकल आया था। विमला कुछ अनमनी-सी हो उठी। गजपति ने पूछा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सुन्दरी ! बातें क्यों नहीं करतीं ? चुप क्यों हो ?'

'मार्ग में किसी तरह का निशान देखते हो ?'

'देखता हूं। बहुत से घोड़ों की टापों के निशान हैं।'

'इससे क्या समझे ?' विमला ने पूछा।

'मैं कुछ नहीं समझा।' गजपति ने कहा।

'मरा घोड़ा, सिपाही की पगड़ी, इतने घोड़ों के पैरों के निशान, फिर भी कुछ नहीं समझे।' विमला ने कहा।

'क्या समझूं ?' गजपति ने पूछा।

अभी इधर से बहुत बड़ी सेना गई है।' विमला ने कहा।

गजपति डरकर बोले, 'तब धीरे-धीरे चलो, जिससे वे आगे निकल जायें। मुझे डर लग रहा है।'

विमला हंसकर बोली, 'मूर्ख ! वे आगे कहां निकल जाएंगे ? घोडों की टापें किधर को पड़ी हैं, यह नहीं देखते ? यह सेना गढ़ मान्दारण की ओर गई है।' यह कहकर विमला भयभीत हो उठी।

थोड़ी देर पश्चात् उन्हें शैलेश्वर मन्दिर की पताका दिखाई दी। विमला ने सोचा, राजपुत्र के साथ गजपति की भेंट व्यर्थ है। इससे अनिष्ट हो सकता है। इसे यहीं छोड़ देना उचित होगा।

गजपति ने फिर विमला का आंचल पकड़ा। विमला ने पूछा, 'क्या हुआ ? क्या कुछ और दिखाई दिया तुम्हें ?'

'वह कितनी दूर है ?' गजपति ने पूछा।

'क्या कितनी दूर है ?' विमला ने प्रश्न किया।

'वही बड़ का पेड़।' गजपति ने कहा।

'कौन-सा बड़ का पेड़ ?' विमला ने पूछा।

'जहां आप लोगों ने उस दिन देखा।'

'क्या देखा था हमने ?' विमला ने पूछा।

'रात में मैं उसका नाम नहीं लेता।' गजपति ने कहा।

विमला ने गम्भीर स्वर में कहा, 'अरे बाप रे ! वह तो बहुत ही निकट है अब। यहीं पास में तो है वह वृक्ष।'

'क्या निकट ही है ?' गजपति ने पूछा।

विमला ने शैलेश्वर-मन्दिर के निकट से वट-वृक्ष की ओर संकेत किया, 'वही तो है वह वट-वृक्ष जहां हमने वह देखा था।'

गजपति हिल न सके। उनकी शक्ति खो गई। वह कांपने लगे। विमला बोली, 'चलते क्यों नहीं ? आगे बढ़ो।'

'मैं आगे न जाऊंगा।' गजपति ने कहा।

'मुझे भी भय लग रहा है।' विमला बोली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गजपति यह सुनते ही पीछे भागने को उद्यत हुए।

विमला ने वृक्ष की ओर देखा। वृक्ष के नीचे कुछ सफेद-सफेद चीज दिखाई दी। वह गजपति से बोली, 'गजपति ! इष्टदेव का नाम लो। देखो, इस पेड़ के नीचे क्या है ? दिखता है कुछ ?'

'बाप-रे-बाप' कहकर गजपति भागे। वह भागते ही चले गए। विमला समझ गई कि वह दुर्ग-द्वार पर ही जाकर रुकेंगे। वह अब निश्चिन्त होकर मन्दिर की ओर बढ़ चली।

विमला उस समय राजपुत्र के विषय में सोच रही थी। राजपुत्र ने आने का पूरा वचन नहीं दिया था। उन्होंने कहा था, 'यहां मुझसे भेंट होगी। यदि भेंट न हुई तो समझ लेना कि फिर कभी भेंट नहीं होगी ?' इससे उनके न आने की सम्भावना भी थी।

विमला ने दुःखी होकर सोचा कि उसने गजपति को व्यर्थ भगा दिया। वह अकेली कैसे वापस लौटकर जाएगी।

विमला ने वृक्ष के नीचे देखा कि जो सफेद वस्तु थी, वह अब वहां नहीं थी। विमला को आश्चर्य हुआ यह देखकर।

विमला ने बड़े ध्यान से देखा। उसने अनुमान लगाया कि वृक्ष के पास कोई मनुष्य दिखाई दे रहा था। वह भयभीत होकर मन्दिर की ओर बढ़ी। उसने मन्दिर के द्वार को धक्का दिया तो वह बन्द था। अन्दर की सांकल चढ़ी थी।

'कौन ?' अन्दर से किसी ने कहा।

'एक थकी हुई स्त्री।' विमला बोली।

मंदिर का द्वार खुल गया। विमला आगे बढ़ गई।

मंदिर में दीपक जल रहा था। सामने तलवार हाथ में लिए एक सैनिक खड़ा था। जंचीला जवान था।

विमला ने कुमार जगतसिंह को पहिचान लिया।

विमला ने कुमार को प्रणाम किया। कुछ देर तक दोनों मौन रहे। विमला मुस्कुराती हुई बोली, 'युवराज ! आज शिव के अनुग्रह से ही आपके दर्शन हुए हैं। पहिले इस जंगल में रात्रि के समय मन्दिर में भय लगा। आपके दर्शन करके कुछ साहस बंधा है।'

'उस दिन तुम लोग कुशलपूर्वक तो पहुंच गयी थीं ?'

विमला ने पहिले यह जानना चाहा कि राजकुमार दुर्गेशनन्दिनी में अनुरक्त हैं या नहीं। वह बोली, 'जिससे कुशल हो, उसी के लिए मैं यहां प्रार्थना करने आई हूं। जब समझी कि आपकी ही पूजा से परितृप्ति है, मेरी पूजा से नहीं। अनुमति हो तो लौट जाऊं ?'

'जाओ ! अकेली जाने में भय मालूम हो, तो पहुंचा आऊं।'

विमला समझी कि राजकुमार अस्त्र-विद्या के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह बोली, 'अकेली जाने में अनुचित क्या है ?'

'राह में अनेक संकट आ सकते हैं।' जगतसिंह ने कहा।

'तब मैं महाराज मानसिंह के पास जाऊंगी।'

'क्यों ?' जगतसिंह ने ज्ञात किया।

'उनसे फरियाद करनी है कि उन्होंने जिस सेनापति को नियुक्त किया है, उसने हमारा डर-भय दूर नहीं किया। वह शत्रु के विनाश में असफल रहा है।' विमला मुस्कुरा रही थी।

'सेनापति उत्तर देगा कि शत्रु का विध्वंस वह भी नहीं कर सके, मैं क्या चीज हूं ? महादेव ने जिस मदन को भस्म किया था, उसी ने उनके इस मन्दिर में पंद्रह दिन पूर्व मुझे दर्शन दिया था।'

विमला मुस्कुराकर बोली, 'आघात किस पर हुआ ?'

'सेनापति पर।' जगतसिंह ने स्पष्ट कहा।

'महाराज ऐसी असम्भव बात पर भला कैसे विश्वास करेंगे ? मुझे तो यह असम्भव-सा प्रतीत हो रहा है।'

'मेरे पास उसका साक्षी है।' जगतसिंह ने कहा।

'ऐसा कौन साक्षी है वह ?' विमला ने पूछा।

'एक सुचरित्रा।' जगतसिंह ने कहा।

बात काटकर विमला बोली, 'दासी तो महा कुचरित्रा है। मुझे विमला कहकर पुकारिए राजकुमार ?'

'विमला इस बात की साक्षी है।' जगतसिंह बोलें।

'एक पक्ष का व्यक्ति क्या कभी सच्ची गवाही दे सकता है ?'

'तुमने कुछ वचन दिया था जरा याद तो दिला दीजिए।'

'तुमने अपनी सखी का परिचय देने को कहा था।'

विमला गम्भीर हो गई। फिर बोली, 'युवराज ! परिचय देने में संकोच होता है। परिचय पाकर आप अप्रसन्न तो नहीं होंगे ?'

राजपुत्र कुछ चिन्ता में पड़ गए। उन्होंने कहा, 'विमला ! यथार्थ परिचय में मुझे असुविधा न होगी।'

'क्या सच ?' विमला ने आश्चर्य से कहा।

राजपुत्र बोले, 'जो भी हो। तुम मेरा मन रखो। मैं जो कष्ट सह रहा हूं, उससे अधिक कष्ट नहीं हो सकता। तुम्हारी शंका यदि सच है तो वह भी इस यंत्रणा से कम होगी। सुबोध का आधार तो मिलेगा। विमला ! मैं केवल कौतूहलवश भेंट करने नहीं आया हूं। कौतूहल के लिए मेरे पास अवकाश नहीं है। इधर पन्द्रह दिन से मैं लेटा तक नहीं हूं। मेरा मन बहुत व्याकुल है।'

विमला यही सुनना चाहती थी। वह बोली, 'युवराज ! विवेचना करके देखिए इस युद्ध-काल में क्या आपका किसी रंमणी में रमना उचित है ? मैं दोनों के मंगल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए कहती हूं कि आप मेरी सखी को भूलने का प्रयत्न करें। इसी से आप अपने कार्य में सफल होंगे।'

युवराज बोले, 'किसे भूल जाऊं ? एक बार देखते ही तुम्हारी सखी का रूप मेरे हृदय में भर गया। इस हृदय को बिना दग्ध किए वह हट नहीं सकता। लोग मेरे हृदय को पाषाण कहते हैं। मूर्ति पाषाण पर ही अंकित होती है। पत्थर के बिना नष्ट हुए वह मूर्ति अब मिट नहीं सकती। विमला ! जब से मैंने तुम्हारी सखी को देखा है, तभी से युद्ध कर रहा हूं, परन्तु एक क्षण के लिए भी उस चेहरे को भूल नहीं सका। बताओ, तुम्हारी सखी को मैं कैसे देख पाऊंगा ?'

विमला बोली, 'आप गढ़ मान्दारण में मेरी सखी से भेंट कर सकते हैं। वह वीरेन्द्रसिंह की कन्या है।'

जगतसिंह को लगा जैसे किसी सर्प ने उन्हें डस लिया। वह नीचे को ताकते रह गए। बहुत देर पश्चात् ठण्डी सांस लेकर बोले, 'तुम्हारी ही बात सत्य निकली विमला ! वह मेरी न हो सकेगी। मैं युद्ध-क्षेत्र में जा रहा हूं। शत्रु के रक्त में मैं अपने सुख की इच्छा को डुबो दूंगा।'

विमला बोली, 'युवराज ! निराश क्यों होते हैं ? आज भाग्य विपरीत है, तो कल पक्ष में भी हो सकता है। दुःखी न होकर मेरी बात सुनिए ?'

जगतसिंह बोले, 'ईश्वर की इच्छा को कौन टाल सकता है ? विधि के लेख को पहिले कौन पढ़ सकता है ? इस संसार में क्या अघटनीय हो सकता है ? सभी कुछ घटना सम्भव है।'

जगतसिंह कुछ ठहरकर फिर बोले, 'जो हो, आज मेरा मन बहुत अस्थिर है। कुछ समझ में नहीं आ रहा। मैं अपने मन की बात कह सकता हूं। देवता के समक्ष प्रणाम करके कहता हूं कि तुम्हारी सखी के अतिरिक्त अन्य किसी को प्यार न करूंगा। तुमसे मेरी यही प्रार्थना है कि मेरी यह बात अपनी सखी से कह देना। मैं केवल एक बार उनका दर्शन करना चाहता हूं। दूसरी बार याचना करूंगा, वचन देता हूं।'

विमला का मन प्रसन्नता से खिल उठा। वह बोली, 'मेरी सखी का उत्तर राजकुमार कैसे पाएंगे ?'

'तुम्हें बार-बार कैसे कष्ट दूं ? यदि इसी मन्दिर में मुझसे फिर भेंट कर सको तो मैं तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूंगा।'

'युवराज ! मैं आपकी आज्ञा को नहीं टाल सकती, परन्तु रात्रि में यहां आते बड़ा भय लगता है। वचन न टाल सकती थी, इसीलिए आज किसी प्रकार आई हूं। यह प्रदेश शत्रुओं द्वारा पीड़ित है, अतः फिर न आ सकूंगी। पठानों का आतंक चतुर्दिक फैला है।'

राजपुत्र बोले, 'यदि कोई हानि न समझो तो मैं मान्दारण तक चलूं। मैं वहां किसी जगह ठहर जाऊंगा। तुम मुझे सूचना ला देना।'

विमला बोली, 'यह ठीक है। आप मेरे साथ चलें।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये दोनों मन्दिर से निकले तो मन्दिर के वाहर किसी मनुष्य के पैरों की आहट सुनाई दी। राजपुत्र ने विमला से पूछा, 'क्या तुम्हारे साथ कोई अन्य व्यक्ति भी यहां आया है ?'

'नहीं।' विमला ने उत्तर दिया।

'तब किसके पैरों की आवाज हुई ? लगता है किसी ने आड़ से मेरी बात सुनी है।' जगतसिंह ने कहा।

राजपुत्र ने बाहर निकलकर मन्दिर के चारों ओर घूमकर देखा, परन्तु वहां कोई दिखाई न दिया।

विमला और राजपुत्र दोनों ने गढ़ मान्दारण की ओर प्रस्थान किया। कुछ दूर तक चुपचाप चले। कुछ दूर जाने पर राजकुमार बोले, 'विमला। मुझे एक बात विचित्र लग रही है। तुम सुनकर क्या उत्तर दोगी मैं कह नहीं सकता।'

'वह क्या बात है ?' विमला ने ज्ञात किया।

'मैं विश्वास नहीं कर पा रहा कि तुम दासी हो।'

'यह संदेह आपके मन में क्यों हुआ ?' विमला ने पूछा।

'वीरेन्द्रसिंह की कन्या अम्बराधिपति की पुत्र-वधू नहीं हो सकती, इसका एक विशेष कारण है। यह बहुत गुप्त बात है। तुम दासी होकर इस गुप्त रहस्य को कैसे जान सकीं ?' जगतसिंह ने कहा।

विमला ठण्डी श्वांस लेकर कातर वाणी में बोली, 'आपने ठीक सोचा, मैं दासी नहीं हूं। दुर्भाग्यवश दासी की तरह रहती हूं। भाग्य को भी क्यों दोष दूं ? मेरा भाग्य भी बुरा नहीं है।'

राजकुमार समझ गए कि इस बात से विमला के मन को कष्ट हुआ, इसलिए फिर आगे कुछ न बोले। विमला ने स्वयं कहा, 'युवराज ! एक दिन आपको अपना परिचय दूंगी, परन्तु अभी नहीं, समय आने पर। यह क्या है ? पीछे-पीछे कोई आ रहा है क्या ?'

तभी पीछे मनुष्य की पग-ध्वनि सुनाई दी। ऐसा ज्ञात हुआ मानो दो आदमी आपस में बातें कर रहे थे। राजपुत्र बोले, 'मुझे संदेह हो रहा है। ठहरो, मैं पहिले इन्हें देख लूं।'

राजपुत्र ने लौटकर देखा, परन्तु कोई मनुष्य दिखाई न दिया। वह लौटकर विमला से बोले, 'कोई हमारा पीछा कर रहा है। अब सावधानी से बातें करना।'

दोनों धीमे-धीमे बातें करते हुए चले। वे गढ़ मान्दारण में प्रवेश कर दुर्ग के निकट पहुंचे। राजपुत्र बोले, 'तुम इस दुर्ग में कैसे जाओगी ? रात्रि में फाटक बन्द होंगे।'

'आप इसकी चिन्ता न करें। मैं इसका उपाय करके ही चली थी।'

राजपुत्र हंसकर बोले, 'कोई गुप्त द्वार है क्या ?'

'जहां चोर होते हैं, वहीं सेंध लगती है।' विमला हंसकर बोली।

राजपुत्र बोले, 'अब मेरे जाने की आवश्यकता नहीं है। मैं इसी बगीचे में ठहरूंगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तुम अपनी सखी से मेरी बात स्पष्ट कहना कि मैं एक बार उसके दर्शन अवश्य करना चाहता हूं।'

'यह सुरक्षित स्थान नहीं है। आप मेरे साथ चलते चले आयें।'

'कितनी दूर जाना होगा ?' जगतसिंह ने पूछा।

'दुर्ग के अन्दर चलेंगे।' विमला ने कहा।

'विमला ! यह उचित न होगा। दुर्गपति की आज्ञा के बिना मैं दुर्ग में न जाऊंगा।' जगतसिंह ने कहा।

'हानि क्या है ?' विमला ने ज्ञात किया।

'राजपुत्र किसी जगह जाने में चिन्ता नहीं करता, परन्तु ज़रा विचारकर देखो, अम्बराधिपति के पुत्र के लिए क्या यह उचित है कि वह दुर्ग-स्वामी की आज्ञा के बिना दुर्ग में चोरों की भांति प्रवेश करे ?'

'मैं तो आपको स्वयं बुलाकर ले जा रही हूं। आप चोरों की तरह तो नहीं जा रहे हैं ?' विमला ने दृढ़तापूर्वक कहा।

'यह न समझना कि मैं दासी जानकर तुम्हारा अपमान कर रहा हूं, परन्तु बताओ कि दुर्ग में बुलाकर ले जाने का तुम्हें क्या अधिकार है ?'

'मेरा क्या अधिकार है, यह बिना सुने आप न चलेंगे ?'

'कभी नहीं। मैं यह नहीं कर सकता।' जगतसिंह ने कहा।

विमला राजपुत्र के कान में कुछ कहकर बोली, 'अब चलेंगे ?'

'चलो।' युवराज चल दिए।

जिस राह से विमला और युवराज जा रहे थे वह दुर्ग-द्वार को जाती थी। दोनों ओर आम का जंगल था। राजपथ को छोड़कर विमला ने आम्र-कानन में प्रवेश किया। उनके उसमें घुसने पर फिर उन दोनों को मनुष्य के पैरों से सूखी पत्तियों के दबने का स्वर सुनाई दिया।

'फिर शब्द हुआ !' विमला ने कहा।

'तुम खड़ी रहो, मैं देखकर आता हूं।' जगतसिंह ने कहा।

राजपुत्र जिधर से शब्द सुनाई पड़ा था, उधर गए, परन्तु कुछ देख न सके। राजकुमार ने सोचा कि हो सकता है किसी पशु के चलने से वह शब्द हुआ हो। राजपुत्र तलवार लिए हुए आम के वृक्ष पर चढ़ गए। बहुत देर तक देखने के पश्चात् उन्होंने देखा एक शाखा पर दो मनुष्य बैठे थे। उनकी पगड़ी चांदनी में चमक रही थी। राजपुत्र ने ध्यान से देखा। फिर वह धीरे-धीरे पेड़ से उतरे और विमला के पास पहुंचे। उन्होंने जो देखा था, उसका वर्णन कर विमला से बोले, 'यदि दो बर्छे इस समय मिल जाएं तो....!'

'बर्छों का क्या करोगे ?' विमला ने ज्ञात किया।

'लक्षण अच्छे नहीं जान पड़ते। पगड़ी देखने से ज्ञात होता है कि ये पठान हैं। इनकी नीयत बद है।' जगतसिंह ने कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तभी विमला को राह में मिले घोड़े और पगड़ी की बात याद आई। वह बोली, 'तब आप यहीं ठहरें। मैं दुर्ग में पीछे से बर्छे लाती हूं।'

विमला तेजी से दुर्ग में बर्छे लेने चली गई। विमला ने जिस कमरे में अपना वेश बदला था, उस कमरे के ठीक नीचे एक गुप्त द्वार थ। विमला ने आंचल से ताली निकालकर द्वार खोला। गुप्त राह निकल आई। विमला ने अन्दर प्रवेश कर द्वार बन्द कर दिया।

विमला फिर तेजी से अन्दर गई। वह अन्दर जाकर रक्षक से बोली, 'मैं तुमसे जो चाहती हूं, वह किसी के सामने प्रकट न करना। मुझे दो बर्छे लाकर दो, अभी लौटा दूंगी।'

'मां ! तुम बर्छे लेकर क्या करोगी ?' रक्षक ने पूछा।

'आज मेरा वीर पंचमी का व्रत है। व्रत से वीर पुत्र होता है। मैं पुत्र-कामना करती हूं। किसी से कहना नहीं।'

दुर्ग के सब नौकर विमला के आज्ञाकारी थे। उसने शस्त्रागार में जाकर विमला को दो बर्छे लाकर दे दिए।

बर्छे लेकर विमला फिर उसी द्वार से बाहर निकली और युवराज जगतसिंह के पास जा पहुंची।

व्यस्तता के कारण विमला बाहर निकलते समय गवाक्ष-द्वार बन्द करना भूल गई। द्वार की आड़ में एक शस्त्रधारी योद्धा छिपा खड़ा था। विमला के आगे बढ़ते ही योद्धा दबे पांव उसमें प्रवेश कर गया। उसने भीतर देखा तो वहां कोई नहीं था। वह अन्दर घुस गया और छिपता हुआ अन्तःपुर में जा पहुंचा।

उधर राजपुत्र विमला से भाले पाकर फिर पेड़ पर चढ़ गए। उन्होंने वृक्ष की ओर देखा तो केवल एक पगड़ी थी। दूसरा व्यक्ति वहां नहीं था। राजपुत्र ने एक भाला तानकर पगड़ी का निशाना बनाया और विशाल बाहु-बल से भाला फेंककर मारा। इससे किसी भारी चीज के गिरने का शब्द हुआ। राजपुत्र ने समझ लिया कि वह जमीन पर गिर पड़ा।

जगतसिंह पेड़ से उतरकर आहत व्यक्ति के पास पहुंचे। उन्होंने देखा कि पठान मृतवत जमीन पर पड़ा था। भाला उसकी आंख के पास घुसा था। सैनिक का प्राण निकल चुका था। बर्छे ने उसका मस्तिष्क भेद दिया था। उसके कवच में एक पत्र था। जगतसिंह ने उस पत्र को प्रकाश में लाकर पढ़ा। उसमें लिखा था, 'कतलूखां के आज्ञाकारी लोग इस पत्र को देखते ही पत्र-वाहक की आज्ञा का पालन करें।'

राजपुत्र ने विमला के पास जाकर सब हाल कहा। विमला बोली, 'युवराज ! मैं यह जानती तो कभी भाला लाकर न देती। आज मैंने जो काम किया है, उसका प्रायश्चित बहुत दिनों तक न कर पाऊंगी।'

'इसमें दुःख की क्या बात है ? शत्रु-वध करना तो हमारा धर्म है।'

'योद्धा ऐसी विवेचना कर सकते हैं, मैं स्त्री हूं और अधिक देर करने से अनिष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सकता है। दुर्ग में चलिए, मैं दरवाजा खुला छोड़ आई हूं।'

दोनों बड़ी तेजी से चलकर दुर्ग-द्वार पर पहुंचे। पहिले विमला ने प्रवेश किया, उसके बाद राजपुत्र ने।

विमला ने पहिले की तरह द्वार बन्द कर दिया। फिर राजपुत्र को विमला निजी शयनागार में ले जाकर बोली, 'आप यहां बैठें। मैं अभी लौटकर आती हूं।'

युवराज का हृदय कांप रहा था। वह पंलग से उठकर दूसरे कमरे में गये तो देखा दीपक जल रहा था और दुर्गेशनन्दिनी उनके समक्ष खड़ी थी।

7

विमला कमरे में पलंग पर बैठ गई। विमला प्रसन्न थी। उसका मनोरथ पूर्ण हो गया था।

विमला जगतसिंह के लौटने की प्रतीक्षा में थी कि तभी आम्र-कानन में गम्भीर निनाद हुआ। विमला चौंकी। वह डर गई। सिंहद्वार के अलावा आम्र-कानन में तुरी की ध्वनि कभी नहीं होती थी। फिर इतनी रात को यह ध्वनि कैसी ? आज रात में जो-जो घटनाएं हुई थीं, उन सबका उसे स्मरण हो आया। विमला का मन कहने लगा कि यह किसी विशेष अमंगल की सूचना है। वह खिड़की के पास आम्र-कानन की ओर देखने लगी। जंगल में विशेष कुछ दिखाई न दिया। विमला कमरे के बाहर निकली और गढ़ के ऊपर जाने वाली सीढ़ी से चढ़कर किले के ऊपर जा पहुंची। उसने ध्यान से आम्र-कानन की ओर देखा, परन्तु अंधकार में फिर भी कुछ दिखाई न दिया।

विमला नीचे लौट रही थी कि तभी किसी ने पीछे से उसके कन्धों का स्पर्श किया। विमला ने चौंककर पीछे घूमकर देखा तो एक सशस्त्र पुरुष खड़ा था। विमला निश्चल हो गई।

'चीत्कार न करना। सुन्दरियों के मुंह से चीत्कार भला नहीं लगता।' उस व्यक्ति ने कहा।

विमला को डराने वाला वह पठान सैनिक था। उसकी आयु तीस वर्ष से अधिक नहीं थी। विमला के मन में यदि शांति लौट आती तो वह देखती कि उस पुरुष में और जगतसिंह में कोई अन्तर नहीं था। उसकी कमर में खंजर लटक रहा था और हाथ में तलवार। उसके पास और कोई अस्त्र नहीं था।

'चिल्लाना नहीं। चिल्लाने से आपत्ति में पड़ोगी।' वह फिर बोला।

कुशाग्र बुद्धि विमला क्षण भर विह्वल हुई। फिर शस्त्रधारी को समझ गई। विमला के पीछे छत का अन्त था और सामने सशस्त्र योद्धा। सावधान होकर विमला ने उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैनिक से पूछा, 'तुम कौन हो ? क्या चाहते हो। यहां किसलिए आए हो ?'

'मेरा परिचय जानकर तुम क्या करोगी ?'

'तुम दुर्ग में क्यों आए ? क्या तुम नहीं जानते कि चोर को सूली दी जाती है।' विमला ने दृढ़तापूर्वक कहा।

'सुन्दरी ! मैं चोर नहीं हूं।' उसने कहा।

'तुम दुर्ग में कैसे आए ?' विमला ने पूछा।

'तुम्हारी ही कृपा से। तुमने द्वार खुला छोड़ दिया था। उसी समय मैंने दुर्ग में प्रवेश किया। मैं तुम्हारे ही पीछे-पीछे इस छत पर आया हूं।' उसने कहा।

'तुम कौन हो ?' विमला ने फिर प्रश्न किया।

'तुमको अब परिचय देने में हानि ही क्या है ? मैं पठान हूं।'

'यह परिचय नहीं हुआ। मैंने जाना कि तुम पठान हो, परन्तु तुम हो कौन ? तुम्हारा नाम क्या है ?'

'मेरा नाम उसमान खां है।'

'उसमान खां को मैं नहीं जानती।' विमला ने कहा।

'उसमान, कतलूखां का सेनापति।' पठान ने कहा।

विमला का बदन कांपने लगा। उसने सोचा कि किसी तरह भाग कर वीरेन्द्रसिंह को सूचना दे, परन्तु कोई उपाय न था। उसके सामने पठान सेनापति खड़ा था। कोई उपाय न देखकर विमला ने सोचा कि जितनी देर बातचीत में बीत जाए, उतना ही अच्छा है। हो सकता है कोई प्रहरी गश्त लगाता हुआ उधर आ जाए। उसने बातें कीं। वह बोली, 'आप इस दुर्ग में किसलिए घुसे हैं ?'

'हम लोगों ने दूत भेजकर वीरेन्द्रसिंह से अपना साथ देने की प्रार्थना की थी। उत्तर में उन्होंने कहलाया कि हम सेना लेकर दुर्ग में आयें।'

'समझ गई। वीरेन्द्रसिंह ने आप लोगों से मित्रता न करके, मुगलों का पक्ष लिया है। इसलिए आप दुर्ग पर अधिकार करने आए हैं, परन्तु आपको तो मैं यहां अकेला देख रही हूं।'

'हां, इस समय तो मैं अकेला ही हूं।'

'इसीलिए डराकर मुझे रोक रहे हैं।' विमला ने कहा।

उसमानखां मुस्कुराकर बोला, 'सुन्दरी ! तुमसे केवल तुम्हारे कटाक्ष का भय है, परन्तु मुझे उसकी भी शंका नहीं है। तुमसे एक भिक्षा मांगता हूं। दोगी मुझे ?'

विमला ने उसमान के चेहरे की ओर देखा।

'तुम्हारे आंचल में जो खिड़की की चाबी है, वह मुझे दे दो। तुम्हें छूकर मैं तुम्हारा अपमान नहीं करना चाहता।' उसमान खां बोला।

चतुर विमला समझ गई कि सेनापति का अभीष्ट गवाक्ष की ताली प्राप्त करना मात्र है। विमला ने देखा, जो मुझसे बलपूर्वक ले सकता है उसकी भिक्षा का क्या अर्थ है ? न देने पर सेनापति बलपूर्वक ले लेगा। विमला बोली, 'महाशय ! यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं चाबी न दूं, तो आप क्या करेंगे ?' यह कहते हुए विमला ने अपनी ओढ़नी उतारकर अपने हाथ में ले ली और संभलकर खड़ी हो गई।

'यदि न दोगी तो मुझे बल प्रयोग कर आपके अंग को छूना पड़ेगा।'

'उठा लीजिए।' कहकर विमला ने अपनी चादर आम्र-कानन में फेंक दी।

उसमान खां की आंखें उसी ओढ़नी की ओर थीं। ज्यों ही विमला ने उसे फेंका, त्यों ही उसमान खां ने उसे लपक लिया।

उसमान खां ने ओढ़नी हाथ में लेकर एक हाथ में विमला की कलाई पकड़ ली। ताली की गांठ दांतों से खोलकर उसे अपनी जेब में रखा। उसने फिर उसी ओढ़नी से विमला के दोनों हाथ मुंडेर में कसकर बांध दिए। विमला बोली, 'यह क्या करते हो तुम ?'

'यह मैं प्रेम का फन्दा बना रहा हूं।' सेनापति बोला।

'इस कुकर्म का फल तुम्हें शीघ्र ही भोगना होगा।'

उसमान विमला को उसी दशा में छोड़कर चला गया। विमला ने चिल्लाकर शोर मचाया, परन्तु किसी ने न सुना।

उसमान उसी राह से उतरकर विमला के नीचे वाले कमरे में जा पहुंचा। द्वार खोला और बाहर निकल गया। उसमान जोर-जोर से सींटी बजाने लगा। उसे सुनते ही पास में छिपा हुआ सैनिक अन्दर आया। उसके बाद एक और ने प्रवेश किया। इस तरह बहुत से पठान दुर्ग में प्रवेश कर गए। अन्तिम व्यक्ति ने उसमान से कहा, 'नहीं, तुम लोग बाहर रहो। मेरी आवाज सुनने पर तुम लोग बाहर से आक्रमण करना। मेरी बात ताज खां से कह देना।

वह व्यक्ति लौट गया। जिस छत पर विमला बंधी पड़ी थी, वहां जाकर उसमान ने रहीम से कहा, 'इस औरत का कभी यकीन न करना शेख ! तुम इसके पास रहो। यदि यह भागने या चिल्लाने की कोशिश करे तो वध करने में भी संकोच न करना।'

'जो आज्ञा !' कहकर रहीम पहरे पर बैठ गया।

पठान सेना दूसरी ओर चली गई।

विमला ने जब देखा कि उसमान अन्यत्र चला गया तो उसने सोचा कि अब किसी कौशल से छुटकारा मिल सकेगा। वह उपाय के लिए चेष्टा करने लगी।

प्रहरी के कुछ देर खड़े रहने के बाद विमला ने उससे बातें करनी आरम्भ कीं। सुन्दर रमणी से हर आदमी बातें करना पसन्द करता है। विमला उससे इधर-उधर की बातें करती रही। रहीम अपने में विमला की इतनी उत्सुकता देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। विमला धीरे-धीरे अपने अस्त्रों को निकालने लगी। जब विमला ने प्रहरी की अंग-भंगिमा से जान लिया कि उसके पतन का समय आ गया, तो उसने मीठे स्वर में कहा, 'तुम मुझसे इतना डरते क्यों हो शेख ! मेरे पास आकर बैठो, बातें करो।'

प्रहरी अपने को धन्य मानकर विमला के पास जा बैठा। विमला ने देखा कि औषधि ने काम किया। प्रहरी उसके पास बैठकर आंखें फाड़कर उसे देख रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमला बोली, 'शेख ! तुम्हें तो पसीना आ रहा है। मुझे खोल दो तो मैं तुम्हें पंखा झल दूं। तुम मुझे फिर बांध देना। अब मैं जा ही कहां सकती हूं तुम्हें छोड़कर ?'

शेख के मस्तक पर तनिक भी पसीना नहीं था, परन्तु विमला पसीना देख रही थी। उन हाथों की हवा फिर उसे कहां मिलती ? शेख ने विमला का बन्धन खोल दिया।

विमला ने पहिले उसे अपनी उसी ओढ़नी से हवा की। फिर उसे ओढ़ लिया। हाथ बांधने की बात प्रहरी न कह सका। विमला बन्धन खुल जाने पर उसे विशेष सुन्दर दिखाई देने लगी। अपने जिस लावण्य को दर्पण में देखकर विमला स्वयं विमोहित हो जाती थी, उस लावण्य को देखकर प्रहरी अपने आपे में न रहा। वह मंत्रमुग्ध हो गया।

'शेख ! क्या तुम्हारी स्त्री तुम्हें प्यार नहीं करती ?'

'क्यों ? करती है।' शेख ने कहा।

'प्रेम करती है तो इस बसन्त-काल में उसने अपने स्वामी को छोड़ कैसे रखा है ? मेरा तो एक क्षण को भी आपको छोड़ने का मन नहीं हो रहा। जी चाहता है आपसे लिपट जाऊं।'

शेखजी ने ठण्डी सांस ली।

विमला बोली, 'शेख ! कहने में लज्जा आती है, परन्तु यदि तुम मेरे पति होते, तो मैं तुम्हें कभी युद्ध में न आने देती।'

शेख मंत्रमुग्ध हो गया था।

'आह, अगर कहीं तुम मेरे पति होते।' विमला ने यह कहकर एक ठण्डी सांस ली और नयन-बाण शेख पर कस कर मारा। शेख का माथा चक्कर खा गया। वह धीरे-धीरे विमला के और निकट जाकर बैठ गया। विमला भी उसकी ओर सरक गई।

विमला ने शेख के हाथों पर अपना हाथ रख दिया। शेख प्राणरहित हो गया। विमला बोली, 'कहते लाज आती है, परन्तु क्या लड़ाई जीतकर घर जाने पर तुम्हें मेरी याद नहीं आएगी ?'

'क्या तुम्हें भूल पाऊंगा ?' शेख ने कहा।

'अपने मन की बात तुमसे कहूं ?' विमला ने कहा।

'हां-हां कहो।' शेख ने कहा।

'नहीं, मैं न कहूंगी। तुम भी सुनकर क्या कहोगे ?'

'नहीं-नहीं, कहो। मुझे अपना गुलाम समझकर कहो।'

'मेरी बड़ी इच्छा है कि अपने पाजी पति को छोड़कर तुम्हारे साथ चल दूं।' इतना कहकर विमला ने फिर कटाक्ष मारा। शेख बुरी तरह घायल हो गया। उसका मन नाच उठा।

'तुम मेरे साथ चलोगी ?' शेख ने पूछा।

'ले चलोगे तो अवश्य चलूंगी।' विमला ने कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
'मैं तुम्हें ले चलूंगा। मैं तुम्हारा गुलाम बनकर रहूंगा।'

'तुम्हारे इस प्रेम का इनाम दूं ? अच्छा लो।' यह कहकर विमला ने अपने गले का हार शेख के गले में डाल दिया।

पठान स्वर्ग में पहुंच गया।

विमला बोली, 'हमारा शास्त्र कहता है कि अपने गले का हार दूसरे के गले में डाल देने से शादी हो जाती है।'

'तब तो तुमसे मेरी शादी हो गई।'

'नहीं तो क्या ?' यह कहकर विमला चुप हो गई।

शेख बोला, 'अब क्या सोच रही हो तुम ?'

'मैं सोचती हूं कि मेरे भाग्य में सुख नहीं है। तुम लोग दुर्ग जीतकर चले जाओगे।' विमला ने कहा।

'इसमें क्या शक है ? अब जीतने में क्या बाकी है ?'

'ऊं हूं, इसमें एक गुप्त बात है।' विमला ने कहा।

'वह क्या ?' शेख ने पूछा।

'मैं तुमसे यह बात कहे देती हूं। शायद तुम इस दुर्ग को न जीत सको। तुम्हें मुंह की खानी होगी।' विमला ने कहा।

शेख मुंह बनाकर सुनने लगा। विमला ने कहने में संकोच दिखाया तो शेख ने उतावला होकर पूछा, 'ऐसी क्या बात है आखिर ?'

'तुम लोग नहीं जानते। इस दुर्ग के पास ही दस हजार सेना लेकर जगतसिंह बैठा है। तुम लोग आओगे, यह जानकर वह पहिले से आकर यहां बैठ गया था। जब तुम लोग जीतकर लौटोगे तो वह तुम्हारा घेरा डाल देगा। तुम सब उसके घेरे में फंस जाओगे।'

शेख अवाक् रह गया। बोला, 'तो यह बात है !'

'यह बात दुर्ग में सब जानते हैं। इसीलिए मैं भी जान गई।'

'मेरी जान ! तुमने मुझे बड़ा आदमी बना दिया। मैं अभी जाकर सेनापति से कह आता हूं। यह जरूरी खबर देने पर मुझे इनाम मिलेगा। तुम यहीं बैठो, मैं अभी आता हूं।'

तुम जरूर आओगे ना ? भूल न जाना मुझे, तुम्हें मेरी कसम।' विमला कटाक्ष-बाण मारकर बोली।

'मैं अभी आता हूं ?' कहकर शेख वहां से दौड़ा।

ज्योंही शेख हटा, त्योंही विमला भी वहां से भागी।

विमला ने सर्वप्रथम वीरेन्द्रसिंह को सूचना देनी चाही। वह सीधी वीरेन्द्रसिंह की ओर दौड़ी, परन्तु आधी दूर पहुंचकर उसके कानों में, 'अल्ला-हो-अकबर' पठानों की जय-ध्वनि पड़ी।

पठान सेना की जय-ध्वनि सुनकर विमला व्याकुल हो उठी। चारों ओर भयानक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोलाहल सुनाई पड़ने लगा। विमला समझ गई कि दुर्गवासी जाग गए हैं।

वीरेन्द्रसिंह के शयन-कक्ष के निकट पहुंचकर विमला ने देखा कि कमरे में कोलाहल था। पठान-सेना दरवाजा तोड़कर कमरे में प्रवेश कर चुकी थी। विमला ने छिपकर देखा कि वीरेन्द्रसिंह की मुट्ठी में नंगी तलवार थीं और शरीर से रक्त बह रहा था। वह उन्मत्त होकर तलवार चला रहे थे। तभी एक विशालकाय पठान की तलवार के आघात से वीरेन्द्रसिंह की तलवार दूर जा गिरी। वीरेन्द्रसिंह बन्दी बना लिए गए।

विमला लौट पड़ी। अब भी दुर्गेशनन्दिनी की रक्षा का समय था। विमला उसकी ओर दौड़ी, परन्तु उसने देखा कि सभी जगह पठान छा गए थे। पठानों के दुर्ग को जीतने में संदेह न रहा था।

विमला फिर लौट पड़ी। वह विचारने लगी कि उस विपत्ति की दुर्गेशनन्दिनी और जगतसिंह को कैसे सूचना दी जाए। विमला एक कमरे में खड़ी-खड़ी चिन्ता कर रही थी। तभी बहुत से पठान-सैनिक दूसरा कमरा लूटकर, उसकी ओर आते दिखाई दिए। विमला उस कमरे में एक संदूक के पीछे जा छिपी। सैनिक उस कमरे में आकर चीजें लूटने लगे। विमला ने देखा कि अब वह बच नहीं सकती। सैनिक और चीजें लूटकर संदूक खोलेंगे तो उसे पकड़ लेंगे। विमला का साहस उस समय और बढ़ गया था। जब उसने देखा कि पठान-सैनिक लूट में व्यस्त थे तो वह धीरे से दबे पांव निकल भागी। सैनिक लूटने में व्यस्त रहे। विमला भागकर कुछ ही कदम बढ़ी थी कि एक सैनिक ने पीछे से आकर उसे पकड़ लिया।

विमला ने पलटकर देखा तो वह रहीम शेख थे। शेख बोले, 'आखिर अब कहां भागेगी तू। पकड़ ही लिया मैंने।'

विमला का मुंह हर्ष से खिल उठा। विमला ने सोचा कि अब इसीके द्वारा कार्योद्धार होगा। यह सोचकर विमला बोली, 'चुप रहो, चुपके से इधर आओ।'

विमला रहीम का हाथ पकड़े हुए उसे दूसरी ओर ले गई। रहीम चुपचाप चला गया। विमला ने निर्जन स्थान देखकर कहा, 'हरे राम ! यह तुमने क्या किया ? मुझे अकेली छोड़कर कहां चले गए थे तुम ? कोई ऐसी जगह नहीं, जहां मैंने तुम्हें न ढूंढ़ा हो।' यह कहकर विमला ने फिर कटाक्ष मारा।

शेख चित्त आया। उसका क्रोध जाता रहा। वह बोला, 'मैं सेनापति को जगतसिंह का समाचार देने के लिए गया था। उनका पता न पाकर फिर तुम्हारे पास लौटा। तुम्हें उस जगह न पाकर तुम्हें ढूंढ़ने लगा।'

'मैंने तुम्हें लौटने में देर हुई देखकर सोचा कि शायद तुम मुझे भूल गए। मैं तुम्हें खोजती फिर रही थी। अब देर क्यों ? तुम लोगों का दुर्ग पर अधिकार हो गया है। अब भागने का अवसर ढूंढ़ना चाहिए।'

'आज नहीं, कल सवेरे ! मैं बिना छुट्टी लिए कैसे जा सकता हूं ? कल सवेरे सेनापति से छुट्टी लेकर चलेंगे।'

'तब चलो, इस समय मेरे जो गहने हैं; उन्हें ले लें। किसी सैनिक के हाथ लग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए तो फिर नहीं मिलेंगे।'

शेख राजी हो गया। वह विमला के साथ चल पड़ा।

विमला रहीम को साथ लेकर अपनी रक्षा की बात सोच रही थी। वे कुछ ही दूर गए थे कि लूट में संलग्न पठानों से उनका सामना हुआ। विमला को देखते ही वे सब बोले, 'वाह भाई ! शिकार तो बढ़िया मारा है तुमने शेख ! बहुत खूब।'

रहीम बोला, 'भाई ! अपना-अपना काम देखो। इधर नजर न उठाना हमारी चीज की ओर।'

सैनिक शांत हो गए। फिर भी एक ने कहा, 'रहीम ! तुम्हारा भाग्य बहुत अच्छा है। कहीं यह नवाब के मुंह का ग्रास न बन जाए।'

रहीम के साथ विमला चल पड़ी। विमला रहीम से अपने नीचे वाले कमरे में जाकर बोली, 'यह मेरा नीचे वाला कमरा है। इस घर की जो-जो चीज लेना चाहो, ले लो। ऊपर मेरा सोने वाला कमरा है। उसमें से मैं अपने गहने ले आती हूं।' यह कहकर विमला ने ताली का गुच्छा उसके सामने फेंक दिया।

रहीम संतुष्ट होकर संदूक-पिटारे खोलने लगा। विमला पर अब उसका अविश्वास न रहा था। विमला ने कमरे से बाहर निकलकर किवाड़ बंद करके चटखनी चढ़ा दी। रहीम अकेला कमरे में बन्दी हो गया। वह वहां से बाहर नहीं आ सकता था।

8

विमला ऊपर के कमरे में गई। वहां अभी पठान-सेना नहीं पहुंची थी। उसने दुर्गेशनन्दिनी और जगतसिंह के कमरे में प्रवेश किया। दुर्गेशनन्दिनी पलंग पर बैठी थी और जगतसिंह पास में चुपचाप खड़े उसका मुख देख रहे थे। दुर्गेशनन्दिनी रो रही थी। जगतसिंह भी आंखें पोंछ रहे थे।

विमला ने समझा संभवतः वह विदाई का रोना था। अब राजकुमार विदा होना चाहते हैं।

विमला को देखकर जगतसिंह ने पूछा, 'यह कौतूहल कैसा है ?'

'यह पठानों की जय-ध्वनि है। शीघ्र उपाय करिए। एक क्षण में शत्रु यहां आ पहुंचेगा।'

'वीरेन्द्रसिंह क्या कर रहे हैं ?' जगतसिंह ने पूछा।

'वह शत्रु के बन्दी हो गए।' विमला ने बताया।

दुर्गेशनन्दिनी के गले से आह निकली और वह अचेत होकर गिर पड़ी। जगतसिंह बोले, 'देखो, इनका खयाल करो।'

विमला ने गुलाब-जल छिड़क कर दुर्गेशनन्दिनी को सचेत किया और पंखा झलने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी।

शत्रु का कोलाहल समीप आ रहा था। विमला रुआंसी-सी होकर बोली, 'वे आ रहे हैं राजपुत्र ? अब क्या होगा। ?'

जगतसिंह की आंखों से चिनगारियां निकलने लगीं। वह बोले, 'अब मैं क्या कर सकता हूं ? फिर भी तुम्हारी सखी कर रक्षा के लिए अपना प्राण-त्याग करूंगा। इससे अधिक कुछ नहीं।'

शत्रुओं का भीषण नाद निकट आ गया। अस्त्रों की झनकार सुनाई पड़ने लगी। विमला बोली, 'दुर्गेशनन्दिनी आंख खोलो।'

दुर्गेशनन्दिनी की आंखें खुल गईं।

विमला बोली, 'दुर्गेशनन्दिनी को चेतना लौट रही है राजकुमार ! किसी तरह इसे बचाओ।'

इस कमरे में रहते रक्षा कैसे हो सकती है ? यदि इस कमरे से बाहर हो सकूं और दुर्ग के बाहर ले जा सकूं तो रक्षा हो सकती है, परन्तु इनमें तो हिलने की भी शक्ति नहीं है। विमला, देखो पठान ड्योढ़ी पर पहुंच गए हैं। मैं पहिले प्राण दूंगा, परन्तु खेद इसी बात का है कि प्राण देकर भी इनकी रक्षा न कर सकूंगा।'

विमला ने पलक मारते दुर्गेशनन्दिनी को गोद में उठा लिया और बोली, 'चलिए, मैं इसे गोद में ले चलती हूं।'

विमला और जगतसिंह कमरे के द्वार पर पहुंचे। तभी दौड़ते हुए चार पठान सामने आ गए।

जगतसिंह बोले, 'विमला ! समय नहीं मिला। तुम मेरे पीछे आओ।'

पठान, 'अल्ला हो अकबर' चिल्लाते हुए उछलने लगे। उनकी तलवारें झनकार उठीं। उस चीत्कार के समाप्त होने पर जगतसिंह की तलवार एक पठान की छाती के पार हो गई। पठान धराशायी हो गया। एक पठान का भाला जगतसिंह की गर्दन पर आया, परन्तु जगतसिंह ने बाएं हाथ से भाला पकड़ा और उसी से एक क्षण में पठान को मारकर गिरा दिया। शेष दोनों पठानों ने एक साथ जगतसिंह पर वार किया, परन्तु जगतसिंह ने बिजली की तरह कड़ककर दोनों को धराशायी कर दिया। एक वार जगतसिंह की गर्दन पर भी पड़ा। कुमार आहत होकर आहत शेर की तरह और प्रचण्ड हो गए। निशाना तो उसने छाती पर मारा था, लेकिन वह लगा बांई बांह पर और गहरा घाव हो गया। राजपुत्र को वह आघात ठीक वैसा ही जान पड़ा जैसे सुई फंसी हो। उन्होंने उस पठान की कमर पर एक लात जमाई तो वह आठ हाथ दूर जा गिरा। तभी पठानों की एक और टुकड़ी वहां पहुंच गई। राजपुत्र समझ गए कि अब मृत्यु निश्चित है।

राजपुत्र के शरीर से खून बह रहा था। रक्त बहने से उनका बदन अवसन्न-सा हो रहा था। वह निस्तेज हो गए थे।

विमला की गोद में दुर्गेशनन्दिनी अब भी बेहोश थी। उसे गोद में लिए हुए विमला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रो रही थी। उसके वस्त्र राजपुत्र के खून से रंगे गए थे। वह सोच रही थी कि अब क्या होगा।

कमरा पठानों से भर गया। राजपुत्र तलवार पर झुके हुए सांस ले रहे थे। उसी समय एक पठान बोला, 'अब तुम हथियार डाल दो तो हम तुम्हें नहीं मारेंगे।'

युवराज ने एक ही वार में उस पठान का सिर गर्दन से अलग कर दिया। उसके बाद वह दोनों हाथों में तलवार लेकर बोले, 'कुत्तो ! अब देखो, राजपूत कैसे अपने प्राण देता है।'

कमरे में बिजली कौंधने लगी। राजकुमार ने समझ लिया था कि युद्ध समाप्त है। कितने ही पठान आहत होकर धराशायी हो गए थे। राजकुमार पर चारों ओर से शस्त्रों की वृष्टि होने लगी। राजकुमार की बाहु क्षीण होने लगी। उनका माथा चक्कर खाने लगा।

'खबरदार ! कोई राजपुत्र को जान ने न मारे। इस शेर को जीवित ही पकड़ लेना होगा।'

राजपुत्र की बांहें ढीली पड़ गईं थीं। उनकी मुट्ठी से तलवार गिर पड़ी। उनकी बाहें लम्बी पड़ गईं। राजपुत्र लड़खड़ाकर गिर पड़े।

उसमान बोला, 'खबरदार ! राजपुत्र का अंग स्पर्श न करना।'

पठान लौट गए। उसमान ने एक सैनिक की सहायता से युवराज को पलंग पर लिटा दिया। अभी कुछ क्षण पहिले युवराज ने मन में सोचा था कि दुर्गेशनन्दिनी के साथ विवाह कर वह उसके साथ उस पलंग पर लेटेंगे। उसी पलंग पर इस समय उनका बदन अचेतन अवस्था में पड़ा था।

जगतसिंह को लिटाने के पश्चात् उसमान ने सैनिकों से पूछा, 'वे दोनों स्त्रियां कहां हैं ?'

उसमान ने उन्हें वहां न देखा। जब दूसरी बार पठान कमरे में पहुंचे तो विमला दृष्टि बचाकर पंलग के नीचे छिप गई थी। उसमान ने उन लोगों को न देखकर कहा, 'स्त्रियां कहां हैं ? किले में खोज करो। वह बांदी भयानक बुद्धिमती थी। यदि वह भाग गई तो हम लोग निश्चिन्त नहीं रह सकते, परन्तु सावधान ! वीरेन्द्रसिंह की कन्या पर अत्याचार न होने पाए।'

सैनिक किले में चारों ओर खोजने लगे। एक सैनिक उसी कमरे में खोज कर बोला, 'वे यहीं हैं।'

उसमान का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। वह बोला, 'तुम लोग बाहर निकल आओ, डरो नहीं।'

विमला पलंग के नीचे से पहिले निकली और फिर दुर्गेशनन्दिनी को निकालकर अपने पास बिठा लिया। उस समय दुर्गेशनन्दिनी की अचेतनता जाती रही थी। उसने विमला से कहा, 'हम लोग कहां हैं ?'

विमला धीरे से बोली, 'चिन्ता न करो। चेहरे पर अवगुण्ठन डालकर बैठो। बोलो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं कुछ।'

जिस सैनिक ने उन्हें खोजा था, वह बोला, 'हजूर ! गुलाम ने ही इन्हें खोजकर निकाला है।'

उसमान बोला, 'इनाम चाहते हो ? क्या नाम है तुम्हारा ?'

'गुलाम का नाम करीमबख्श है। लेकिन इस नाम से मुझे कोई नहीं जानता। पहिले मैं मुगल फौज में था। वहां सब लोग मजाक में मुझे मुगल-सेनापति कहते थे।'

विमला कांप उठी। अभिराम स्वामी की बात उसे याद आ गई।

9

जगतसिंह की आंखें खुलीं तो उन्होंने देखा कि वह सुन्दर पलंग पर लेटे थे। उनका बदन घायल हो गया था। कमरे में शांति थी, मानो वहां कोई नहीं था। दासी उन्हें पंखा झल रही थी। स्त्री पलंग के पास पुतली की तरह बैठी आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ी थी। एक स्त्री उनके घावों पर सावधानी से मरहम लगा रही थी। एक गलीचे पर एक पठान बैठा फारसी की किताब पढ़ रहा था। न कोई कुछ बोल रहा था, न कमरे में किसी प्रकार का नाद था।

राजपुत्र ने आंखें खोलकर एक बार चारों ओर देखा। करवट लेनी चाही, परन्तु हिल न सके। शरीर बुरी तरह घायल था।

पलंग पर बैठी स्त्री मधुर स्वर में बोली, 'चंचल न होइए, शांत रहिए। आपके बदन पर अनेकों घाव हैं।'

'मैं कहां हूं ?' जगतसिंह ने ज्ञात किया।

उसीने मधुर स्वर में कहा, 'बातें न करिए। आप उत्तम स्थान पर हैं। कोई चिन्ता न कीजिए, बोलिए नहीं।'

'क्या समय है ?' जगतसिंह ने पूछा।

'मौन रहिए। बात करने से आप बच न सकेंगे। आप यदि चुप न रहेंगे तो हमें यहां से हट जाना होगा।'

'तुम कौन हो ?' जगतसिंह ने पूछा।

'आयशा।' युवती ने उत्तर दिया।

राजपुत्र चुप होकर आयशा का चेहरा देखने लगे। क्या कभी और कहीं उन्होंने उसे देखा था ?

आयशा की आयु कोई बाईस वर्ष की थी। आयशा के सौन्दर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता था। दुर्गेशनन्दिनी परम सुन्दरी थी, परन्तु आयशा का सौंदर्य उस प्रकार का नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजपुत्र आयशा की ओर बहुत देर तक देखते रहे। उन्हें दुर्गेशनन्दिनी की याद आ गई। याद आते ही उनका हृदय विदीर्ण होने लगा। उनकी नसों में तेजी से रक्त बहने लगा। उनके घावों से एक बार फिर खून बहने लगा। वह विह्वल हो उठे।

पलंग पर बैठी सुन्दरी भयभीत होकर खड़ी हो गई। जो व्यक्ति गलीचे पर बैठकर पुस्तक पढ़ रहा था, वह बीच-बीच में पुस्तक से आंखें हटाकर बड़ी ही कोमल दृष्टि से आयशा को देख लेता था, उस सुन्दरी की डरी हुई मोहिनी मूर्ति, उसके कान के कुण्डल आदि का हिलना वह एकटक देख रहा था। उस सुन्दरी ने कहा, 'उसमान! जल्दी से हकीम के पास आदमी भेजो। घावों से खून बह रहा है।'

आयशा की बात सुनकर वह उठकर चला गया।

आयशा मूर्च्छागत राजपुत्र के मुंह और कपोलों पर जल लेकर बार-बार छिड़कने लगी।

उसमानखां तुरन्त हकीम को साथ लेकर लौट आया। हकीम ने दवा देकर बड़ी मुश्किल से रक्त-प्रवाह रोका। उसके बाद उन्होंने आयशा को कई दवाएं दीं और धीरे-धीरे उनके प्रयोग की विधि बताई।

आयशा ने धीरे से पूछा, 'अब इनकी कैसी दशा है ?'

'ज्वर बहुत भयंकर है।' हकीम बोला।

जब हकीम जाने लगा तो उसमानखां उसके साथ दरवाजे तक गया और धीरे से पूछा, 'क्या रोगी बच जाएगा ?'

हकीम बोला, 'लक्षण तो ठीक नहीं हैं। तकलीफ बढ़े तो मुझे तुरन्त बुलाना। अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।'

बहुत रात तक आयशा और उसमान जगतसिंह के पास बैठे रहे। जगतसिंह को कभी चेतना होती थी और कभी मूर्च्छना। हकीम कई बार आकर देख गया। आयशा कुमार की सेवा करने लगी। उसी समय एक दासी ने आकर आयशा से कहा, 'बेगम साहिबा आपको याद फरमा रही हैं। अन्दर चलिए।'

'आती हूं', कहकर आयशा खड़ी हो गई। उसमान भी उठकर खड़ा हुआ। राह में उसमान ने पूछा, 'क्या रात को तुम बेगम के पास रहोगी ? यहां लौटकर तो नहीं आओगी ?'

आयशा बोली, 'नहीं, मैं राजपुत्र के पास लौट आऊंगी।'

उसमान बोला, 'आयशा ! तुम्हारे गुणों की सीमा नहीं है। अपने शत्रु की जैसी सेवा तुम कर रही हो, वैसी बहिन अपने भाई की भी नहीं कर सकती। तुम इसे प्राण दे रही हो।'

आयशा मुस्कुराकर बोली, 'उसमान ! मैं तो स्वभाव से ही ऐसी हूं। पीड़ित की सेवा करना मेरा धर्म है। न करने पर दोष है, करने पर कोई प्रशंसा नहीं, परन्तु तुम्हारा क्या है ? जो तुम्हारा शत्रु है, रण में तुम्हारे गर्व को चूर करने वाला है, अपने हाथों जिसकी तुमने यह दशा की है, तुम जो रात-दिन उसकी इतनी सेवा कर रहे हो यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशंसा की बात है। मैं तारीफ करती हूं इसकी।'

उसमान बोला, 'आयशा ! तुम अपने अनुरूप ही सबको देखती हो। मेरा अभिप्राय उतना अच्छा नहीं है। तुम नहीं जानतीं कि जगतसिंह के बचने से हमारा कितना लाभ है। इनकी मृत्यु से हमारी क्या दशा होगी ? युद्ध में मानसिंह जगतसिंह से कम नहीं है। एक के बदले दूसरा आएगा। यदि यह जीवित रहकर हमारे कारागार में रहेंगे तो मानसिंह हमारे हाथ में रहेंगे। वह अपने पुत्र की मुक्ति के लिए अवश्य हम लोगों के साथ संधि कर लेंगे। अकबर भी अपने सेनापति को प्राप्त करने के लिए संधि करने को उद्यत हो जायेंगे। यदि जगतसिंह के प्रति सद्व्यवहार द्वारा हम उन्हें अपने वश में कर सके, तो वह स्वयं भी हमसे संधि के लिए प्रयत्न करेंगे। उनका प्रयत्न सफल होगा। यदि कुछ भी फल न हुआ तो हम जगतसिंह के लिए मानसिंह से अपार धन-राशि प्राप्त कर सकेंगे। इस युद्ध में सफल होने की अपेक्षा जगतसिंह के जीवन से हम लोग अधिक लाभ उठा सकेंगे।'

आयशा हंसकर बोली, 'उसमान ! सभी तुम्हारी तरह स्वार्थ से दूरदर्शी हो जायेंगे तो धर्म की जरूरत न रहेगी।'

उसमान बोला, 'मैं कितना बड़ा स्वार्थी हूं, इसका दूसरा प्रमाण देता हूं। सुनना चाहती हो तुम ?'

आयशा ने अपनी आंखें उसमान के चेहरे पर फैला दीं।

उसमान बोला, 'मैं किसी आशा को लगाए हुए हूं आयशा ! अभी और कितने दिन उसे सींचना होगा ?'

आयशा गम्भीर हो गई। उसमान ने आयशा के चेहरे पर एक नया सौन्दर्य देखा। आयशा बोली, 'उसमान ! मैं बहिन की तरह तुम्हारे पास आती हूं। अधिक परेशान करोगे तो समझ लेना कि मैं तुम्हारे सामने कभी नकाब न उतारूंगी।'

उसमान का मुस्कुरता हुआ चेहरा फीका पड़ गया। वह बोला, 'जब देखो तब ऐसी ही बातें। लगता है तुम्हारे इतने कोमल बदन में दिल की जगह खुदा ने पत्थर रख दिया है ?'

उसमान आयशा को महल में पहुंचाकर अपने आवास को लौट गया। उसका मन अत्यन्त उदास था उस समय।

जगतसिंह अभी विषम ज्वर में अचेत थे। उनकी दशा बहुत खराब थी। उनका सारा बदन घावों से भरा था और उनसे रह-रहकर रक्त बहने लगता था।

10

दूसरे दिन जगतसिंह के कमरे में आयशा, उसमान ओर हकीमजी बैठे थे। आयशा पलंग पर बैठी जगतसिंह को पंखा झल रही थी। चिकित्सक बार-बार जगतसिंह की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाड़ी देख रहा था। वह पूर्ववत अचेत थे। चिकित्सक बोला, आज ज्वर टूटते समय जगतसिंह के समाप्त होने का भय है। यदि उस समय बच गए, तो फिर चिन्ता न रहेगी। फिर यह ठीक हो जायेंगे।'

ज्वर उतरने का समय आ गया था। इसलिए सब लोग चिन्तित थे। नाड़ी बहुत क्षीण थी। वह और भी क्षीण पड़ गई थी। सहसा चिकित्सक का मुंह चिन्तापूर्ण हो गया। वह बोला, 'समय आ गया मालूम देता है। अब बचना मुश्किल लग रहा है।'

आयशा और उसमान अस्थिर हो उठे। उनके चेहरों पर चिन्ता के भाव छा गए। वे व्यग्र हो उठे।

हकीम बोला, 'नाड़ी की गति बहुत मन्द है।'

आयशा का चेहरा म्लान हो गया। जगतसिंह का चेहरा बिगड़ गया। मुंह पीला पड़ गया, बदन ऐंठने लगा, आंखें अन्दर को जने लगीं। आयशा समझ गई कि उनके बचने की कोई आशा नहीं रही।

चिकित्सक ने जगतसिंह के मुंह में एक दवा डाली। दवा के अन्दर जाते ही रोगी की दशा में परिवर्तन दिखाई दिया। चेहरे का पीलापन कुछ कम हुआ, रक्त-संचार कुछ ठीक होने लगा। हकीम बड़े ध्यान से नाड़ी देखने लगा। कुछ देर नाड़ी देखने के पश्चात् बोला, 'अब रोगी संकट से बाहर है, जान बच गई।'

'बुखार हट गया ?' उसमान ने पूछा।

'हां।' चिकित्सक ने बताया। आयशा और उसमान, दोनों के चेहरों पर प्रसन्नता छा गई। चिकित्सक बोला, 'अब कोई फिक्र की बात नहीं है। मेरे बैठे रहने की जरूरत नहीं रही। दो प्रहर रात तक यह दवा चार बार इन्हें और देना। यह ठीक हो जायेंगे।'

हकीम चला गया। उसमान भी थोड़ी देर और बैठकर चला गया। आयशा पलंग पर बैठी रही और समय-समय पर उसने दवा दी। उसने रात भर उनका ध्यान रखा।

आधी रात से कुछ देर पूर्व राजपुत्र ने आंखें खोलीं। उन्होंने आयशा की ओर देखा। राजपुत्र की आंखों का भाव देखकर आयशा ने समझा शायद उन्हें कुछ भ्रम हुआ। उसे लगा कि वह कुछ याद करने की चेष्टा में थे, परन्तु व्यर्थ। बहुत देर बाद आयशा की ओर देखकर पूछा, 'मैं कहां हूं ?'

'आप कतलूखां के किले में हैं।' आयशा ने बताया।

'मैं यहां कैसे आया ?' उन्होंने दूसरा प्रश्न किया।

आयशा ने कुछ मौन रहकर उत्तर दिया, 'आप पीड़ित हैं। इसलिए बोलिए नहीं। हकीम ने बोलने को मना किया है।'

'नहीं-नहीं, मैं बन्दी हो गया हूं। मुझे यहां बन्दी बनाकर लाया गया है। तुम मुझे बतलाना नहीं चाहतीं।'

उन्होंने थोड़ी ही देर बाद पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'मेरा नाम आयशा है।' आयशा ने बताया।

'आयशा कौन ?' जगतसिंह ने पूछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कतलूखां की लड़की।' आयशा ने कहा।

राजपुत्र फिर कुछ देर चुप रहे। बोलने की उनमें शक्ति नहीं थी। कुछ देर ठहरकर पूछा, 'मैं यहां कितने दिन से हूं ?'

'चार दिन से।' आयशा ने बताया।

'क्या मान्दारण तुम्हारे अधिकार में आ गया ?'

'हां, वह इस समय हमारे ही पास है।'

जगतसिंह ने फिर कुछ देर मौन रहकर पूछा, 'वीरेन्द्रसिंह का क्या हुआ ? क्या वह जीवित है ?'

'वह कारागार में हैं। आज उनके बारे में विचार होगा।'

जगतसिंह का मुख मलिन हो गया। उन्होंने फिर पूछा, 'उनके अन्य संबंधियों का क्या हाल है ? वे किस दशा में हैं ?'

आयशा बोली, 'ये सब बातें मुझे पता नहीं।'

राजपुत्र के मुख से अनायास ही निकल गया, 'दुर्गेशनन्दिनी ! तुम कहां हो ? तुम किस दशा में हो इस समय ?'

आयशा वहां से उठकर दवा लेने चली गई। राजपुत्र उसकी ओर देख रहे थे। आयशा दवा लेकर लौटं आई। उसने राजपुत्र को दवा पिला दी। दवा पीकर उन्हें कुछ आराम मिला।

राजपुत्र बोले, 'मैंने एक स्वप्न देखा था। एक देव-कन्या मेरे सिरहाने बैठकर मेरी सेवा कर रही थी। वह तुम थीं या दुर्गेशनन्दिनी थीं ? बता सकती हो तुम ?'

आयशा ने उत्तर दिया, 'आपने स्वप्न में दुर्गेशनन्दिनी को ही देखा होगा क्योंकि मुझसे तो आपका कोई पूर्व परिचय नहीं था। मुझे आप अपने स्वप्न में कैसे देख सकते थे ?'

गढ़ मान्दारण पर कतलूखां का अधिकार हो गया था और आज वीरेन्द्रसिंह के विषय में विचार होना था। उसीके लिए कचहरी लगी थी। कतलूखां बीच में बैठा था। हजारों आदमी खड़े थे। वीरेन्द्रसिंह उनके समक्ष खड़े थे।

कई सशस्त्र सिपाही वीरेन्द्रसिंह को घेरे हुए थे। वीरेन्द्रसिंह के मस्तक पर भय का कोई चिह्न नहीं था। उनकी आंखों से आग की चिंगारियां निकल रही थीं। कतलूखां ने वीरेन्द्रसिंह से पूछा, 'वीरेन्द्रसिंह ! तुमने मेरे विरुद्ध कार्यवाही की है। तुम्हें इसकी सजा भुगतनी होगी। तुम्हें सजा भुगतने को तैयार रहना चाहिए।'

वीरेन्द्रसिंह अपने क्रोध को जब्त करके बोले, 'तुम्हारे विरुद्ध मैंने क्या किया है जरा बताइए तो ?'

'मेरी आज्ञा के अनुसार तुमने धन और सेना भेजने को मना कर दिया।' कतलूखां ने कहा।

'तुम राजविद्रोही हो। मैं तुम्हें धन क्यों देता ? मैं तुम्हें सेना क्यों देता ?' वीरेन्द्रसिंह ने निर्भीकतापूर्वक कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरेन्द्रसिंह स्वयं अपना सिर उतरवाने को उद्यत थे। उनके उत्तर से यही प्रतीत हुआ। वह भयभीत नहीं थे।

कतलूखां क्रोध से कांप उठे, परन्तु उन्होंने क्रोध को पी जाना भी सीखा था। वह शांत बने रहे। कुछ देर मौन रहकर बोले, 'तुमने मेरे अधिकार में रहकर मुगलों से मेल किया। क्या यह अपराध नहीं किया तुमने ?'

'मुझ पर तुम्हारा अधिकार कब था ?' वीरेन्द्रसिंह ने कहा।

कतलूखां बोले, 'तो सुन ! तू कर्म का फल भोगेगा। मुझे तेरे जीवन की आशा थी। तू अपने अभिमान से स्वयं अपने विनाश पर तुला है। तू मरना ही चाहता है तो मर।'

वीरेन्द्रसिंह सगर्व हंसते हुए बोले, 'कतलूखां ! मैं जब तुम्हारे सामने सीखचों में बंधा हुआ आया था तो दया की आशा लेकर नहीं आया था। तुम्हारे जैसे शत्रु की दया पर जिसका जीवन निर्भर है, उसका जीवन व्यर्थ है। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हुआ मरता, परन्तु तुमने मेरे पवित्र कुल को दाग लगा दिया। तुमने मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय धन को....।' कहते-कहते वीरेन्द्रसिंह कुछ आगे न बोल सके। उनका स्वर भारी हो गया और आंखों में आंसू आ गए।

कतलूखां स्वभाव से निष्ठुर था, इतना निष्ठुर कि दूसरे को कष्ट में देखकर उसकी आत्मा प्रसन्न होती थी। वह बोला, 'वीरेन्द्रसिंह ! क्या तुम मुझसे कुछ मांगोगे नहीं? मैं तुम्हें कुछ देना चाहता हूं।'

वीरेन्द्रसिंह का हृदय दग्ध हो उठा। वह कुछ शांत होकर बोले; 'मैं इस समय केवल यही चाहता हूं कि मुझे खत्म करने में देर न की जाए। मैं मरना चाहता हूं, जीना नहीं।'

'यही होगा और कुछ ?' कतलूखां ने कहा।

'और कुछ नहीं।' वीरेन्द्रसिंह ने कहा।

'मृत्यु से पूर्व अपनी कन्या से भेंट करोगे ?'

वीरेन्द्रसिंह की आंखों से फिर आग निकलने लगी। वह गम्भीर वाणी में बोले, 'यदि वह तुम्हारे घर में है तो भेंट नहीं करूंगा। यदि मर गई हो तो ले आओ, मैं उसे गोद में लेकर मरूंगा।'

दर्शक एकदम शांत थे, इतने शांत कि सुई गिरने का भी शब्द सुनाई पड़े। नवाब का संकेत पाकर एक मुसलमान ने वीरेन्द्रसिंह के कान में कुछ कहा, परन्तु वीरेन्द्रसिंह समझ न सके। उसने उनके हाथ में एक पत्र दिया। वीरेन्द्रसिंह ने पत्र देखा, वह विमला के हाथ का था। वीरेन्द्रसिंह ने विरक्ति के साथ उसे फाड़कर दूर फेंक दिया। पत्रवाहक ने पत्र को उठा लिया। एक दर्शक ने वीरेन्द्रसिंह का यह कार्य देखकर दूसरे दर्शक से कहा, 'शायद लड़की की चिट्ठी थी।'

वीरेन्द्रसिंह सुनकर बोले, 'कौन कहता है कि मेरी कोई लड़की है ? मेरी कोई लड़की नहीं है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रवाहक चला गया। वह रक्षकों से बोला, 'जब तक मैं न आऊं, तब तक ठहरना। मेरे आने से पहिले कुछ न हो।'

'जो आज्ञा हुजूर ?' पत्रवाहक उसमान स्वयं था, इसलिए रक्षक ने उसे हुजूर कहा था।

उसमान अन्तःपुर में गया। वहां एक स्त्री खड़ी थी। उसमान ने उससे जो कुछ हुआ, वह सब कहा। वह बोली, 'आपको बहुत तकलीफ दे रही हूं, परन्तु आपके ही कारण हमारी यह दशा हुई है। आपको मेरा यह काम करना होगा।'

उसमान चुप रहा। वह स्त्री कांपती हुई बोली, 'न करना हो तो न कीजिए। हम लोग तो इस समय अनाथ हैं।'

उसमान बोला, 'मां ! तुम नहीं जानतीं कि तुम मुझे कितने कठिन काम में डाल रही हो। यदि कतलूखां को मालूम हो गया तो वह मुझे खत्म करा देगा। तुम कतलूखां को नहीं जानतीं।'

'मुझे धोखा मत दो। कतलूखां तुम्हारा बाल भी बांका नहीं कर सकता।' स्त्री ने कहा।

उसमान के पीछे-पीछे वह स्त्री वध भूमि में जाकर खड़ी हो गई। वीरेन्द्रसिंह एक भिखारी वेशधारी ब्राह्मण से बातें कर रहे थे। उस स्त्री ने देखा कि वह अभिराम स्वामी थे।

वीरेन्द्रसिंह अभिराम स्वामी से बोले, 'गुरुदेव ! अब विदा होता हूं। मैं आपसे क्या कहूं ? इस लोक में अब मैं किसके लिए कुछ कहूं ?'

अभिराम स्वामी ने उंगली के संकेत से पीछे खड़ी स्त्री को दिखाया। वीरेन्द्रसिंह ने उधर देखा तो वह स्त्री वीरेन्द्रसिंह के चरणों पर गिर पड़ी।

वीरेन्द्रसिंह बोले, 'विमला तुम !'

'पतिदेव ! प्राणेश्वर !' कहते-कहते विमला उन्मादिनी की तरह बोली, 'अब मैं संसार के समक्ष कहूंगी, कौन मना कर सकता है ? स्वामी तुम कहां जा रहे हो ? हम लोगों को जिसके भरोसे छोड़कर जा रहे हो तुम ?'

वीरेन्द्रसिंह की आंखों से आंसुओं की धारा बह रही थी। उन्होंने विमला का हाथ पकड़ कर कहा, 'विमला ! प्रियतमे ! इस समय मुझे रोक रही हो ? शत्रु देखेंगे तो कहेंगे कि मैं मरने से डरता हूं। मैं मरने से नहीं डरता।'

विमला शांत रही। वीरेन्द्रसिंह बोले, 'विमला ! मैं जाता हूं।'

'मैं भी आऊंगी ! अवश्य आऊंगी पतिदेव ! परन्तु इस सबका बदला लेकर आऊंगी, इससे पहिले नहीं।'

वीरेन्द्रसिंह का चेहरा दमक उठा। वह बोले, बदला ले सकोगी तुम इसका ? है तुममें इतनी सामर्थ्य ?'

विमला अपना दाहिना हाथ दिखाकर बोली, 'इन हाथों का सोना उतारकर फेंकती हूं। अब इसकी आवश्यकता नहीं रही।' कहकर उसने हाथों के कंकणादि उतारकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फेंक दिए और कहा, 'इन हाथों से अब तलवार और रक्त के अतिरिक्त और कुछ न छुऊंगी, शपथ लेती हूं प्राणनाथ ! यह प्रण पूरा करूंगी।

वीरेन्द्रसिंह संतुष्ट होकर बोले, 'तुम अवश्य बदला ले सकोगी। प्रभु तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करें।'

'मैं अब देर नहीं कर सकता।' सरदार ने कहा।

'तुम जाओ विमला !' वीरेन्द्रसिंह बोले।

'नहीं, मेरे सामने सिन्दूर की होली खिलेगी। मैं रक्त से मन का भय दूर करूंगी।' विमला का स्वर बहुत भयानक था।

'यही हो।' कहकर वीरेन्द्रसिंह आगे बढ़ गये।

जल्लाद का कुठार धूप में चमक उठा। उसका हाथ चला और वीरेन्द्रसिंह का कटा हुआ सिर रुधिर में सना भूमि पर गिर पड़ा।

विमला प्रस्तर-मूर्ति के समान खड़ी रही। उसकी आंखों में एक बूंद भी आंसू न था। वह अपलक दृष्टि से उस कटे सिर को देखती रही।

11

कतलूखां सोच रहा था कि वीरेन्द्रसिंह ने मृत्यु के समय अपनी कन्या से भी भेंट नहीं की ? उसका नाम सुनते ही वह क्यों आग-बगूला हो उठे।

वीरेन्द्रसिंह ने क्यों कतलूखां का तिरस्कार करके इतनी भयानक घटना घटवा दी ? 'पवित्र कुल में दाग लगाया।' यह उसने क्यों कहा ?

कतलूखां किसी वर्ग या ग्राम को जीतने पर वहां कोई सुन्दरी बन्दिनी होती थी तो उसे अपने महल में भेज देता था। गढ़ मान्दारण को जीतने पर दूसरे दिन कतलूखां वहां पहुंचा। उसने बन्दियों के विषय में आज्ञा की और गढ़ की रक्षा के लिए सेना भेज दी।

विमला और दुर्गेशनन्दिनी को उसने अपने विलास-गृह में भेज दिया था। उसके पश्चात् वह अन्य कार्यों में लग गया था। उसने सुना कि कुमार जगतसिंह के बन्दी होने का समाचार पाकर उनकी सेना कहीं निकट में ही आ टिकी है और आक्रमण करने का अवसर देख रही है। वह गढ़ की रक्षा में इतना फंस गया कि उसे उन स्त्रियों के साथ सहवास का अवसर ही न मिला।

विमला के मस्तक पर धूलि लगी थी। वह बहुत मैले वस्त्र पहिने थी। उसके मस्तक पर एक घाव था, जिससे रक्त बह रहा था। वह उस समय उसमान की प्रतीक्षा में थी।

उसमान पठान कुलतिलक था। युद्ध-विजय के लिए कोई भी काम करने में उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकोच नहीं था, परन्तु उसके सिद्ध हो जाने पर पराजित पर व्यर्थ अत्याचार करना उसे पसन्द नहीं था। यदि कतलूखां ने विमला और दुर्गेशनन्दिनी को बन्दिनी बनाने की आज्ञा न दी होती तो उसमान उन्हें कभी बन्दिनी बनाकर न लाता। उसीकी कृपा से विमला ने मृत्यु के समय अपने पति के दर्शन किए थे। जब उसमान को यह ज्ञात हो गया कि विमला वीरेन्द्रसिंह की पत्नी है तो वह उसके प्रति और भी सदय हो उठा था। उसमान कतलूखां के भाई का लड़का था। वह अन्तःपुर में कहीं भी जा सकता था, परन्तु जिस महल में कतलूखां की उपपत्नियां रहती थीं, वहां वह भी नहीं जा सकता था।

वैधव्य के दो दिन पश्चात् विमला ने अपने गहने अपने पास नियुक्त दासी को दे दिए थे। दासी ने पूछा, 'मुझे क्या आज्ञा है ?'

'तू उसमान के पास जा। उनसे कहना कि मैं एक बार उनसे भेंट की भिक्षा चाहती हूं। कहना यही अन्तिम प्रार्थना है, फिर उनसे कोई प्रार्थना न करूंगी। उन्हें फिर कोई कष्ट न दूंगी।'

दासी ने आज्ञा का पालन किया। उसमान ने कहलाया, 'उस महल में उनके आने पर दोनों संकटग्रस्त हो सकते हैं। उन्हें मेरे महल में आने को कहो।'

विमला बोली, 'मैं वहां कैसे जा सकती हूं ?'

दासी बोली, 'इसका प्रबन्ध वह कर देंगे।'

संध्या होने के पश्चात् वही दासी अन्तःपुर के रक्षकों से न जाने क्या बात करके विमला को अपने साथ उसमान के पास ले गई। यह कार्य उसने बहुत चतुराई से किया।

उसमान ने पूछा, 'मैं तुम्हारा क्या उपकार कर सकता हूं ?'

'साधारण-सी बात है। क्या कुमार जगतसिंह जीवित हैं ?'

'हां वह बच गए हैं।' उसमान ने बताया।

'मुक्त हैं या बन्दी ?' विमला ने पूछा।

'बन्दी तो अवश्य हैं, परन्तु अभी बन्दी-गृह में नहीं हैं। वह घायल हैं और खाट पर पड़े हैं। कतलूखां के अनजाने में मैंने उन्हें अन्तःपुर में रक्खा हुआ है। वहां उनका विशेष उपचार हो रहा है।'

'इस अभागी के सम्पर्क मात्र से उनका यह अमंगल हुआ। यदि राजकुमार बच जाएं तो उन्हें यह पत्र दे दें। इसे अपने पास रखें, यही मेरी भिक्षा है।' विमला ने गम्भीर भाव से कहा।

'यह मैं न कर सकूंगा। यहां राजपुत्र चाहे जिस अवस्था में भी क्यों न हों, बंदी ही हैं। बंदी को दिया जाने वाला पत्र बिना पढ़े नहीं दिया जा सकता।' उसमान ने कहा।

'इस पत्र में आपके अनिष्ट की कोई बात नहीं है। अतः यह अवैध न होगा। रही कतलूखां के आदेश की बात, सो आप स्वयं अपने स्वामी हैं। आपको किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी की आवश्यकता नहीं है।'

'अन्य बातों में मैं उनका आदेश टाल सकता हूं, परन्तु इन बातों में नहीं। आप जब यह कहती हैं कि इसमें हमारे लिए हानिकारक कोई बात नहीं है तो इसे मैं मान लेता हूं, परन्तु इस विषय में मैं नियम को भंग नहीं कर सकता। मैं इस कार्य को न कर सकूंगा।'

'तब आप इसे पढ़कर देख लीजिए और यदि उचित समझें तो उन्हें दे दीजिए।' विमला ने निःसंकोच भाव से कहा।

उसमान बोला, 'हां यह सम्भव है।' वह पत्र पढ़ने लगा।

'युवराज ! मैंने तुम्हें वचन दिया था कि आपको एक दिन अपना परिचय दूंगी। अब वह समय आ गया है कि मैं अपना परिचय दे सकूं। सोचा तो यह था कि दुर्गेशनन्दिनी के अम्बर-कुमार-पत्नी बनते समय वह परिचय दूंगी, परन्तु वह आशा व्यर्थ रही। शायद कुछ दिन बाद आप सुनेंगे कि दुर्गेशनन्दिनी संसार में नहीं रही, विमला भी नहीं रही। हमें आप समझें कि मर चुकीं।

इसीलिए यह पत्र लिख रही हूं। मैं बड़ी पापिन हूं। मैंने अनेकों पाप किए हैं। मेरे मर जाने पर लोग मेरी निन्दा करेंगे, बहुत-सी बातें कहेंगे। कौन मरे नाम की कालिमा को धो सकेगा ? ऐसा कोई दुनिया में नहीं है जो मेरी कालिख को धो सके।

एक सुहृदय हैं, वह भी संसार को त्यागकर तपस्या करने चले जाएंगे। उनसे दासी का कार्योद्धार नहीं हो सकता। मैंने सोचा था कि मैं आपके अपने जनों में गिनी जाऊंगी। एक दिन के लिए आप मेरे आत्मीय जैसा कार्य कर दासी की इस भिक्षा को याद रखिए। यह सच है कि विमला नीच जाति से थी, अभागिन थी, परन्तु गणिका नहीं थी वह। जो स्वर्ग चले गए, उन्होंने मेरा पाणिग्रहण किया था। विमला कभी अपने पति के प्रति विश्वासघातिनी नहीं रही।

यह बात कभी किसीने नहीं सुनी, आज कौन विश्वास करेगा ? क्यों पत्नी होकर मैं दासी की तरह रही, यह भी बताती हूं।

मान्दारण के पास किसी गांव में शशिशेखर भट्टाचार्य रहते थे। वह सम्पन्न ब्राह्मण-पुत्र थे।

मान्दारण में एक पति विरहिणी रमणी थी। वह बहुत सुन्दर थी। उसके पति राणा की सेना के सिपाही थे। वह बहुत दिनों से देशत्यागी थे। उस सुन्दरी को शशिशेखर ने देखा। दोनों का सम्बन्ध हो गया और वह गर्भवती हो गई।

पाप छिपाए छिप नहीं सकता था। यह बात शशिशेखर के पिता के कानों में पहुंची। उन्होंने पत्र लिखकर गर्भवती स्त्री के पति को बुलवाया। अपराधी शत्रु की भर्त्सना की। शशिशेखर देशत्यागी हो गए।

शशिशेखर काशी चले गए। वहां किसी विद्वान पंडित के पास वह विद्याध्ययन करके प्रकाण्ड पंडित हुए। गुरु ने बड़े मनोयोग में उन्हें शिक्षा दी और अपना विशेष शिष्य बनाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शशिशेखर एक शूद्र के निकट रहते थे। उसकी लड़की ब्राह्मण में भक्ति रखकर उनके घर का काम कर देती थी। माता-पिता के पाप पर पर्दा डालना ही उचित है। अधिक क्या कहूं ? उसी कन्या के गर्भ से इस अभागिनी ने जन्म लिया। यह सुनकर गुरु ने शिष्य से कहा, 'शिष्य ! मेरे पास पापी के लिए स्थान नहीं है। मुझे तुम फिर कभी अपना मुंह न दिखाना इस जीवन में।'

शशिशेखर लज्जित होकर काशी से भागे और मेरी माता को उनकी माता ने पापिनी कहकर घर से बाहर कर दिया। वह मुझे लेकर एक कुटी में रहने लगीं। वह परिश्रम से जीविका चलाती थीं। कई वर्ष पश्चात् एक पठान बंगाल से दिल्ली जाता हुआ काशी आया। उसके साथ उसकी पत्नी और एक लड़का था। उन्होंने एक रात के लिए हमारी कुटी में रहने की प्रार्थना की। वह बोला, 'रात के समय हिन्दू मुहल्ले में मुझे किसीने नहीं ठहरने दिया। हम अब इस बालक को लेकर कहां जाएं ? इसे सर्दी लग रही है। यदि तुम मुझे स्थान दोगी तो मैं तुम्हें पुरस्कार दूंगा।' वह पठान किसी आवश्यक कार्य से दिल्ली जा रहा था। उसके साथ केवल एक नौकर था। मेरी माता बहुत सदय थीं। बालक के प्रति दया दिखाकर उन्होंने पठान को अपनी कुटी में स्थान दे दिया।

उन दिनों काशी में बालकों की चोरी का भय था। मैं उस समय छः वर्ष की थी। रात के सन्नाटे में एक चोर उस बालक को चुराने आया। मेरी नींद खुल गई। चोर को आता देखकर मैं चिल्ला पड़ी। मेरे चिल्लाने से सब लोग जाग गए।

पठान की स्त्री ने देखा, उसके बिछौने पर बालक नहीं था। वह चिल्ला उठीं उस समय चोर बालक को लेकर खटिया के नीचे छिपा था। पठान ने उसके बाल पकड़कर खींचे और बालक को छीन लिया। चोर के विनय करने पर उन्होंने उसके कान काटकर उसे छोड़ दिया।'

यहां तक पत्र सुनकर उसमान ने विमला से पूछा, 'क्यों मां ! क्या तुम्हारा कभी कोई दूसरा नाम भी था ?'

'था, उसे मुसलमानी नाम कहकर पिता ने बदल दिया था।'

'वह नाम माहेरू था क्या ?' उसमान ने पूछा।

'आपने यह कैसे जाना ?' विमला ने पूछा।

'मैं ही वह बालक हूं जिसे चोर ले जा रहा था।'

विमला आश्चर्यचकित रह गई।

उसमान फिर पत्र पढ़ने लगा।

दूसरे दिन सवेरे पठान ने विदा होते समय मेरी माता से कहा, 'तुम्हारी कन्या ने मेरा जो उपकार किया है, उसका बदला देने की शक्ति मुझमें नहीं है। तुम जो चाहो सो बोलो, मैं तुम्हारी चीज तुम्हें भेज दूंगा। धन चाहती हो तो धन भेज दूंगा।'

माता बोलीं, 'मुझे धन की आवश्यकता नहीं है। मैं परिश्रम से गुजारा कर लेती हूं। बादशाह से यदि आपकी घनिष्ठता हो....।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पठान बोला, 'बस ठीक है। मैं राज-दरबार से तुम्हारा उपकार करा दूंगा। मैं इस बात का ध्यान रखूंगा।'

'इस बालिका के पिता की खोज कराके मुझे खबर दिलाइए।'

पठान वचन देकर चला गया। माता के हाथ में उसने अशर्फी दी, परन्तु माता ने ग्रहण नहीं की। पठान ने मेरे पिता की खोज करने का प्रयत्न किया, परन्तु उसका पता न चला।

चौदह वर्ष पश्चात् राजपुरुषों ने मेरे पिता को खोज निकाला। उन्होंने माता को पत्र लिखा। मेरे पिता दिल्ली में ही थे। उन्होंने अपना नाम बदलकर अभिराम स्वामी रख लिया था।

जब यह सूचना मिली तो माता का स्वर्गवास हो चुका था। मंत्रों से जिनका विवाह न हुआ हो उन्हें यदि स्वर्ग जाने का अधिकार है तो वह अवश्य स्वर्ग गई होंगी।

पिता का समाचार पाकर मेरा मन काशी में न लगा। मैं पिता से मिलने के लिए दिल्ली चल दी। पहिले मेरे पहुंचने पर पिता बहुत क्रुद्ध हुए, परन्तु फिर मेरे रोने पर उन्होंने मुझे अपनी सेवा में रहने दिया। मेरा माहेरू नाम बदलकर उन्होंने विमला रख दिया। स्वार्थ-सिद्धि के लिए मैं उनकी सेवा नहीं कर सकती थी। मैं यह इसलिए करती थी कि पितृ-सेवा में मुझे संतुष्टि प्राप्त होती थी। धीरे-धीरे पिता भी मुझे बहुत स्नेह करने लगे।

पहिले कह चुकी हूं कि गढ़ मान्दारण में एक तरुणी मेरे पिता के सम्पर्क से गर्भवती हुई थी। मेरी माता के भाग्य जैसा ही उनका भी भाग्य रहा। उनके गर्भ से भी एक कन्या ने जन्म लिया। वह भी मेरी माता कीं तरह परिश्रम करके कन्या का पालन करने लगीं। वह कन्या अद्‌भुत सुन्दरी थी। समय पाकर विधवा का कलंक भी दूर हो गया। विधवा की कन्या जारजा थी, लोग इसे भूल गए। दुर्ग में यह कोई नहीं जानता था। वही सुन्दरी दुर्गेशनन्दिनी की माता हुई। उसने दुर्गेशनन्दिनी को जन्म दिया।

दुर्गेशनन्दिनी जिस समय गर्भ में थी, उस समय विवाह मेरे जीवन की प्रधान घटना हुई। उस समय पिता अपने दामाद को लेकर आश्रम में आए। मुझसे उन्होंने उनका मंत्र-शिष्य कहकर परिचय कराया। मुझे उनका परिचय मिला।

मैंने उन्हें देखा और मैं उनकी हो गई। वह समझ गए कि बिना विवाह के वह मुझे प्राप्त न कर सकेंगे। एक दिन उन दोनों की बातें मैंने सुनीं।

पिता बोले, 'विमला यदि तुम्हारी धर्मपत्नी हो जाए तो मैं तुम्हारे निकट रह सकूंगा। यदि तुम्हारी इच्छा न हो तो....।'

पतिदेव कुछ रुष्ट होकर बोले, 'गुरुदेव ! मैं शूद्रा-कन्या से कैसे विवाह कर सकता हूं ?'

'जारजा-कन्या से कैसे विवाह किया था ?' पिता बोले।

प्राणेश्वर बोले, 'जब मैंने विवाह किया था तो मैं वह न जानता था। जान-बूझकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शूद्र-कन्या से कैसे विवाह करूं ?'

'तुम विवाह अस्वीकार करते हो तो ठीक है। तुम्हारे यहां आने-जाने से विमला का अनिष्ट होता है। अब तुम कभी यहां न आना। मैं तुम्हारे ही घर पर भेंट कर लिया करूंगा।'

फिर कई दिन तक वह वहां न आए। मैं नित्य उनके आने की राह देखती थी, परन्तु कुछ दिनों तक दर्शन न कर सकी। फिर वह स्थिर न रह सके। वह फिर पहिले की तरह आने-जाने लगे। अब उन्हें देखकर मैं उतनी लजाती न थी। पिता ने यह सब देखा। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा, 'मैंने अनाश्रम-व्रत पालन करने का विचार किया है। मेरा एक स्थान पर रहना न हो सकेगा। मैं जगह-जगह घूमने जाऊंगा। ऐसी दशा में तुम कहां रहोगी ?'

मैं कातर होकर रोने लगी। फिर बोली, 'मैं तुम्हारे साथ चलूंगी।'

'नहीं विमला ! मैंने उससे अच्छा प्रबन्ध सोचा है। मैं तुम्हारे लिए एक रक्षक रख जाऊंगा। तुम महाराजा मानसिंह की अनुचरी बनकर रहोगी। वहां तुम्हें कोई कष्ट न होगा।'

'परन्तु तुम मुझे भूलना नहीं।'

'नहीं, अभी मैं यहीं रहूंगा। तुम अब मानसिंह के रनिवास में जाओं। मैं नित्य तुम्हें देख आया करूंगा। तुम वहां कैसे रहती हो, यह देखकर पर्यटन की बात सोचूंगा।'

युवराज ! मैं तब तुम्हारे घर में रही। इस कौशल से पिता ने मुझे अपने दामाद की आंखों से दूर कर दिया था।

मैं तुम्हारे यहां बहुत दिन पुत्र-स्त्री के रूप में रही। तुम उस समय दस वर्ष के थे और अम्बर के राजमहल में अपनी माता के पास रहते थे। मैं तुम्हारी विमाता के पास दिल्ली रहती थी। राजा मानसिंह को नहीं पहिचान सकते। तुमसे उर्मिला के गुण कैसे वर्णन करूं ? वह मुझे अपनी सहचरी मानती थीं। उन्होंने मुझे विविध विधाएं सिखाईं। मैंने शिल्प-विद्या सीखी। मेरा पढ़ना-लिखना भी उन्हीं की कृपा का फल है। मैं वहां अन्य कलाओं में भी प्रवीण हुई।

सखी उर्मिला की कृपा से मुझे बहुत से लाभ हुए। वह जिस प्यार से मुझे देखती थीं, महाराज से मेरा वैसा ही परिचय देती थीं। मैं गाना बहुत अच्छा जानती थी। महाराज मेरा गाना बड़े चाव से सुनते थे। महाराज मुझे अपने परिवार का एक अंग मानने लगे थे। वह मेरे पिता की भक्ति करते थे। मेरे पिता मुझसे मिलने के लिए यदा-कदा वहां आया करते थे।

उर्मिला के पास मैं बहुत सुखी थी। कष्ट यही था कि जिनके लिए मैं सर्वस्व त्यागकर उनकी होना चाहती थी, उनसे भेंट न होती थी। वह भी मुझे भूले नहीं थे। आसमानी नामक परिचारिका आपको याद होगी। आसमानी मुझे बहुत चाहती थी। एक दिन मैंने उसे उनके पास भेजा। मैंने उसे पत्र लिखकर दिया। उन्होंने भी पत्र का उत्तर भेजा। इस प्रकार पत्रों का आदान-प्रदान हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार तीन वर्ष बीत गए। इन तीन वर्षों में हम लोग एक-दूसरे को भूल नहीं सके थे। हम समझ गए कि यह प्रेम-पुष्प अवश्य खिलेगा। न जाने क्यों, उनका धैर्य उस समय कुछ समाप्त हो गया। एक दिन मैं रात को अकेली अपनी कोठरी में सो रही थी। नींद खुली तो देखा मेरे सिरहाने कोई बैठा था।

वह बोले, 'प्राणेश्वरी ! डरना नहीं। मैं सेवक हूं तुम्हारा।'

मैं क्या कहती ? तीन वर्ष पश्चात् भेंट हुई थी। मैं उनके गले से लगकर रोने लगी। अब मैं शीघ्र ही मरने वाली हूं। इसलिए लज्जा क्या करूं ? सब बातें खोलकर कह रही हूं।

मैंने पूछा, 'तुम महल में कैसे आए ?'

'आसमानी से पूछो। उसके साथ जल लेकर आया ओर तब से यहीं छिपा हूं।' उन्होंने कहा।

'अब क्या होगा ?' मैंने पूछा।

'अब तुम जैसा करो।' उन्होंने कहा।

मैं चिन्तित हुई। जिधर भी देखती थी उधर ही भय था। उसी समय मेरे कमरे का द्वार खुला और महाराज मानसिंह वहां आ गए।

वीरेन्द्रसिंह बन्दी हो गए। महाराज ने उन्हें राजदण्ड से दण्डित करने की आज्ञा दी। यह देखकर मेरी मनःस्थिति बिगड़ गई। मैं उर्मिला देवी के पैरों पर गिर पड़ी। मैंने अपना दोष खुलकर स्वीकार किया। पिता से भेंट होने पर उनके चरणों पर भी गिरकर रोई। महाराज मानसिंह मेरे पिता की भक्ति करते थे। वह उनकी गुरु की तरह श्रद्धा करते थे, परन्तु पिता ने मेरे रोने पर तनिक भी ध्यान न दिया। वह रुष्ट होकर बोले, 'पापिनी ! तूने एकदम लज्जा त्याग दी ?'

उर्मिला देवी ने मेरे लिए महाराज से विनती की। महाराज बोले, 'मैं चोर को इस शर्त पर मुक्त कर सकता हूं कि वह विमला के साथ विवाह करे। उसकी धृष्टता का यही दण्ड है।'

यह सुनकर मैं चुप हो गई। प्राणेश्वर ने महाराज के वाक्य पर रुष्ट होकर कहा, 'मैं जीवन भर कारागार में रहूंगा। प्राण-दण्ड हो तो वह भी सहूंगा, परन्तु शूद्र-कन्या से विवाह नहीं करूंगा। आप ऐसा अनुरोध क्यों करते हैं ?'

महाराज बोले, 'जब मैंने अपनी बहिन अकबर को दे दी तो तुम्हें शूद्र-कन्या से शादी करने को कहना मेरे लिए कौन बड़ी बात है ?'

फिर भी वह उद्यत न हुए। वह बोले, 'महाराज ! जो होना था सो हो चुका। अब मुझे मुक्त कीजिए। मैं विमला का कभी नाम न लूंगा। मैं यहां से चला जाऊंगा।'

महाराज बोले, 'तुमने जो अपराध किया है, उसका क्या प्रायश्चित हुआ ? तुम यदि विमला को त्याग दोगे तो दूसरा कोई उसे कलंकिनी कहेगा। उसकी रक्षा कैसे होगी ?'

फिर भी उन्होंने विवाह की सहमति न दी और उन्हें कारागार में भेज दिया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब कारागार की यंत्रणा शुरू हुई तो उन्होंने कहा, 'विमला यदि मेरे घर में दासी बनकर रहे, विवाह की बात मेरे जीते-जी किसी पर प्रकट न करे, मेरी धर्मपत्नी कहकर अपना परिचय न दे तो मैं उसके साथ विवाह कर सकता हूं।'

मैंने आनन्दपूर्वक यह बात स्वीकार कर ली। पिता और महाराज की आज्ञा से दासी-वेष में पति-भवन में आ गई।

यह शादी उन्होंने दबाव से की थी। ऐसी दशा में कोई स्त्री को कितना प्रेम कर सकता है ? पतिदेव मुझे विष की तरह देखने लगे। सम्पूर्ण प्रेम लुप्त हो गया। महाराज मानसिंह के तिरस्कार को याद करके वह मेरा तिरस्कार करते रहे। मैं उस तिरस्कार को भी आदर समझती रही। यूं ही कुछ दिन बीते। मैं अपना सारा परिचय तुम्हें दे चुकी। अब अन्य किसी बात की आवश्यकता नहीं है। समय पाकर मैं फिर स्वामी का प्रेम पा सकी, परन्तु अम्बरपति के प्रति उनका रोष वैसा ही रहा।

इस पत्र द्वारा वचन पूरा करना मात्र मेरा उद्देश्य नहीं है। लोग सोचते हैं कि मैं कुल-धर्म त्यागकर गढ़ मान्दारण के अधिपति के पास रहती थी। मेरी मृत्यु के पश्चात् आप इस कलंक को मिटाएं, इस आशा से आपको यह पत्र लिखा है।

इस पत्र में मैंने आत्म परिचय दिया है। जिसका संवाद आप जानना चाहते हैं, उसकी चर्चा नहीं की। समझ लीजिए कि वह अब इस पृथ्वी पर नहीं है। उसे भूल जाइए—विमला।'

उसमान पत्र पढ़कर बोले, 'मां ! आपने मेरी जीवन-रक्षा की थी। मैं आपके उस उपकार का बदला अवश्य चुकाऊंगा।'

विमला ठण्डी सांस लेकर बोली, 'अब पृथ्वी पर मेरे लिए कौन-सा उपकार शेष रह गया है ? तुम क्या उपकार कर सकोगे मेरा ? फिर भी है, यदि कुछ कर सको तो....।'

'मैं वही करूंगा।' उसमान बोला।

विमला की आंखों में प्रकाश उतर आया। वह बोली, 'उसमान ! इस दग्ध हृदय को धोखा न देना।'

उसमान अपने हाथ की अंगूठी उतारकर बोला, 'यह अंगूठी लो। दो-एक दिन में कुछ नहीं हो सकता। कतलूखां का जन्म-दिन निकट है। उस दिन खूब उत्सव होगा। रक्षक आनन्द में मग्न रहेंगे। उसी दिन मैं तुम्हें मुक्त करा दूंगा। उसी दिन रात को तुम अन्तःपुर के फाटक पर आना। वहां तुम्हें जो इस अंगूठी का जोड़ दिखाए उसके साथ निकल जाना।'

'परमात्मा तुम्हें दीर्घजीवी करें। अधिक क्या कहूं ?' विमला बोली। उसका गला रुंध गया था। वह कुछ बोल न सकी।

विमला विदा होने को ही थी कि तभी उसमान बोला, 'एक बात और है। अकेली आना, साथ में किसी अन्य के रहने से संकट आ सकता है। इस बात का ध्यान रखना।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमला समझ गई कि उसमान दुर्गेशनन्दिनी को साथ लाने के लिए मना कर सकता था। उसने सोचा, कोई बात नहीं। उसे बाद में निकाला जा सकेगा। यह सोचकर विमला विदा हुई।

12

विमला के हृदय में प्रतिहिंसा विकराल नाग की तरह फुंकार रही थी। उसका चित्त बहुत बेचैन था। वह बहुत दुःखी थी।

जगतसिंह रोग-शय्या पर थे। रोगी का दिन कितना बड़ा होता है, कौन नहीं जानता। फिर भी दिन बीत रहे थे। वह धीरे-धीरे ठीक हो रहे थे। यम के दांतों से निकलकर जगतसिंह आगे बढ़ रहे थे। शरीर की क्लांति दूर हो गई थी। आहार मिलने लगा था। उनके बदन में बल आया और फिर चिन्ता बढ़ने लगी।

'दुर्गेशनन्दिनी कहां है ?' राजकुमार जैसे-जैसे अच्छे होने लगे, वैसे-वैसे चिन्तित भाव से पूछने लगे, परन्तु किसी ने संतोषपूर्ण उत्तर न दिया। आयशा को कुछ मालूम नहीं था। उसमान बताना नहीं चाहता था। अन्य किसी को ज्ञात नहीं था। राजपुत्र तिलमिला उठे।

उन्हें दूसरी चिन्ता अपने भविष्य की थी। इस प्रश्न का कौन उत्तर दे सकता था ? वह बन्दी थे। उसमान और आयशा की कृपा से वह कारागार के बदले सुन्दर भवन में रह रहे थे। जिस वस्तु की इच्छा होती थी, वह तुरन्त उपलब्ध हो जाती थी। आयशा उनकी अपनी बहिन से भी अधिक उनकी सेवा कर रही थी। फिर भी द्वार पर प्रहरी थे। कब मुक्ति होगी ? मुक्ति कैसे मिलेगी ? उनकी सेना कहां थी? उसकी क्या गति हुई होगी, यह भी चिन्ता थी उन्हें।

तीसरी चिन्ता आयशा की थी। वह क्यों उनकी इतनी सेवा में संलग्न रहती थी? इसका क्या कारण हो सकता था ?

जगतसिंह ने देखा आयशा को चैन नहीं था, शांति नहीं थी। रात दिन वह उनकी सेवा में लगी रहती थी। जब तक वह निरोग नहीं हुए थे, तब तक वह उनके पास से नहीं हटती थी। वह बहुत आवश्यकता पड़ने पर ही वहां से उठती थी, अन्यथा नहीं। जब तक उसकी माता उसे बुलाती नहीं थीं, तब तक वह उनकी सेवा से मुंह न मोड़ती थी।

किसी बीमार की बीमारी में उसके सिरहाने बैठकर सुन्दरी पंखा झले तो उस रोगी को कितनी चैन मिलती है।

जितने दिन जगतसिंह की सेवा की आवश्यकता रही, उतने दिन आयशा उनकी सेवा में रही। जैसे-जैसे वह निरोग होने लगे, वैसे-वैसे आयशा का आना कम होने लगा। जब जगतसिंह पूर्ण निरोग हो गए तो आयशा का आना एकदम बंद हो गया। फिर वह कभी ऐसे ही एकाध बार आ जाती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन संध्या-समय जगतसिंह एक झरोखे से दुर्ग के बाहर देख रहे थे। कितने ही लोग अपने-अपने इच्छित स्थानों को आ-जा रहे थे। राजपुत्र दुःखी होकर उनसे अपनी तुलना करने लगे। एक जगह बहुत-से लोग किसी को घेरे खड़े थे। राजपुत्र की दृष्टि उधर गई तो वह समझ गए कि लोग आमोद में लीन थे और कुछ सुन रहे थे। वह क्या था, यह राजपुत्र देख नहीं सके। उन्हें कौतूहल हुआ। कुछ देर बाद श्रोताओं के चले जाने पर कुमार का कौतूहल दूर हुआ। उन्होंने देखा कि मण्डली के बीच में एक व्यक्ति बैठा पुस्तक पढ़कर सुना रहा था। पढ़ने वाले को देखकर राजपुत्र को कौतूहल हुआ। उसे मनुष्य भी कहा जा सकता था और ठूंठ ताड़-वृक्ष भी। पोथी पढ़ते समय उसका विचित्र-सा हाथ हिलाना आदि कुमार देखते रहे। उसी समय उसमान कमरे में आकर बोला, 'आप झरोखे से क्या देख रहे हैं ?'

'मैं जो देख रहा हूं, उसे आप भी देखिए।'

उसमान बोला, 'राजपुत्र ने उसे कभी देखा नहीं क्या ?'

'नहीं ! मैंने शायद पहिले कभी नहीं देखा।'

'वह आपका ही ब्राह्मण है। कथा-वार्ता में बड़ा सरस है। इस व्यक्ति को मैंने गढ़ मान्दारण में देखा था।'

राजकुमार ने सोचा कि यदि यह मान्दारण में था तो शायद दुर्गेशनन्दिनी का कोई संवाद दे सकेगा। उन्होंने उसमान से पूछा, 'महाशय ! इसका नाम क्या है ?'

'इसका नाम बड़ा कठिन है। गणपत ? नहीं गजपत या गजपति, क्या जाने क्या है इसका नाम।'

'गजपत ! गजपति तो इस देश का नाम नहीं है। देखता हूं यह व्यक्ति बंगाली है, बंग देश का रहने वाला।'

'बंगाली भट्टाचार्य ! उसकी एक उपाधि भी है, एलम-आलम ऐसी ही कुछ है। मैं नहीं समझ पाया।'

'बंगालियों की उपाधि में 'आलम' शब्द नहीं होता। इल्म को विद्या कहते हैं। विद्याभूषण या विद्यावागीश ऐसा ही कुछ होगा शायद।' जगतसिंह ने कहा।

'हां-हां, विद्या के साथ ही ठहरिए, बताएं तो हिन्दी में हाथी को क्या कहते हैं? ऐसा ही कुछ नाम है।'

'अरी, दन्ती, वारण नाग, गज....।'

'हां-हां, याद आ गया। इसका नाम गजपति विद्यादिग्गज है।'

'विद्यादिग्गज ! विचित्र उपाधि है ! जैसा नाम है, वैसी ही उपाधि है। इससे बातें करने की इच्छा है। क्या सम्भव है यह ?'

उसमान खां ने गजपति के विषय में जो बातें सुनी थीं, उनसे उससे बातें करने में कोई हानि नहीं थी। वह बोला, 'क्या हानि है ? मैं उसे बुलाए देता हूं। आप बात कर सकते हैं उससे।'

उसमान खां ने नौकर को भेजकर गजपति को बुलवा दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गजपति के कमरे में प्रवेश करने पर राजकुमार ने पूछा, 'क्या आप ब्राह्मण हैं महाशय ?'

गजपति ने हाथ लचकाकर कहा, 'जी हां।' इतना कहकर उसने एक संस्कृत का श्लोक उच्चारण किया।

जगतसिंह ने हंसी रोककर प्रणाम किया। गजपति ने आशीर्वाद दिया, 'खुदा आपको सकुशल रखे।'

'महाशय ! मैं मुसलमान नहीं हूं।' जगतसिंह ने कहा।

गजपति ने मन में सोचा, बच्चा जी हमें ही चरा रहे हैं। इनका कोई मतलब है। नहीं तो यह मुझे क्यों बुलाते ?' वह सिकुड़कर बोले, 'खां साहब जी ! मैं आपको पहिचानता हूं। मैं आपके ही अन्न से पला हूं। मुझे कुछ कहिएगा नहीं। मैं आपके चरणों का दास हूं।'

जगतसिंह बोले, 'महाशय ! आप ब्राह्मण हैं और मैं राजपूत। आप ऐसा न कहिए। क्या आपका नाम गजपति विद्यादिग्गज है ?'

गजपित सोचने लगे, 'अरे बाप रे....यह तो मेरा नाम भी जानते हैं ? कौन जाने किस संकट में डाल दें ?' वह हाथ जोड़कर बोले, 'दुहाई है शेखजी ! मैं गरीब हूं, आपके पैर पड़ता हूं।'

जगतसिंह ने देखा कि इतने डरे हुए व्यक्ति से कार्य सिद्ध न होगा। वह बात बदलकर बोले, 'आपके हाथ में कौन-सी पोथी है ?'

'यह माणिक पीर की पोथी है।' गजपति ने कहा।

'ब्राह्मण के हाथ में माणिक पीर की पोथी ?'

'जी ! पहिले ब्राह्मण था, परन्तु अब ब्राह्मण नहीं हूं।'

राजकुमार विस्मित भी हुए और कुछ दुःखी भी। वह बोले, 'आप गढ़ मान्दारण में रहते थे, यह सत्य है ना ?'

गजपति ने सोचा, 'इसने उसका सर्वनाश किया। अब जो दशा वीरेन्द्रसिंह की हुई, वही उसकी होगी।' मारे डर के वह रो पड़ा। राजपुत्र बोले, 'अरे ! तुम रोते क्यों हो ?'

विद्यादिग्गज हाथ जोड़कर बोले, 'दुहाई खां साहब ! आपका गुलाम मैं तो। मेरी रक्षा करो।'

'क्या तुम पागल हो गए हो ?' जगतसिंह ने कहा।

'नहीं पता ! मैं तो आपका दास हूं।'

जगतसिंह बोले, 'तुम्हें कोई भय नहीं है। तुम जरा माणिक पीर वाली पुस्तक सुनाओ।'

ब्राह्मण माणिक पीर की किताब गाकर पढ़ने लगे।

'तुम ब्राह्मण होकर माणिक पीर की किताब क्यों पढ़ते हो ?'

गजपति ने अपना स्वर बंद करके कहा, 'मैं मुसलमान हो गया हूं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वह कैसे ?' जगतसिंह ने पूछा।

'जब मुसलमान लोग गढ़ में आए तो उन्होंने मुझसे कहा, 'ब्राह्मण ! हम तेरी जात बदल देंगे।' यह कहकर वे लोग मुझे ले गए और मुझे मुर्गा पालो खिला दिया। मैं मुसलमान हो गया बस।'

'पालो क्या ?' जगतसिंह ने पूछा।

'चावल घी में पका हुआ।' गजपति ने कहा।

'अच्छा, पुलाव खिला दिया। फिर क्या हुआ ?'

'फिर उन्होंने मुझसे कहा कि अब तुम मुसलमान हो गए। तभी से मैं मुसलमान हूं। मैं मुसलमान बन गया।'

'गढ़ मान्दारण में और सबका क्या हुआ ?'

'कितने ही ब्राह्मण इसी तरह मुसलमान हो गए।'

राजपुत्र ने उसमान की ओर देखा। उसमान राजपुत्र की मौन घृणा को देखकर बोला, 'राज़पुत्र ! इसमें दोष ही क्या है ? मुसलमान अपने धर्म को सच्चा धर्म मानते हैं। उसके लिए बल, छल, सत्य-प्रचार किसी चीज को हम अधर्म नहीं समझते। यही हमारा धर्म है।'

राजपुत्र उसका उत्तर न देकर गजपति से बोले, 'विद्यादिग्गज गजपति महाशय!'

'जी, अब शेख दिग्गज कहिए।' गजपति ने कहा।

'वही सही शेख जी ! गढ़ का और क्या समाचार है ?'

उसमान राजपुत्र का मतलब समझकर उद्विग्न हुआ।

गजपति बोले, 'अभिराम स्वामी भाग गए। वह वहां नहीं है।'

'वीरेन्द्रसिंह का क्या हुआ ?' जगतसिंह ने पूछा।

'उन्हें नवाब कतलूखां ने कटवा डाला।'

'यह सुनकर राजपुत्र का चेहरा लाल हो गया। उन्होंने उसमान से पूछा, 'यह क्या उसमान ? क्या ब्राह्मण झूठ बोल रहा है ?'

'नवाब ने उन्हें राज-द्रोह के अपराध में प्राण-दण्ड दे दिया।'

राजपुत्र की आंखों में अग्नि भड़क उठी।

'क्या यह कार्य आपकी इच्छा के अनुकूल हुआ ?' जगतसिंह ने पूछा।

'नहीं, मेरे परामर्श के विरुद्ध हुआ है।' उसमान ने कहा।

उसमान गजपति से बोला, 'अब तुम जा सकते हो।'

गजपति उठकर जाने लगे तो कुमार ने उनका हाथ पकड़कर पूछा, 'विमला कहां है ?'

गजपति ने ठण्डी सांस ली। कुछ रोया भी। फिर बोला, 'विमला नवाब की उपपत्नी बन गई।'

राजकुमार उसमान की ओर देखकर बोले, 'क्या यह भी सच है उसमान खां ? सही उत्तर देना।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमान कोई उत्तर न देकर गजपति से बोला, 'तुम जाते क्यों नहीं हो ? चले जाओ यहां से।'

राजपुत्र दृढ़तापूर्वक गजपति का हाथ पकड़े थे। उसमें छुड़ाने की शक्ति नहीं थी। वह बोले, 'एक क्षण और ठहरो। दुर्गेशनन्दिनी कहां है ?'

'वह भी नवाब की उपपत्नी है। दास-दासियों के साथ वह आनन्दपूर्वक हैं। कोई कष्ट नहीं है उन्हें।'

राजकुमार ने ब्राह्मण का हाथ छोड़ दिया। वह गिरते-गिरते बचे।

उसमान लज्जित होकर बोला, 'मैं सेनापति मात्र हूं।'

'आप निशाचर-सेनापति हैं।' जगतसिंह बोले।

13

उस रात्रि में जगतसिंह सो नहीं सके। उन्हें शय्या अंगार उगलती प्रतीत हुई। अभी दुर्गेशनन्दिनी जीवित है।

परन्तु वह मरी क्यों नहीं ? जगतसिंह की जिधर भी दृष्टि जाती थी, उधर ही वह उसे देख रहे थे। जगतसिंह की आंखों मं आंसू आ गए। उसी समय उसके हृदय में कतलूखां के हरम का चित्र उपस्थित हुआ। उन्हें दिखाई दिया कि उस पापी की गोद में वह अनुपम सुन्दरी पड़ी है। उनके हृदय में भयंकर अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी।

दुर्गेशनन्दिनी उनके मन्दिर की देवी थी। वह इस समय पठान के हरम में थी। वह पठान की उपपत्नी थी।

कतलूखां की उपपत्नी की एक राजपूत आराधना कैसे कर सकता था ? यह हो नहीं सकता, असम्भव।

जगतसिंह ने सोचा कि उस प्रतिमा को अपने हृदय से निकालकर बाहर कर दें। वह उसकी आराधना-देवि नहीं हो सकती, परन्तु वह प्रतिमा जगतसिंह के हृदय में गड़ गई थी। उसे बलपूर्वक हटाने से हृदय विदीर्ण हो जाएगा। वह कैसे उस मोहिनी मूर्ति को भुला सकते थे ? यह सम्भव नहीं था उनके लिए।

नहीं, वह उसे नहीं हटा सकते। वह सर्वदा उनके मन-मन्दिर में रहेगी। उनका हृदय उसे धारण किए रहेगा।

उन्हें बुद्धिविभ्रम होने लगा। उनकी स्मृति छिन्न-भिन्न हो गई। वह अपने दोनों हाथों से सिर को पकड़े बैठे थे। उनका मस्तक घूम रहा था। उनकी विवेचना-शक्ति समाप्त हो गई थी।

जगतसिंह के बदन में भयानक दर्द होने लगा। उनकी मानसिक चिन्ता बढ़ने लगी। उन्हें कुछ ज्वर-सा प्रतीत होने लगा। जगतसिंह फिर खिड़की के पास जा खड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए।

शीतल पवन ने जगतसिंह के लिलाट का स्पर्श किया। आकाश मेघों से घिरा था। वहीं कोई तारा बादलों के बीच में झांकता दिखाई दिया। वह देर तक उसीको ताकते रहे।

मेघों से स्पर्श करती हुई वायु जगतसिंह को स्पर्श कर उनका संताप हरने लगी। उनका मन कुछ शांत हुआ। वह खिड़की पर हाथ रखे खड़े रहे। मानसिक चिन्ता से जो शरीर अवसन्न-सा हो गया था, वह सुधरने लगा, परन्तु निराशा बढ़ने लगी।

जगतसिंह को झपकी-सी आ गई। जगतसिंह स्वप्न देखने लगे। भयानक स्वप्न था। उनकी स्वप्न में ही भौंहें तन गईं, मुख का भाव विकृत हो गया, हाथों की मुट्ठियां दृढ़ हो गईं और माथे पर पसीना आ गया। वह जमीन पर गिर गए।

जगतसिंह खड़े होकर फिर कमरे में टहलने लगे। कितनी ही देर तक वह यंत्रणा भोगते रहे। फिर बिना तकिए के जमीन पर लेट गए।

उसमान ने आकर उन्हें जमीन पर से उठाया। राजपुत्र के उठने पर उसमान ने उनका अभिवादन किया और हाथ में एक पत्र दिया।

उसमान समझ गया था कि कुमार उस समय विह्वल थे। उसमान ने कहा, 'राजपुत्र! आपके जीमन पर सोने का कारण मैं पूछना नहीं चाहता। इस पत्र को भेजने वाली से मैं प्रतिज्ञा कर चुका था कि इसे आपके पास पहुंचा दूंगा। जिस भय से अब तक मैं न दे सका था, वह दूर हो गया। आप सब बातें जान गए हैं। इसलिए पत्र देकर जाता हूं। आप अवसर देखकर इसे पढ़िए। शाम को मैं फिर आऊंगा। यदि इसका उत्तर देना चाहें तो उसे मैं लिखने वाली के पास पहुंचा दूंगा। मैं आपकी इतनी ही सेवा कर सकता हूं।'

राजपुत्र ने विमला का पत्र पढ़ना आरम्भ किया। पत्र को आद्योपंत पढ़कर कुमार ने उसे जला दिया। पत्र जलता रहा और वह उसे देखते रहे। जब पत्र जल गया तो वह कहने लगे, 'स्मृति-चिह्न को जलाकर मैंने उसका अन्त कर दिया। फिर भी संताप की अग्नि जल रही थी, अन्त नहीं हुआ उसका।'

जगतसिंह ने संध्या करने के बाद इष्ट देव को प्रणाम किया। फिर हाथ जोड़कर आकाश की ओर देखकर बोले, 'देव ! सेवक का त्याग न करना। मैं राजधर्म का पालन करूंगा। विधर्मी की उपपत्नी को इस हृदय से दूर रखूंगा। मनुष्य के कर्तव्य का पालन करूंगा। परमात्मा ! तुम अन्तर्यामी हो। मेरे हृदय से घुसकर देखो। अब मैं दुर्गेशनन्दिनी का प्रणय-प्रार्थी नहीं हूं। अब मैं उसके दर्शन का इच्छुक नहीं हूं। आपके चरणों का प्रसाद मांगता हूं, अन्यथा इस स्मृति की ज्वाला को सहन न कर सकूंगा। मैं ग्लानि अनुभव कर रहा हूं। दुर्गेशनन्दिनी की प्रतिमा विसर्जित हुई।'

उसी समय धूप में लेटी हुई दुर्गेशनन्दिनी भी एक स्वप्न देख रही थी। घोर अंधकार में जिस नक्षत्र की ओर उसने हाथ बढ़ाया, वह उसके हाथ नहीं आ रहा था। आंधी में जिस डाल का सहारा लिया था, वह डाल टूट गई थी। वह असहाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हो गई थी।

उसमान संध्या को राजपुत्र के पास आकर बोले, 'पत्र का उत्तर देने की इच्छा हो तो कागज-कलम का प्रबन्ध करूं।'

युवराज ने एक पत्र उसमान को दे दिया। उसमान ने पत्र लेकर कहा, 'अपराध क्षमा करना। हमारा नियम है कि यदि दुर्गवासी किसी को पत्र भेजता है तो दुर्ग-रक्षक उसे पढ़कर देखता है।'

युवराज बोले, 'इसमें कहने की क्या आवश्यकता है। आप पत्र खोल कर पढ़ लें। इच्छा हो तो भेज दें, न हो तो मैं आपको बाध्य नहीं करता। पत्र में कोई गुप्त बात नहीं है।'

उसमान ने पत्र पढ़ा। पत्र में लिखा था, 'अभागिनी ! मैं तुम्हारे अनुरोध को न भूलूंगा, परन्तु यदि तुम पतिव्रता होगी तो शीघ्र ही पतिव्रत का अनुसरण कर अपने कलंक को धो डालोगी।'

—'जगतसिंह'।

उसमान जगतसिंह का पत्र पढ़कर बोला, 'राजकुमार ! आपका हृदय बहुत कठोर है।'

'पठान की अपेक्षा कम।' जगतसिंह ने कहा

उसमान का चेहरा लाल हो गया। वह कर्कश स्वर में बोला, 'पठान ने आपके साथ किसी तरह की अभद्रता नहीं की।'

राजपुत्र कुपित भी हुए और लज्जित भी। फिर बोले, 'महाशय ! मैं आपकी बात नहीं कह रहा हूं। आपने हर प्रकार की मुझ पर कृपा की है। बन्दी बनाकर भी मुझे प्राण-दान दिया है। बन्दी करके भी मुझ को ऐसे स्थान पर रखा, परन्तु मैं कहता हूं कि मैं आपकी भद्रता के जाल में फंस रहा हूं तो मुझे कारागार में भेज दीजिए। इस दया के कटघरे से मेरा उद्धार करके मुझे बन्दी-गृह में रखिए और यदि मैं वास्तव में मुक्त हूं तो मुझे मुक्त कर दीजिए। मुझसे दो तरह का व्यवहार न कीजिए।'

उसमान बोला, 'अशुभ के लिए इतने व्यग्र क्यों हैं आप ? अमंगल को बुलाना नहीं पड़ता, वह तो स्वयं आ जाता है।'

'आपकी इस कुसुम-सेज को त्यागकर बन्दी-गृह के पत्थर पर सोना राजपुत्र शुभ समझता है।' जगतसिंह ने कहा।

'शला-शैया ही यदि अमंगल का चरम है तो विनाश क्या है ?'

'यदि मैं कतलूखां को समुचित दण्ड न दे सका तो मृत्यु में ही क्या हानि है ?' जगतसिंह ने कहा।

'सावधान युवराज ! पठान जो कहते हैं, वही करते हैं।'

राजपुत्र हंसकर बोले, 'सेनापति ! आप यदि मुझे भय दिखाने आए हैं तो उसे व्यर्थ जानें।'

'इससे हम अपरिचित नहीं हैं। इसलिए व्यर्थ बातें छोड़िए। इस समय मैं आपके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास विशेष कार्य के लिए आया हूं।'

जगतसिंह बोले, 'आज्ञा कीजिए।'

'मैं इस समय जो प्रस्ताव करूंगा, उसे कतलूखां का ही आदेश समझिए।' उसमान ने कहा।

'वही समझूंगा।' जगतसिंह ने कहा।

'राजपूत और पठानों के युद्ध से दोनों का अहित हो रहा है।'

'पठानों को नष्ट करना ही युद्ध का उद्देश्य है।'

'ठीक है, परन्तु यह कठिन कार्य है। गढ़ मान्दारण विजय करने वाले नितान्त अशक्त नहीं हैं, यह आप देख चुके हैं।'

जगतसिंह मुस्कुराकर बोले, 'वे लोग कौशली अवश्य हैं।'

'जो हो, शेखी मारना मेरा उद्देश्य नहीं है। हम मुगल-सम्राट के साथ शत्रुता मोल लेना नहीं चाहते, परन्तु मुगल-सम्राट भी पठानों को नष्ट न कर सकेंगे। मेरी बातों को अभिमान न समझें आप राजनीतिज्ञ हैं, सोचकर देखें कि दिल्ली से उत्कल कितनी दूर है। दिल्लीश्वर एक बार राजा मानसिंह के बाहुबल से हम पठानों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु उनकी जय-पताका कितने दिन इस प्रदेश में उड़ती रहेगी ? महाराज मानसिंह पीछे पलटे और यहां से दिल्लीश्वर का प्रभाव लुप्त हुआ। अकबर शाह ने भी उत्कल-विजय की थी, परन्तु कितने दिन उत्कल उनके हाथों में रहा ? इस बार भी विजय करने पर वही होगा। विश्वास न हो तो सेना भेजिए और उत्कल-विजय कीजिए। पठान फिर स्वतंत्र हो जायेंगे। पठान बंगाली नहीं हैं। वे किसीकी आधीनता स्वीकार नहीं करेंगे। ऐसी स्थिति में राजपूत और पठानों का रक्त बहाने से क्या लाभ होगा ?

'आप क्या चाहते हैं ?' जगतसिंह ने पूछा।

'मैं कुछ नहीं चाहता। नवाब संधि करने को कहते हैं।'

'कैसी संधि ?' जगतसिंह ने पूछा।

'दोनो पक्ष हानि स्वीकार करें। नवाब कतलूखां ने बंगाल का जो भाग जीता है, उसे वह त्यागने को उद्यत हैं। अकबर शाह उड़ीसा से अपनी सेना वापस बुला लें। भविष्य में आक्रमण न करें बादशाह की कोई क्षति नहीं है, पठानों की ही क्षति है। हम लोगों ने कष्ट सहन कर जो भाग जीता है, उसे हम त्याग देंगे। अकबर शाह जिसे प्राप्त नहीं कर सकें हैं, केवल उस पर आक्रमण करने को हम कह रहे हैं।'

'ठीक है परन्तु यह प्रस्ताव आप मुझसे क्यों करते हैं ? इसके लिए महाराज मानसिंह के पास दूत भेजिए।' जगतसिंह ने कहा।

उसमान बोला, 'उनके पास दूत भेजा गया था, परन्तु उनसे किसी ने कह दिया कि पठानों ने आपका संहार कर दिया है। महाराज ने इस शोक और क्रोध में संधि की बात नहीं सुनी। दूत की बातों का उन्होंने विश्वास नहीं किया। यदि आप इस संधि के प्रस्तावकर्ता हों, तो वह इस पर विचार कर सकते हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजपुत्र उसमान पर दृष्टि जमाकर बोले, 'सब बातें स्पष्ट कहिए। जब मेरे हस्ताक्षर भेजने से महाराज को विश्वास हो सकता है तो मुझे स्वयं जाने को आप क्यों कहते हैं ?'

'इसलिए कि महाराज मानसिंह को हमारी स्थिति का ज्ञान नहीं है। आपसे मिलकर वह हमारी शक्ति का अनुमान लगा सकेंगे ? आपके अनुरोध से कार्य-सिद्धि की संभावना है। पत्र द्वारा यह कभी न हो सकेगा। इस संधि से आप तुरन्त मुक्त हो जायेंगे। नवाब कतलूखां ने यही सोचा है कि आप इसके लिए प्रयत्न करें।'

'मैं पिता के पास जाना अस्वीकार नहीं कर सकता।'

'यह सुनकर मैं खुश हुआ, परन्तु एक बात और है। यदि आप इस तरह की संधि न करा सके तो आप फिर इस दुर्ग में वापस लौट आएंगे, यह वचन दें।' उसमान ने कहा।

'मैं स्वीकार करने पर लौट आऊंगा, इसका क्या निश्चय है ?'

'मुझे इसका विश्वास है। राजपूत झूठ नहीं बोलते।'

'मैं स्वीकार करता हूं। पिता के साथ भेंट करके मैं अकेला दुर्ग में वापस लौट आऊंगा।' जगतसिंह ने कहा।

'आप यह भी स्वीकार कीजिए, जिससे हम लोग निश्चिन्त हो जाएं कि आप महाराज से भेंट करके हम लोगों की संधि स्वीकार कर लेने के लिए विशेष उद्योग करेंगे।' उसमान बोला।

'सेनापति ! मैं यह स्वीकार नहीं कर सकता। दिल्ली के सम्राट ने हमें पठान-विजय के लिए भेजा है। मैं पठान-विजय करूंगा। मुझे संधि के लिए नियुक्त नहीं किया गया है। मैं यह नहीं कर सकता। मैं यह अनुरोध स्वीकार नहीं कर सकता।' जगतसिंह ने कहा।

उसमान संतोषपूर्वक बोले, 'युवराज ! आपने राजपुत्र जैसा ही उत्तर दिया, परन्तु आपकी मुक्ति का दूसरा और कोई उपाय नहीं है। मैंने यही एक उपाय सोचा था। मैं स्पष्ट बातें कर रहा हूं। आपके द्वारा यह कार्य सिद्ध हो सकेगा, यही सोचकर नवाब साहब ने आपको आदरपूर्वक रखा है। आप यदि इससे असहमत होंगे तो वह आपको बहुत कष्ट देंगे।'

'फिर भय-प्रदर्शन। अब मैं आपसे अपने को बन्दी-गृह भेजने की ही प्रार्थना करूंगा। मैं मुक्ति नहीं चाहता।'

'युवराज ! केवल कारागार में भेजकर ही नवाब तृप्त हों तो मंगल समझिए। यही बात नहीं है।' उसमान ने कहा।

'न होंगे तो वीरेन्द्र के रक्त में यह रक्त मिलकर एक हो जाएगा।' जगतसिंह की आंखों से चिनगारियां निकलने लगीं।

'मैं विदा होता हूं। मैंने अपना कार्य पूर्ण किया। अब कतलूखां का आदेश आप अन्य दूत के द्वारा सुनेंगे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ ही देर पश्चात् दूसरा दूत आया। उसके साथ चार सैनिक थे। राजपुत्र ने पूछा, 'तुम क्या चाहते हो ?'

'आपको दूसरे स्थान पर ले जाना है।'

'मैं तैयार हूं।' कहकर राजपुत्र दूत के साथ चल दिए।

14

आज कतलूखां का जन्म-दिन-महोत्सव था। दिन भर नाच, तमाशा, भोजन, दान इत्यादि में सब लोग लगे रहे। रात में उससे भी बड़ा समारोह हुआ। संध्या समाप्त हुई। दुर्ग प्रकाश से चमक उठा। नवाब के हरम में भी उत्सव मनाया जा रहा था। सब कमरों में दीपक जल रहे थे। चारों ओर सुगन्धि फैल रही थी। वायु भी उसके भार से बोझिल हो उठी थी। दासियां सुन्दर वस्त्र पहिने इधर-उधर घूम रही थीं। सुन्दरियां अपने कमरों में बैठी यत्न से सिर की चोटी गूंथ रही थीं। आज हरम में बैठकर नवाब उनके साथ आनन्द मनाएंगे। नाच-गाना होगा। सबको पुरस्कार मिलेगा।

विमला महल में चारों ओर घूम रही थी। उसने घूमते हुए एक सजे हुए कमरे में प्रवेश किया और द्वार बन्द कर दिए। उस कमरे में साधारण दीपक जल रहा था। कमरे के पलंग पर सिर से पैर तक चादर ओढ़े एक स्त्री लेटी थी। विमला पलंग की बगल में खड़ी होकर बोली, 'मैं आ गई हूं दुर्गेश ! देर करने का समय नहीं है।'

लेटी हुई स्त्री चौंककर उठी। विमला को देखकर वह चुपचाप बैठ गई। उसकी आंखें लाल हो रही थीं रोते-रोते।

दुर्गेशनन्दिनी अब लज्जाग्रस्त बालिका नहीं रही थी। लग रहा था जैसे दस वर्ष उसकी आयु और बढ़ गई थी। उसकी देह अति क्षीण थी और मुख मलिन। वह साधारण धोती पहिने थी। बालों पर धूल जमी थी। शरीर पर अलंकार का नाम नहीं था, निशान मात्र थे।

'मैंने आने के लिए कहा था, सो आई हूं। तुम बात क्यों नहीं करतीं मुझसे ? चुप क्यों हो तुम ?'

'जो बातें करती थीं वे कर चुकी। अब क्या बात करूं ?'

विमला पहिचान गई, कि वह रो रही थी। मुंह ऊंचा करके देखा, आंसुओं से चेहरा तर था। आंचल भीग गया था, तकिया भी भीगा था।

'इस तरह रोने से शरीर न चलेगा बेटी !'

'इसके चलने की आवश्यकता भी नहीं है। अब तक क्यों चलता रहा, यही दुःख है मुझे।' दुर्गेशनन्दिनी ने कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमला निरुत्तर थी। वह भी रोने लगी। फिर ठण्डी सांस लेकर बोली, 'इसका उपाय क्या है ?'

'उपाय की क्या आवश्यकता है ?'

'अभी तुम कतलूखां को नहीं समझ सकी हो ? आज ही तक हम लोगों की क्षमा की सीमा थी। आज हम लोगों को नृत्यशाला में न देखकर ज्ञात नहीं वह क्या करेगा ?'

'और क्या अत्याचार करेगा ?' दुर्गेशनन्दिनी ने कहा।

'निराश क्यों होती हो ? अभी हममें प्राण हैं। हमारा धर्म नहीं गया है। जब तक प्राण हैं, तक तक धर्म रखूंगी।'

'तब मां ! इन अलंकारों को फूंक दो। तुम्हारे अलंकार मेरी आंखों में गड़ रहे हैं।' दुर्गेशनन्दिनी ने कहा।

विमला हंसकर बोली, 'बेटी ! मेरी सारी तैयारी का बिना समझे उपहास न करो।' यह कहकर विमला ने अपने वस्त्रों के अन्दर से एक कटार निकाली। दीपक के प्रकाश में उसका फल विद्युत की तरह दमका।

दुर्गेशनन्दिनी बोली, 'यह तुमने कहां से पाई ?'

'कल अन्तःपुर में एक नई दासी आई है। उसे देखा है तुमने ?'

'देखा है। आसमानी आई है।' दुर्गेशनन्दिनी ने कहा।

'आसमानी द्वारा इसे अभिराम स्वामी के पास से मंगाया है।'

दुर्गेशनन्दिनी चुप हो गई। उसका दिल कांपने लगा। विमला बोली, 'तुम आज इस वेश का त्याग न करोगी ?'

'नहीं।' दुर्गेशनन्दिनी ने दृढ़ता से कहा।

'नृत्य-गीतादि में न जाओगी ?' विमला ने पूछा।

'नहीं !' दुर्गेशनन्दिनी का वही उत्तर था।

'मैंने तुम्हारी मुक्ति का पूर्ण प्रबन्ध कर लिया है। खड़ी होकर वस्त्र इत्यादि ठीक करो।'

दुर्गेशनन्दिनी चकित दृष्टि से विमला की ओर देखने लगी।

विमला उसके हाथ में उसमान की अंगूठी देकर बोली, 'इस अंगूठी को लो। नृत्य-गृह में न जाना। आधी रात से पहिले नृत्य-समाप्त न होगा। तब तक मैं पठान को फंसाये रहूंगी। मैं तुम्हारी विमाता हूं, यह वह जान गया है। तुम मेरे सामने न आओगी, इसी छल से नृत्य-गीत समाप्त होने तक मैं उसे शांत रखूंगी। आधी रात को अन्तःपुर के द्वार पर जाना। वहां एक आदमी तुम्हें एक और अंगूठी दिखाएगा। तुम उसके साथ चली जाना। जहां उसे ले जाने को कहोगी, वह तुम्हें वहीं पहुंचा देगा। तुम उससे कहना कि वह तुम्हें अभिराम स्वामी की कुटी पर पहुंचा दे।'

दुर्गेशनन्दिनी विस्मय से कुछ देर बोल न सकी। फिर बोली, 'यह अंगूठी तुम्हें किसने दी ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यह लम्बी कहानी है। मैं फिर बताऊंगी। इस समय जो मैंने कहा, वह करना।' विमला ने कहा।

'तुम्हारी क्या दशा होगी ?' दुर्गेशनन्दिनी ने पूछा।

'मेरे लिए चिन्ता न करो। मैं दूसरे उपाय से बाहर होकर कल सवेरे तुमसे मिलूंगी।' विमला ने कहा।

यह कहकर विमला ने दुर्गेशनन्दिनी को समझाया। उसने जो अपना मार्ग अंधकारपूर्ण कर लिया था उसे दुर्गेशनिन्दनी कुछ भी न समझ सकी। दुर्गेशनन्दिनी पूरी तरह संतुष्ट हो गई।

बहुत दिन से दुर्गेशनन्दिनी के मुख पर प्रसन्नता न आई थी। विमला की बात सुनकर उसका चेहरा खिल उठा।

यह देखकर विमला भी प्रसन्न हुई। वह रुंधे कंठ से बोली, 'अब मैं जाती हूं। तुम अपना कार्य सावधानी से करना।'

'तुम्हें दुर्ग का सब हाल ज्ञात है। हम लोगों के आत्मीय जन कहां हैं, कौन कैसे है, बता तो दो मुझे।'

विमला ने देखा कि इस विपद्-काल में भी उसके हृदय में जगतसिंह जग रहे थे। विमला को राजपुत्र का निष्ठुर पत्र मिला था। उसमें उसका नाम भी नहीं था। इन सब बातों को न बताकर उसने कहा, 'जगतसिंह इस समय इसी दुर्ग में हैं। वह कुशलपूर्वक हैं।'

दुर्गेशनन्दिनी मौन रही।

विमला आंखें पोंछती हुई वहां से चली गई।

विमला के जाने पर दुर्गेशनन्दिनी कमरे में बैठी रही। विचार-सागर में गोते लगाने लगी। विमला उसे प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी। विमला ने उसके उद्धार का जो जवाब किया था, उसकी आलोचना उसके हृदय में उठने लगी। वह सोचने लगी, 'मुक्ति पाकर कहां जाऊंगी ? अब पिता के घर में कौन है ?' वह फिर रोने लगी। सब चिन्ताओं को दबाकर एक और चिन्ता हृदय में उठी। राजपुत्र कुशल से है ? कहां हैं ? क्या सोचते होंगे ? क्या वह बंदी है। यह सोचते-सोचते उसकी आंखें फिर भर आईं। हाय रे दुर्भाग्य। मेरे ही कारण वह बंदी हुए। उनके चरणों पर प्राण दे देने से भी क्या इसका शोध होगा ? मैं उनके लिए क्या कर सकती हूं ? फिर सोचने लगी, वह कारागार में हैं। कैसा है वह कारागार ? वहां क्या दूसरा नहीं जा सकता ? वह कारागार में बैठे क्या सोचते होंगे ? सोचा, इस अंगूठी की उनके पास भेज देने से भी कोई लाभ न होगा। जो मुझे लेने आएगा क्या उसके द्वारा कोई नया उपाय नहीं हो सकता ? ठीक है उससे पूछूंगी। देखूं, वह क्या कहता है। क्या एक बार भेंट भी न कर सकूंगी ? मैं साक्षात्कार करना चाहूंगी। भेंट होने पर क्या कहकर बातें करूंगी ? क्या कहकर मैं अपने मन की ज्वाला शान्त करूंगी ?

वह इसी प्रकार चिन्ता करने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तभी एक दासी ने कमरे में प्रवेश किया। उसने उससे पूछा, 'रात कितनी हुई है ? वह बोली, 'रात का दूसरा प्रहर बीता है।'

दुर्गेशनन्दिनी दासी के बाहर जाने की प्रतीक्षा करने लगी। दासी कार्य समाप्त करके चली गई।

दुर्गेशनन्दिनी विमला की दी हुई अंगूठी लेकर चली। उसके मन में शंका होने लगी। उसके पैर कांपने लगे। उसका हृदय भी कांप उठा। मुंह सूख गया। साहस बटोरकर वह अन्तःपुर के द्वार तक पहुंची। गंढ़वाली, खोजा, हबशी आदि सब प्रमोद में मस्त थे। उन्होंने उधर ध्यान न दिया, परन्तु दुर्गेशनन्दिनी को जान पड़ा कि वे सब उसे देख रहे थे। द्वार पर केवल एक आदमी खड़ा था। वह भी प्रहरी-वेश में था। उसने उसे देखकर पूछा, 'आपके हाथ में अंगूठी है ?'

दुर्गेशनन्दिनी ने भयभीत होकर अंगूठी दिखा दी। प्रहरी ने उसे अपनी अंगूठी दिखाई। फिर बोला, 'मेरे साथ आइए। कोई चिन्ता की बात नहीं है। सावधानी से चली आइए।'

दुर्गेशनन्दिनी प्रहरी के पीछे-पीछे चल पड़ी। आज अन्तःपुर में प्रहरी भी हर जगह न थे। रात्रि में सब द्वार खुले थे। कोई रोक-टोक न थी। प्रहरी दुर्गेशनन्दिनी को लिए हुए अनेक द्वार, कमरे, आंगन पार करके ज़ाने लगा। अन्त में दुर्ग के फाटक पर जाकर बोला, 'आज्ञा कीजिए कहां जाएंगी आप ?'

विमला ने जो दुर्गेशनन्दिनी से कहा था, वह भूल गई। उसे जगतसिंह ही याद आ रहे थे। इच्छा हुई कि प्रहरी से कहे, 'राजपुत्र के पास ले चलो, परन्तु लज्जा के कारण न कह सकी। फिर भी मुंह ये वही निकल गया। प्रहरी ने फिर पूछा, 'कहां ले चलूं ?' वह फिर भी कुछ न बोल सकी। वह ज्ञान-शून्य हो गई थी। दुर्गेशनन्दिनी का हृदय धड़कने लगा। आंखों के सामने अंधेरा छा गया। उसे कुछ सुनाई नहीं पड़ा। उसके मुंह से क्या निकला, वह जान न पाई।' प्रहरी को जगतसिंह सुनाई दिया था।

वह बोला, 'जगतसिंह तो कारागार में हैं। वहां कोई नहीं जा सकता, परन्तु मुझे आज्ञा है कि आप जहां कहें, आपको वहां ले जाऊं। चलिए ले चलता हूं।'

प्रहरी फिर दुर्ग में घुसा। दुर्गेशनन्दिनी कहां जा रही थी, वह कुछ भी न समझकर प्रहरी के साथ लौट गयी। प्रहरी ने बंदी-गृह के द्वार पर जाकर देखा कि और जगहों के रक्षकों की तरह वहां के प्रहरी उन्मत्त नहीं थे। उसने पूछा, 'राजपुत्र कहां हैं ?'

प्रहरी ने उंगली के संकेत से बता दिया।

उसने पूछा, 'बंदी निन्द्रित हैं या जाग्रत ?'

प्रहरी अन्दर जाकर लौटा और बोला, 'बंदी जाग रहे हैं।'

अंगूठी वाला प्रहरी बोला, 'द्वार खोल दो। यह स्त्री उनसे भेंट करेगी। यह उनके पास जाएगी।'

रक्षक आश्चर्य से बोला, 'यह कैसे ? इसकी आज्ञा नहीं है।'

अंगूठी वाले प्रहरी ने उसमान की सांकेतिक अंगूठी दिखाई। उसने सिर नीचा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके बन्दी-गृह का द्वार खोल दिया।

राजकुमार कमरे में एक साधारण चौकी पर बैठे थे। द्वार खुलते ही वह उधर देखने लगे। दुर्गेशनन्दिनी द्वार तक जाकर रुक गई। उसके पैर न उठे। वह द्वार को पकड़े खड़ी रही।

अंगूठी वाला प्रहरी बोला, 'यह क्या ? आप रुक क्यों गयीं ? आप देर न करें?' फिर भी उसके पैर आगे न बढ़ सके।

प्रहरी बोला, 'न जाना हो तो लौट चलिए। यह खड़े होने का स्थान नहीं है। यहां कोई खड़ा नहीं हो सकता।'

दुर्गेशनन्दिनी लौटने को उद्यत हुई, परन्तु उधर पैर न चले। सोचते-विचारते वह अनजाने में अन्दर बढ़ गई। अब वह बन्दी-गृह के अन्दर जगतसिंह के ठीक सामने खड़ी थी।

कमरे में प्रवेश करते ही राजपुत्र पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह द्वार के बगल में खड़ी हो गई और चुपचाप वहीं खड़ी रही।

राजपुत्र पहिले तो उसे पहिचान न सके। वह स्त्री को देखकर आश्चर्यचकित रह गए। वह दीवार के सहारे खड़ी थी। उसे बोलते न देखकर वह चकित हुए। वह चौकी छोड़कर उसके पास आए। अब पहिचानने में देर न लगी।

एक क्षण के लिए आंखें चार हुईं। फिर दुर्गेशनन्दिनी की आंखें लज्जा से जमीन की ओर झुक गयीं। उसका बदन आगे की ओर झुक गया, मानो वह राजकुमार के पैरों पर गिरना चाहती थी।

राजपुत्र कुछ पीछे हटे। दुर्गेशनन्दिनी का बदन अवसन्न-सा हो गया। उसका हृदय-कुसुम मुरझा गया। राजपुत्र बोले, 'वीरेन्द्रसिंह की कन्या !'

दुर्गेशनन्दिनी के हृदय पर भीषण आघात हुआ। 'वीरेन्द्रसिंह की कन्या ! क्या यही संबोधन उचित था ?' जगतसिंह क्या उसका नाम भी भूल गए ? दोनों कुछ देर चुप रहे। फिर राजपुत्र बोले, 'यहां तुम किस अभिप्राय से आई हो ?'

'यहां किस अभिप्राय से आई' यह कैसा प्रश्न ?' उसका सिर चकरा गया। वह पीपल के पत्ते की तरह कांपने लगी।

राजपुत्र बहुत देर तक प्रत्युत्तर की आशा में खड़े रहे, परन्तु कौन उत्तर देता ? उत्तर की सम्भावना न देखकर वह बोले, 'तुम्हें कष्ट हो रहा हो तो लौट आओ। पहिले की सब बातें भूल जाओ।'

दुर्गेशनन्दिनी को अब कुछ भी भ्रम न रहा। उसकी आंखों के समक्ष अन्धकार छा गया। वह अचेत होकर जमीन पर गिर पड़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगतसिंह ने झुककर देखा, दुर्गेशनन्दिनी का बदन शिथिल था। एक वस्त्र द्वारा वह उसे हवा करने लगे। फिर भी चेतना न लौटी। उन्होंने प्रहरी को बुलाया। प्रहरी अन्दर आया।

जगतसिंह उससे बोले, 'यह मूर्छित हो गयीं। जो इनके साथ आया था, उससे इनकी देखभाल करने को कहो।'

'मैं ही इनके साथ आया था।'

'तुम !' आश्चर्य से जगतसिंह ने कहा।

'जी हां।' उसने कहा।

राजपुत्र बोले, 'किसी दासी से नवाब की पुत्री को सूचना करा दो।'

प्रहरी तेजी के साथ चल पड़ा। राजपुत्र दुर्गेशनन्दिनी को हवा करने लगे। राजपुत्र अपने मन में न जाने क्या-क्या सोच रहे थे।

राजपुत्र सोच रहे थे कि यदि आयशा को सूचना न मिली और इसका कोई उपचार न हुआ तो क्या होगा ?

दुर्गेशनन्दिनी को धीरे-धीरे चेतना लौट रही थी। तभी जगतसिंह ने देखा कि दो स्त्रियां सामने से आ रही थीं। जगतसिंह समझ गए, आयशा आ रही है। उसे देखकर जगतसिंह कुछ निश्चिन्त हुए।

दासी के साथ आयशा को देखकर कारागार के द्वार का प्रहरी बोला, 'क्या इन्हें भी अन्दर जाने दिया जाए ?'

अंगूठी वाला प्रहरी बोला, 'तुम जानो, मैं नहीं जानता।'

रक्षक बोला, 'ठीक है।' उसने उन्हें अन्दर जाने को मना किया।

आयशा ने चेहरे से नकाब हटाकर कहा, 'प्रहरी ! मुझे प्रवेश करने दो। यदि इसमें कोई दोष होगा तो मेरा होगा।'

प्रहरी आयशा को नहीं पहिचानता था। दासी ने धीरे से उसे परिचय दिया। प्रहरी ने अभिवादन किया और हाथ जोड़कर बोला, 'सेवक का अपराध क्षमा करें। आपको कोई नहीं रोक सकता।'

आयशा ने बन्दी-गृह में प्रवेश किया। उसके चेहरे से कारागार में जैसे उजाला हो गया।

आयशा ने राजपुत्र का अभिवादन करके कहा, 'राजपुत्र ! क्या समाचार है ? आपने मुझे कैसे याद फरमाया ?'

राजपुत्र जगतसिंह ने केवल उंगली के संकेत से जमीन पर पड़ी स्त्री को उन्हें दिखा दिया।

आयशा ने पूछा, 'यह कौन है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजपुत्र बोले, 'वीरेन्द्रसिंह की कन्या।'

आयशा उसे गोद में लेकर बैठ गई।

दासी से आयशा ने गुलाब-जल और शरबत मंगाया। वह सब उसे पिलाया और चेहरे को धोकर साफ किया। दासी पंखा झलने लगी। दुर्गेशनन्दिनी की चेतना फिर लौट आई।

चारों तरफ देखकर उसे पहिले की बात याद आ गई। वह तुरन्त कमरे से निकल जाना चाहती थी, परन्तु मानसिक क्लेश के कारण बदन जर्जर और अवसन्न हो गया था। वह तुरन्त न जा सकी। उसके जाग्रत होने पर आयशा बोली, 'बहिन ! तुम दुर्बल हो, चलो मेरे साथ चलकर विश्राम करो। फिर तुम जहां कहोगी, मैं तुम्हें वहीं भिजवा दूंगी।

दुर्गेशनन्दिनी ने कोई उत्तर न दिया।

आयशा प्रहरी से सब-कुछ सुन चुकी थी। वह दुर्गेशनन्दिनी के मन की बात समझकर बोली, 'मुझ पर विश्वास करो। मैं तुम्हारी शत्रु-कन्या अवश्य हूं, परन्तु अविश्वास का कोई कार्य न होगा। मेरे द्वारा तुम्हारी कोई बात प्रकट न होगी। रात बीतते-न-बीतते जहां कहोगी वहां दासी के साथ भिजवा दूंगी।'

आयशा की बात का दुर्गेशनन्दिनी अविश्वास न कर सकी। वह उठकर खड़ी हो गई और बिना जगतसिंह की ओर देखे कमरे से बाहर निकल गई। आयशा बोली, 'तुम अभी चल नहीं सकोगी, इस दासी का सहारा लेकर चलो।'

दुर्गेशनन्दिनी आगे बढ़ गई। आयशा ने रात्रपुत्र से विदा चाही। राजपुत्र उसके चेहरे की ओर ऐसे देखते रहे, मानो कुछ कहना चाहते हों। आयशा उनका भाव समझकर दासी से बोली, 'दासी ! तुम कुमारी को मेरे कमरे में पहुंचा आओ।'

दासी उसे लेकर चली गई।

जगतसिंह ने मन में कहा, 'मेरी तुम्हारी यही अन्तिम भेंट है।' फिर ठण्डी सांस लेकर चुप हो रहे। दुर्गेशनन्दिनी जब तक दिखाई देती रही, जगतसिंह उसे बराबर देखते ही रहे।

दुर्गेशनन्दिनी भी सोच रही थी, 'मेरी तुमसे यही अन्तिम भेंट है।' उसने फिर लौटकर नहीं देखा।

अंगूठीवाहक ने दुर्गेशनन्दिनी से कहा, 'मैं अब जाऊं ?' उसने कोई उत्तर न दिया। दासी बोली, 'हां तुम जा सकते हो।'

'आपके पास जो सांकेतिक अंगूठी है, उसे मुझे दे दो।'

दुर्गेशनन्दिनी ने अंगूठी प्रहरी को दे दी।

दुर्गेशनन्दिनी और दासी के वहां से चली जाने पर आयशा चौकी पर जा बैठी। जगतसिंह आयशा के पास खड़े रहे।

आयशा अपनी चोटी से एक गुलाब का फूल निकालकर उसकी पंखुरियों को नोंचती हुई बोली, 'राजकुमार ! जान पड़ता है आप मुझसे कुछ कहना चाहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहने में संकोच न करें। आपका कार्य करने में मुझे प्रसन्नता होगी।'

'नवाब-पुत्री ! इस समय मुझे कुछ नहीं कहना है। आपसे भेंट की इच्छा थी। मैं जिस दशा में हूं, उससे प्रतीत होता है कि शायद अब फिर कभी भेंट का अवसर न मिलेगा। शायद यही अन्तिम भेंट है। मैं आपका ऋणी हूं। कृतज्ञता शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता। कभी इस ऋण का कोई बदला दे सकूंगा, ऐसी भी आशा नहीं है। फिर भी यदि अवसर आए तो आज्ञा करने में संकोच न करना।'

जगतसिंह के स्वर में कातरता और निराशा थी।

'आप इतने हताश न हों ? सब दिन एक जैसे नहीं रहते।'

'मैं हताश नहीं हूं, परन्तु भरोसा भी कुछ नहीं है। अब इस जीवन का त्याग करने की ही इच्छा है। मेरे हृदय के कष्ट को आप नहीं जानतीं। मैं आपको वह सब बता भी नहीं सकता।'

कुमार की करुणापूर्ण बातों से आयशा विस्मित और दुःखी हुई। अब वह नवाब-पुत्री नहीं, एक स्नेहमयी रमणी थी। कुमार का हाथ पकड़ा और छोड़कर उनके चेहरे पर दृष्टि फैलाती हुई बोली, 'कुमार ! वह कष्ट तुम्हारे हृदय में क्यों है ? मुझे पराया न समझो। क्या वीरेन्द्रसिंह की कन्या....?'

बीच में ही राजकुमार बोले, 'अब वह सब निरर्थक है ? मेरा वह स्वप्न भंग हो गया।'

आयशा चुप रही। जगतसिंह भी चुप थे। दोनों बहुत देर तक चुप रहे। तभी राजपुत्र एकाएक चौंककर सिहर उठे। उनके हाथों पर आंसुओं की बूंदें आ पड़ीं। राजकुमार ने आयशा का चेहरा देखा। आयशा की आंखों से भी आंसू बह रहे थे।

आयशा ने कोई उत्तर न देकर अपने हाथ के गुलाब के फूल को नोंच डाला। फिर बोली, 'युवराज ! मैंने यह कभी नहीं सोचा था कि आज यहां से इस प्रकार विदा हूंगी। मैं कारागार में बैठकर तुम्हारा अकेले दुःखी होना सहन नहीं कर सकती। तुम मेरे साथ बाहर चलो, मैं तुम्हें घोड़ा देती हूं। तुम आज ही अपने शिविर लौट आओ।'

राजकुमार कोई उत्तर न दे सके। आयशा बोली, 'आओ।'

जगतसिंह बोले, 'आयशा ! तुम मुझे बन्दी-गृह से मुक्त कर दोगी ?'

'इसी क्षण।' आयशा ने दृढ़तापूर्वक कहा।

अपने पिता को बिना सूचना दिए ?' जगतसिंह ने पूछा।

'आप उसकी चिन्ता न करें। मैं उन्हें तब सूचना दूंगी जब आप अपने शिविर में पहुंच जायेंगे।'

जगतसिंह स्तम्भित रह गये यह सुनकर।

आयशा ने अपने गले का कण्ठ दिखाकर कहा, 'इसके लोभ से प्रहरी राह छोड़ देंगे।'

'बात के खुलने पर तुम्हारे पिता तुम्हें दण्डित करेंगे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'उसकी आप चिन्ता न करें।' आयशा ने कहा।

'तब मैं नहीं जाऊंगा।' जगतसिंह ने कहा।

आयशा दुःखी होकर बोली, 'क्यों ?'

'मैंने तुमसे प्राण-दान पाया है। मैं ऐसा कोई कार्य नहीं कर सकता जो तुम्हारे लिए घातक सिद्ध हो।'

'क्या तुम सचमुच न जाओगे ?' आयशा ने पूछा।

'नहीं, किसी मूल्य पर भी नहीं।' जगतसिंह ने कहा।

आयशा फिर चुप हो गई। उसकी आंखों से आंसू बह चले। वह बड़े कष्ट से आंसुओं को रोक सकी।

राजपुत्र बोले, 'आयशा ! तुम रोती क्यों हो ?'

वह कुछ नहीं बोली।

राजपुत्र फिर बोले, 'आयशा ! मेरी बात मानो। रोने का कारण कहने योग्य हो तो मुझसे कहो। यदि मेरे प्राण देने से भी तुम्हारा कष्ट दूर हो सकेगा तो मुझसे संकोच न होगा। मेरे बंदी रहना स्वीकार करने से निश्चय ही तुम्हारी आंखों में आंसू न आए होंगे। तुम्हारे पिता के बन्दी-गृह में मेरे जैसे न जाने कितने बन्दी पड़े हैं।'

आयशा आंचल से आंसू पोंछकर कुछ देर चुप रही। फिर बोली, 'राजपुत्र ! मैं अब न रोऊंगी।'

दोनों सिर नीचा करके चुपचाप खड़े हो गए।

कमरे की दीवार पर तभी एक छाया दिखाई पड़ी। उन्होंने उसे न देखा। एक तीसरा व्यक्ति आकर उनके पास खड़ा हो गया।

फिर भी किसी ने न देखा। आगन्तुक बोला, 'नवाब-पुत्री ! यह मैं क्या देख रहा हूं ? क्या यह उचित है ?'

'उसमान तुम !' आयशा के मुख से निकला।

उसमान अपने अंगूठी-वाहक गुप्तचर से सारा वृत्तान्त सुनकर आयशा की खोज में वहां आया था। उसमान को देखकर राजपुत्र आयशा के लिए दुःखी हुए। शायद आयशा को कुछ सहन करना पड़े। उसमान का व्यंग्य सुनकर आयशा उसका अभिप्राय समझ गई। आयशा का चेहरा लाल हो गया। उस पर अधैर्य का कोई चिह्न न था। उसने स्थिर स्वर में पूछा, 'क्या उचित नहीं है उसमान ?'

'एकान्त में नवाब-पुत्री का एक बन्दी के साथ इस तरह रहना और बन्दी-गृह में अनियमित-प्रवेश करना।'

आयशा उसमान की ओर देखकर अभिमान भरे स्वर में बोली, 'रात में अकेली कारागार में आकर बन्दी के साथ बातें करने की मेरी इच्छा थी उसमान ! मेरा यह कार्य उचित है या अनुचित, इसे देखने की जरूरत तुम्हें नहीं है।'

उसमान यह सुनकर लाल हो गया। वह क्रुद्ध होकर बोला, 'जरूरत है या नहीं, यह कल सवेरे तुम नवाब के मुंह से सुनोगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जब वह मुझसे पूछेंगे, तो मैं उत्तर दूंगी। तुम्हें चिन्ता करने की जरूरत नहीं है।' आयशा ने कहा।

उसमान व्यंग्य कसकर बोला, 'यदि मैं उत्तर चाहूं तो ?'

आयशा उठकर खड़ी हो गई। वह क्रुद्ध दृष्टि से उसमान की ओर देखती रही। उसके उन्मत्त बड़े-बड़े नेत्र और भी बड़े हो गए। उसका चेहरा दमक उठा। वह स्पष्ट शब्दों में बोली, 'उसमान ! यदि तुम पूछना ही चाहते हो तो मेरा उत्तर है कि मैं बन्दी को प्यार करती हूं।'

आयशा की यह बात सुनकर उसमान और राजपुत्र दोनों ही चकित रह गए। उसमान पर वज्रपात हो गया। राजपुत्र को लगा, जैसे किसी ने उनके अंधेरे घर में उजाला कर दिया। आयशा के आंसू बहाने का कारण वह अब समझ पाए। उसमान उसे पहिले ही समझ चुका था। इसीलिए वह आयशा का तिरस्कार कर रहा था, परन्तु आयशा इस बात को इस तरह स्वीकार कर लेगी, इसका उसे स्वप्न में भी विश्वास न था। उसमान उत्तर न दे सका।

आयशा बोली, 'उसमान ! फिर कहती हूं कि यह मेरे प्राणेश्वर हैं। मेरे हृदय में अब दूसरा कोई स्थान नहीं पा सकता। कल यदि इन्हें कत्ल भी किया गया तो तब भी तुम देख लेना कि मैं आजीवन इन्हीं की आराधना करती रहूंगी। कल यदि सैकड़ों लोग आयशा के दामन पर थूकें तो तब भी मैं इनकी ही दासी रहूंगी। जानते हो मैं अकेले में इनसे क्या कह रही थी ? मैं कह रही थी कि रक्षक प्रहरियों को धन से संतुष्ट करके अश्वशाला से तुम्हें घोड़ा मंगा दूंगी। बन्दी, तुम अपने शिविर में चले जाओ, परन्तु बन्दी ने भागने से इंकार कर दिया। यह राजी हो जाते तो इनका निशान भी यहां न मिलता।' यह कहकर आयशा ने फिर अपने आंसू पोंछे। वह कुछ देर चुप रहकर फिर बोली, 'उसमान ! ये सब बातें कहकर मैं तुम्हें कष्ट पहुंचा रही हूं, क्षमा करना। तुम मुझसे और मैं तुमसे प्रेम न करूं, यह उचित नहीं है। आज तक तुमने आयशा का कभी अविश्वास नहीं किया। आयशा जो करती है, उसे स्वीकार करती है। जो कुछ आज तुम्हारे सामने कहा है यदि आवश्यकता होगी तो कल पिताजी के सामने भी कहूंगी।'

इसके बाद उसने जगतसिंह की ओर देखकर कहा, 'राजपुत्र ! तुम भी मेरे अपराध को क्षमा करना। यदि उसमान ने आज मेरे मन को दुःख न पहुंचाया होता तो अपने हृदय का भाव कभी आप पर प्रकट न करती। कभी किसी के कानों में यह बात न पहुंचती कि आयशा आपको प्रेम करती थी।'

राजपुत्र मौन खड़े थे। उनका सिर चकरा रहा था।

उसमान मौन रहा।

आयशा बोली, 'उसमान ! यदि मैंने दोष किया है तो क्षमा करना। मैं तुम्हारी पूर्ववत् स्नेहप्रिय बहिन हूं, यह समझकर अपना प्यार कम न करना। भाग्य-दोष के कारण दुःख-सागर में कूदी हूं, भाई के स्नेह से निराश कर मुझे अतल जल में डुबो न देना।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

16

कतलूखां के हरम में नृत्य हो रहा था। वह अकेला अपने विलास-गृह में नृत्य का आनन्द ले रहा था।

एक तरुणी कतलूखां की बगल में बैठकर सोने के कटोरे में सुरा ढाल रही थी। वह विमला थी। उसने कितनी सुरा ढाली कौन जाने ? वह बराबर ढालती जा रही थी और कतलूखां पीता जा रहा था। उन्हें अपनी सुधि न रही। कतलूखां विमला का रूप देख रहा था। विमला ने कटाक्ष मारा ? विमला ने सुरा पिलाकर उसे मदहोश कर दिया।

फिर विमला नृत्य करने लगी और मधुर स्वर में गा उठी। कतलूखां विमला की ओर बढ़ गया। वह उसे अपनी बाहुओं में भर लेने के लिए दोनों हाथ फैलाकर बोला, 'प्यारी मेरी छाती से लग जाओ।'

'दासी श्री चरणों में है ?' विमला निकट आकर बोली और चोली से छुरा निकालकर कतलूखां के कलेजे के अन्दर उतार दिया। वह लड़खड़ाकर जमीन पर गिर पड़ा।

'मैं वीरेन्द्रसिंह की विधवा स्त्री हूं कतलूखां ! याद रखना।' कहती हुई विमला वहां से भाग निकली।

खोजे और प्रहरियों ने पूछा, 'क्या हुआ ?'

'सर्वनाश हो गया, जल्दी जाओ। कमरे में कोई मुगल आ पहुंचा है। उसने नवाब का खून कर दिया।' विमला ने उनसे कहा।

प्रहरी और खोजे कमरे की ओर दौड़े। विमला अन्तःपुर के द्वार की ओर भागी। द्वारपाल नशे में धुत थे। उन्होंने देखा कि सब जगह वही दशा थी। वह बराबर दौड़ती गई। फाटक पर प्रहरी ने विमला से पूछा, 'कौन हो तुम ? कहां जा रही हो ?'

तब तक अन्तःपुर में कोलाहल हो उठा था। सब लोग इधर-उधर को भागे जा रहे थे। विमला बोली, 'तुम यहां बैठे क्या कर रहे हो ?'

'क्यों, क्या हुआ ?' उन्होंने पूछा।

'गजब हो गया है। नवाब पर आक्रमण हुआ है। किसी ने उनके कलेजे में छुरा भोंक दिया। जल्दी जाओ।'

प्रहरी दौड़े। विमला ने फाटक से कुछ दूर जाकर देखा अभिराम स्वामी खड़े थे। उन्होंने पूछा, 'दुर्ग में कैसा शोर है ?'

'मैं अपने पति का बदला लेकर आई हूं। यहां से तुरन्त भाग चलो। दुर्गेशनन्दिनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रम में पहुंच गई होगी।'

दोनों तेजी से दौड़ चले। उन्होंने कुटी पर जाकर देखा आयशा की कृपा से दुर्गेशनन्दिनी आसमानी के साथ वहां पहुंच गई थी।

अभिराम स्वामी बोले, 'प्रभु की कृपा से तुम मुक्त हुईं। अब यहां ठहराना उचित नहीं है। यदि पठान पता पा गए तो प्राण ले लेंगे। चलो, यह स्थान त्याग दें। हमारा यहां ठहरना उचित नहीं है।'

वे सब लोग तुरन्त वहां से चल पड़े।

उधर कतलूखां का सिपाही बन्दी-गृह में जगतसिंह के पास जाकर बोला, 'युवराज! नवाब साहब का अन्तिम समय आ पहुंचा है। उन्होंने आपको याद किया है।'

'यह कैसे हुआ ?'- जगतसिंह ने आश्चर्य से पूछा।

'कोई शत्रु हरम में घुसकर नवाब साहब के कलेजे में छुरा भोंककर भाग गया।' सिपाही ने बताया।

'परन्तु वह मुझसे क्यों मिलना चाहते हैं ?'

'मैं क्या जानूं ?' सिपाही ने कहा।

राजकुमार ने दूत के साथ अन्तःपुर में जाकर देखा कतलूखां का जीवन-दीप बुझा ही चाहता था। उसमान, आयशा, लड़के, पत्नी, उपपत्नियां, दासी, अमात्य सब वहां एकत्रित थे। सब रो रहे थे। आयशा को चेहरा अश्रुओं से परिप्लावित था। वह पिता का सिर अपनी गोद में लिए बैठी थी। जगतसिंह ने देखा कि वह गम्भीर और निस्पन्द थी।

अमात्य बोला, 'हुजूर युवराज जगतसिंह आ गए।'

कतलूखां ने कहा, 'अब युद्ध की जरूरत नहीं। सन्धि....।'

जगतसिंह ने कोई उत्तर न दिया। उत्तर न पाकर वह फिर बोले, 'अस्वीकार करते हो क्या जगतसिंह ?'

'पठानो द्वारा दिल्लीश्वर का प्रभुत्व स्वीकार करने पर ही मैं सन्धि के लिए अनुरोध करना स्वीकार कर सकता हूं।'

'उड़ीसा हमें दे दो।' कतलूखां ने कहा।

'प्रयत्न करूंगा कि आपके पुत्र उड़ीसा-राज्य से च्युत न हों।'

कतलूखां का चेहरा चमक उठा। वह बोला, 'खुदा हाफिज।'

जगतसिंह के विदा होते समय आयशा ने मुंह नीचा करके अपने पिता के कान में कुछ कहा। कतलूखां ने फिर राजपुत्र की ओर देखा।

आयशा बोली, 'युवराज ! नवाब आपसे कुछ और कहना चाहते हैं।

'वीरेन्द्रसिंह की कन्या, पितृहीना, मैं पापिष्ठा, आह प्यास।' फिर शब्द निकलना कठिन हो गया।

राजपुत्र ने पूछा, 'क्यों ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वह आयशा की ही तरह पवित्र है। तुमम....आह, बड़ी प्यास मैं चला आयशा! चला।' ये कतलूखां के अन्तिम शब्द थे।

कतलूखां का निर्जीव सिर जमीन पर लटक गया।

17

जगतसिंह ने अपने शिविर में पहुंचकर वायदे के अनुसार मुगल और पठानों की सन्धि करा दी।

इस तरह सन्धि हुई और शिविर-भंग हो गया। राजपूत सेना पटना की ओर चल दी। जगतसिंह अंगरक्षकों के साथ पठान-दुर्ग में उसमान आदि से विदा लेने गए, पर बन्दी-गृह की घटना के कारण उसमान ने कुमार के प्रति वह प्रेम-भाव प्रकट नहीं किया जो पहिले प्रदर्शित किया करता था। उसके दिल में एक जलन थी।

जगतसिंह उसमान के पास से दुःखी हृदय लेकर लौटे। उनकी इच्छा आयशा से मिलने की हुई। उन्होंने दासी से कहलवाया, 'मैं पटना जा रहा हूं। फिर शायद भेंट न हो। इसलिए एक बार अभिवादन करने आया हूं।'

खोजा ने कुछ देर में लौटकर उत्तर दिया, 'नवाब-पुत्री ने कहलवाया है कि आप उन्हें क्षमा करें। वह आपसे भेंट नहीं कर सकेंगी।'

राजपुत्र बहुत दुःखी हृदय से अपने शिविर की ओर चल पड़े। दुर्ग-द्वार पर उसमान उनकी प्रतीक्षा कर रहा था।

राजपुत्र उसमान का फिर अभिवादन करके आगे बढ़े, परन्तु उसमान उनके पीछे-पीछे चला। राजपुत्र बोले, 'सेनापति ! आपकी कोई आज्ञा हो तो कहिए। मैं उसका पालन करूंगा।'

उसमान बोला, 'आपसे एक विशेष बात कहनी है। इतने लोगों के बीच कह न सकूंगा। इन्हें आगे बढ़ने की आज्ञा दें तो कहूं।'

राजपुत्र अपने सहचरों से आगे बढ़ने को कहकर घोड़े पर सवार होकर पठान के साथ चले। कुछ दूर जाने पर उसमान राजपुत्र के साथ एक वन में घुसा। वन के बीच में एक कब्र खुदी थी और एक चिता बनी थी।

जगतसिंह ने पूछा, 'यह सब क्या है ?'

'यह सब मेरी आज्ञा से हुआ है। आज यदि मेरी मृत्यु हो तो आप मुझे इस कब्र में उतार दें और यदि आप देह-त्याग करेंगे तो इस चिता पर ब्राह्मण द्वारा आपका दाह-संस्कार करा दूंगा।'

'इस बात का क्या मतलब ?' जगतसिंह ने पूछा।

'हम लोग पठान हैं। दिल जलने पर उचित-अनुचित नहीं सोचते। इस पृथ्वी पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयशा के दो प्रेमी नहीं रह सकते।'

राजकुमार क्रुद्ध होकर बोले, 'आपका मतलब क्या है आखिर ?'

'आप मेरे साथ युद्ध कीजिए। मुझे मारकर अपना रास्ता साफ करिए या मेरे हाथों मरकर मेरा रास्ता छोड़ दीजिए।'

यह कहकर उसमान ने जगतसिंह को उत्तर का अवकाश न दिया और तलवार लेकर उन पर आक्रमण कर दिया। लाचार जगतसिंह को तलवार निकालकर अपनी रक्षा करनी पड़ी। उसमान भयानक आक्रमण करने लगा। राजपुत्र केवल अपनी रक्षा करते रहे।

जगतसिंह बोले, 'उसमान ! मैंने हार स्वीकार की।'

उसमान हंसकर बोला, मैं नहीं जानता था कि राजपूत मरने से इतना डरते हैं। युद्ध करो, मैं तुम्हारा वध करूंगा।'

'मैं आयशा का अभिलाषी नहीं हूं।'

'आयशा तुम्हारी अभिलाषिनी है, युद्ध करो।'

राजपुत्र तलवार फेंककर बोले, 'मैं युद्ध नहीं करूंगा। तुमने मेरा उपकार किया है। मैं तुमसे युद्ध नहीं कर सकता।'

उसमान उन्हें ठोकर मारकर बोला, 'जो सिपाही युद्ध करने से डरता है, उसे मैं इस तरह ठोकर मारकर युद्ध के लिए प्रेरित करता हूं।'

अब राजपुत्र को धैर्य जाता रहा। उन्होंने जमीन पर पड़ी अपनी तलवार उठा ली और यवन पर प्रचंड आक्रमण किया। उसमान जमीन पर गिर पड़ा। वह उसकी छाती पर चढ़कर बोले, 'तेरी युद्ध की प्यास बुझी या अभी नहीं ?'

'वह जीवन रहते नहीं बुझेगी।' उसमान बोला।

'क्या अभी भी जीवन शेष है ?' जगतसिंह ने पूछा।

'मुझे मार डालो, वरना तुम्हारा शत्रु जीवित रह जाएगा।

'रहे, राजपूत इससे नहीं डरते। एक दिन तुमने मेरी रक्षा की थी। मैंने आज तुम्हें जीवन-दान दिया।' जगतसिंह ने कहा।

यह कहकर जगतसिंह उसके हाथ-पैर बांधकर बोले, 'तुमने यवन होकर राजपुत्र पर पदाघात किया, इसीलिए मैंने तुम्हारी यह दशा की है उसमान !'

राजपुत्र घोड़े पर सवार हुए। उन्होंने देखा कि उनकी रास में एक पत्र बंधा था। उस पर लिखा था, 'इस पत्र को दो दिन तक नहीं खोलिए। खोलेंगे तो उद्देश्य विफल होगा।' राजपुत्र शिविर की ओर चल पड़े।

दूसरे दिन राजपुत्र को आयशा का पत्र मिला। जगतसिंह पत्र पढ़ने लगे। उसमें लिखा था, 'राजपुत्र ! मैंने जो तुम्हारे साथ भेंट नहीं की, वह धैर्य पर अविश्वास करके नहीं। तुम यह न सोचना कि आयशा अधीरा है। उसमान के हृदय में आग जल रही है। मेरी तुमसे भेंट न होने से तुम्हें दुःख हो, ऐसी आशंका मुझे नहीं है। मैं तुम्हारे साथ भेंट न कर सकी, इस दुःख को पत्थर बनकर सह रही हूं ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं तुमसे कुछ नहीं चाहती। मुझे जो कुछ देना था सो दे चुकी। मेरा स्नेह तुम्हार प्रेम न पाने पर भी सुखी है।

मैंने तुम्हें दुःखी देखा था। यदि कभी सुखी हो तो आयशा को याद कर लेना। इच्छा न हो, तो न करना।

मैंने तुम्हें पत्र लिखा, इसकी लोग निन्दा करेंगे। मैं निर्दोष हूं, इसलिए जब इच्छा हो पत्र लिखना।

तुम इस देश को त्याग कर जा रहे हो। पठान शांत स्वभाव के नहीं हैं। इसलिए तुम्हारा यहां आना फिर सम्भव है, परन्तु मेरे साथ फिर भेंट न हो सकेगी। नारी हृदय में साहस ही कितना होता है ?

इच्छा है, एक बार और तुमसे भेंट करूं। यदि तुम इस देश में विवाह करो तो मुझे सूचना देना। मैं विवाह के समय उपस्थित रहकर उसे सम्पन्न कराऊंगी।

एक प्रार्थना और है। जब आयशा की मृत्यु-सूचना तुम्हें मिले तो एक बार इस देश में आना। खुदा तुम्हें सुखी रखें। आयशा की याद करके कभी दुःखी न होना।'

पत्र पढ़कर बहुत देर तक जगतसिंह तम्बू में टहलते रहे। फिर एक कागज लेकर आयशा को पत्र लिखा, 'आयशा ! तुम रमणी-रत्न हो। तुम्हारा पत्र पाकर मैं बहुत कातर हूं। इस पत्र का उत्तर अभी दे नहीं सका हूं। मुझे भूलना मत। बचा रहा तो एक वर्ष बाद उत्तर दूंगा।'

उत्तर लेकर दूत आयशा के पास लौट गया।

18

दुर्गेशनन्दिनी को आयशा ने कारागार से अपनी दासी के साथ अन्यत्र भेज दिया था। उसके पश्चात वह कहां गई, इस विषय में जगतसिंह को कोई ज्ञान न था। उसने इधर-उधर उसकी खोज अवश्य कराई थी, परन्तु कोई निश्चित समाचार नहीं मिला।

मानसिंह ने बिहार का अपना सेना-शिविर भंग कर दिया और दूसरे दिन सेना को वहां से प्रस्थान करना था।

जिस दिन सेना को प्रस्थान करना था, वह वही दिन था, जब राजपुत्र जगतसिंह अपने घोड़े की रास में बंधी चिट्ठी को पढ़ सकते थे। जगतसिंह ने एकान्त में जाकर उस चिट्ठी को खोला और पढ़नी आरम्भ की।

पत्र नितान्त संक्षेप में लिखा था। राजकुमार ने कांपते हाथों से पत्र संभाला हुआ था। उनका दिल धड़-धड़ कर रहा था। उसमें लिखा था, 'राजपुत्र ! यदि तुम्हें धैर्य का भय है, ब्राह्मण के शाप का भय है, अपनी मान-मर्यादा का भय है तो पत्र को पढ़ते ही अकेले निम्न पते पर आओ। तुम्हारा यहां कोई अहित न होगा। तुम्हारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा को शांति मिलेगी और शायद उसे जीवित देख पाओगे, जिसे तुम देखना चाहते हो। मेरा अभिप्राय दुर्गेशनन्दिनी से है।

तुम्हारा शुभचिन्तक
एक ब्राह्मण।'

पत्र को पढ़कर जगतसिंह आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने तुरन्त अपने सेना-नायक को बुलाकर आदेश दिया, 'मैं किसी आवश्यक कार्य से प्रस्थान कर रहा हूं। किसी कारणवश यदि मैं निश्चित समय तक वापस न लौट पाऊं तो तुम लोग मेरी राह न देखकर अपनी यात्रा आरम्भ कर देना। मेरे लौटने की प्रतीक्षा न करना। तुम लोगों का दूसरा पड़ाव वर्धमान में होगा। मैं वहीं आकर तुम लोगों से मिलूंगा। तुम वहीं मेरी प्रतीक्षा करना।'

सेनानायक ने आज्ञा प्राप्त कर सिर झुका लिया।

राजकुमार जगतसिंह ने अपना घोड़ा मंगाया और उस स्थान की यात्रा की तैयारी की जहां उन्हें जाना था। वह स्थान वहां से पर्याप्त दूरी पर था और उनका देखा हुआ भी नहीं था फिर भी उन्होंने किसी अन्य व्यक्ति को अपने साथ नहीं लिया, क्योंकि पत्र में उन्हें अकेले ही आने के लिए लिखा था।

जगतसिंह ने यात्रा आरम्भ की। कुछ मील जाने पर शाल-वन आरम्भ हुआ। उसी के अन्दर उन्हें जाना था। उन्हें एक पगडंडी दिखाई और उन्होंने अपना घोड़ा उसी पर डाल दिया।

दिन का प्रकाश धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा था और उन्हें ज्ञात न था कि लक्ष अभी और कितनी दूर है। इसलिए उन्होंने घोड़े की चाल और तीव्र कर दी।

आकाश बादलों से घिरा था। कभी-कभी बादलों में बिजली भी चमक जाती थी। वर्षा अभी आरम्भ नहीं हुई थी, फिर भी सम्भावना थी कि वह किसी भी समय आ सकती थी, क्योंकि वायु बहुत शीतल थी।

कुछ दूर और आगे बढ़ने पर नन्हीं-नन्हीं फुहारें गिरने लगीं। अब उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह कहां जायें, क्योंकि वहां वर्षा से बचने का कोई स्थान नहीं था। चारों ओर जंगल-ही जंगल था और वर्षा तीव्र होने लगी थी। वह वर्षा से बचने के लिए एक सघन वृक्ष के नीचे जा खड़े हुए।

उसी समय भयंकर घन-गर्जन हुआ ओर विद्युत दम-दमाई। विद्युत की उस दमदमाहट में जगतसिंह को एक मठ दिखाई दिया। उसे देखकर उन्होंने सोचा कि वहां पहुंचकर सम्भवतः वर्षा से त्राण प्राप्त हो। इस आशा से उन्होंने अपने घोड़े को मठ की दिशा में बढ़ा दिया ओर कुछ ही क्षण पश्चात् वह उस मठ के द्वार पर जा पहुंचे।

राजकुमार ने मठ से प्रवेश किया तो उनकी दृष्टि एक वृद्ध व्यक्ति पर पड़ी, जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीवार से कमर लगाये बैठा था और रो रहा था। उसकीं आंखें सूजी हुई थी। उसने सिर ऊपर करके राजकुमार की ओर देखा और उठकर खड़ा हो गया।

राजकुमार ने वृद्ध व्यक्ति की ओर बड़े ध्यान से देखकर कहा, महाराज ! मेरा नाम जगतसिंह है। मुझे एक पत्र द्वारा इस वन में एक ब्राह्मण ने बुलाया है। क्या आप ही वह ब्राह्मण हैं, जिन्होंने मुझे बुलाया था, आप रो क्यों रहे हैं ?'

वृद्ध बोला, 'हां युवराज ! मैंने ही आपको स्मरण किया था और जिसके लिए मैंने आपको बुलाया था, उसी के लिए मैं रो रहा हूं।'

'क्या दुर्गेशनन्दिनी नहीं रही महाराज ?'

'लगभग ऐसा ही समझें युवराज ! वह अपने अंतिम श्वांस गिन रही है। उसके बचने की अब कोई आशा प्रतीत नहीं होती। वह बहुत क्षीणकाय हो गई है।'

अभिराम स्वामी की बात सुनकर जगतसिंह संज्ञाविहीन से हो गये। उनकी आंखों के समक्ष वे सब दृश्य नाच उठे, जिन-जिनके मध्य उन्होंने दुर्गेनन्दिनी को देखा था। अन्त में वह दृश्य भी उनके समक्ष आया जब बन्दी-गृह में उन्होंने उसका हृदय विदीर्ण किया था और कटु वचन कहकर उसे अपनामित किया था। वह विह्वल हो उठे। उनका हृदय विदीर्ण हो गया। उन्हें अपने व्यवहार पर हार्दिक खेद हुआ और दुर्गेनन्दिनी की वर्तमान स्थिति का उन्होंने स्वयं को कारण माना।

अभिराज स्वामी बोले, 'जिस दिन विमला ने कतलूखां पठान का वध करके, उससे अपने पति वीरेन्द्रसिंह पर किए गए अत्याचार का बदला लिया, उसी दिन कतलूखां की बेटी आयशा की कृपा से दुर्गेशनन्दिनी मेरे आश्रम में आ गई थी। उसी दिन संध्या को विमला भी लुकती-छिपती आश्रम में आ पहुंची। इनके वहां आने पर वह स्थान निरापद् नहीं रह गया था। इसलिए मैं इन दोनों को साथ लेकर इस मठ में चला आया। यहां आने पर दुर्गेशनन्दिनी रोगग्रस्त हो गई। उसके रोग के कारण कोई बाहरी बीमारी न होकर उसकी आत्मिक पीड़ा है। आओ, मेरे साथ आओ और उसकी दशा देखो। उसमें अब कुछ शेष नहीं रह गया हैं'

राजकुमार जगतसिंह अभिराम स्वामी के साथ चल पड़े। वे दोनों मठ के अन्दर गए। टूटा-फूटा मठ था। उसकी अन्दर की गुम्बद में एक चटाई बिछी थी और उसी पर एक रोगग्रस्त स्त्री पड़ी थी।

दुर्गेशनन्दिनी की यह दशा देखकर जगतसिंह खड़े न रह सके। उनकी आंखों से अश्रुधारा बह चली। वह आगे बढ़कर दुर्गेशनन्दिनी के पास चटाई पर जा बैठे और उन्होंने अपना हाथ दुर्गेशनन्दिनी के मस्तक पर रख दिया। दुर्गेशनन्दिनी का मस्तक जल रहा था।

अभिराम स्वामी बोले, 'दुर्गेश बेटी ! आंखें खोलकर देखो, राजकुमार जगतसिंह आये हैं।'

अभिराम स्वामी के ये शब्द दुर्गेशनन्दिनी के कानों में पड़े तो उसके बदन में कुछ सिहरन सी हुई, मानो प्राणों का संचार हुआ। उसने धीरे-धीरे नेत्र खोलने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयास किया और नेत्र खुल गये। उसकी दृष्टि जगतसिंह पर पड़ी। उस दृष्टि में प्रेम था। तिरस्कार नहीं, सांत्वना थी और जीने की अभिलाषा। दुर्गेशनन्दिनी ने एक बार जगतसिंह की ओर देखकर पलकें झांपलीं, मानो उनकी मनोरम मूर्ति को उसने अपने उर में भर लिया और फिर उसके सीपी जैसे दो नेत्रों से दो आंसू निकलकर बाहर आ गये।

राजकुमार जगतसिंह ने विह्वल होकर दो मोतियों को अपने पोरवों में समेटकर कहा, 'दुर्गेश ! मुझे क्षमा कर दो। मैं तुम्हारा अपराधी हूं।'

राजकुमार जगतसिंह वहीं दुर्गेशनन्दिनी के पास बैठ रहे। अभिराम स्वामी गुम्बद से बाहर चले आए।

राजकुमार जगतसिंह के आ जाने से दुर्गेशनन्नी का रोग धीरे-धीरे समाप्त होने लगा। उसके उपचार के लिए किसी वैद्य या हकीम की आवश्यकता न हुई। उसके रोग की औषधि उसे प्राप्त हो गई थी। सूखती हुई बल्लिरियां पल्लवित होने लगीं। व्याधि धीरे-धीरे समाप्त होती गई। अपने प्राणेश्वर को प्राप्त कर दुर्गेशनन्दिनी के बदन में स्फूर्ति आने लगी। उसमें प्राणों का संचार हुआ।

कुछ दिन में जब दुर्गेशन्दिनी कुछ चलने-फिरने योग्य हुई तो अभिराम स्वामी बोले, 'राजपुत्र ! आज्ञा हो तो अब हम इस मठ को छोड़कर मान्दारण की दिशा में प्रस्थान करें। मान्दारण पर अब पठानों का अधिकार नहीं है। वहां का शासन विमला के आधीन है। मैं चाहता हूं कि वहां चलकर मैं दुर्गेशनन्दिनी को तुम्हें सौंप कर इस ऋण से उऋण हो जाऊं। यह सब मैं दुर्गेशनन्दिनी के हित को ही ध्यान में रखकर किया था और इसी के हितार्थ वीरेन्द्रसिंह ने पठानों का साथ न देकर तुम्हारा साथ दिया, जिसके परिणामस्वरूप उसका वध किया गया।'

राजपुत्र जगतसिंह घोड़े पर सवार होकर निकट की बस्ती में गए और वहां जाकर उन्होंने दुर्गेशनन्दिनी की यात्रा की व्यवस्था के लिए सवारी का प्रबन्ध किया। सवारी का प्रबन्ध करके वह मठ में लौठे।

सवारी की व्यवस्था होने पर मान्दारण पहुंचने में उन्हें अधिक कठिनाई न हुई।

मान्दारण में विमला ने राजकुमार जगतसिंह का भव्य स्वागत किया और उचित समय पर उनके साथ दुर्गेशनन्दिनी के पाणिग्रहण की व्यवस्था की।

इस शुभ विवाह की सूचना जगतसिंह ने कतलूखां की पुत्री आयशा को भी दी और वह समारोह में सम्मिलित हुई। वह अपने छोटे भाई को साथ लेकर मान्दारण आई।

विधिवत पाणिग्रहण-संस्कार सम्पन्न हुआ। आयशा ने उसमें प्रसन्नता-पूर्वक भाग लिया।

जब संस्कार सम्पन्न हो गया तो आयशा दुर्गेशनन्दिनी को एकान्त में लेजाकर बोली, 'बहिन दुर्गेशनन्दिनीं ! मेरा हार्दिक इच्छा पूरी हुई। मैं तुम्हें हृदय से आशीर्वाद देकर जा रही हूं कि तुम्हारा सुहाग बना रहे। तुम्हें जीवन का हर सुख प्राप्त हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब मैं तुमसे विदा चाहती हूं।'

'फिर आपके कब दर्शन होंगे ?'

'इसका अब कोई भरोसा नहीं है बहिन ! भेंट हो भी सकती है और नहीं भी, परन्तु मैं आशा करती हूं कि तुम आयशा को कभी भुलाओगी नहीं।'

'आयशा को भुलाने से युवराज मेरा मुंह न देखेंगे।'

'तुम मेरी चचा युवराज के सामने न करना, स्वीकार करो।'

दुर्गेशनन्दिनी ने स्वीकार किया। आयशा बोली, 'फिर भी भूलना नहीं। अपनी याद के लिए जो चीज देती हूं। उसको स्वीकार करना।' यह कहकर आयशा ने दुर्गेशनन्दिनी को आभूषण पहिनाए।

वह दुर्गेशनन्दिनी से बोली, 'बहिन ! अब मैं चली। भगवान तुम लोगों को दीर्घायु करें।' यह कहते हुए आयशा का गला भर आया।

'तुम रोती क्यों हो बहिन ?' दुर्गेशनन्दिनी ने पूछा।

आयशा तेजी से बाहर निकली और जाकर पालकी में बैठ गई।

■■■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंकिम ग्रंथावली

देवी चौधरानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी चौधरानी

1

'प्रफुल्ल, अरी प्रफुल्ल !'

'आई मां ! अभी आई।'

'क्या है मां ?' बेटी पास आकर बोली।

'घोष के यहां से एक बेंगन ले आ।'

'मैं नहीं जाऊंगी। भीख मांगते मुझसे नहीं बनता।'

'तब क्या खाएगी ? घर में आज कुछ भी नहीं है।'

'रूखा भात खाऊंगी। नित्य मांग कर मैं क्यों खाऊं ?'

'अरी गरीबों को मांगने में लज्जा कैसी ? अपना भाग्य ही ऐसा है।'

प्रफुल्ल ने कोई उत्तर न दिया, मां ने फिर कहा, 'तो तू भात चढ़ा, मैं जाकर ले आती हूं।'

तुम्हें मेरी सौगन्ध मां ? भीख मांगने न जाना। चावल है, नमक है, कच्ची मिर्च है, फिर और हमें क्या चाहिए ?'

प्रफुल्ल की मां मुस्करा दी। वह चावल धोने चली, परन्तु हांडी देखकर बोली, 'चावल भी कहां हैं ? केवल आधी मुट्ठी चावल था, जिससे एक का भी पेट न भरता!'

मां हांड़ी लेकर चली तो प्रफुल्ल ने पूछा, 'कहां जा रही हो मां ?'

'थोड़ा चावल उधार लेने जा रही हूं।' 'हम कितना चावल उधार ले चुके हैं मां? तुम अब उधार न लाओ।'

'तब खाएगी क्या ? घर में तो एक पैसा भी नहीं है जो मोल ले आऊं।' 'उपवास करूंगी।' दुखी मन से प्रफुल्ल बोली।

'उपवास से कितने दिन जिएगी ?'

'मर जाऊंगी और क्या ?'

'मेरे मरने पर जो चाहे करना। मैं यह नहीं देख सकती। मैं भीख मांगकर तुझे खिलाऊंगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भीख मांगना बहुत बुरा है मां ! एक दिन के उपवास से आदमी नहीं मरता। आओ हम दोनों मिलकर यज्ञोपवीत बनाएं। कल उन्हें बेचकर पैसे ले आऊंगी।'

'सूत कहां है ?'

'चरखा तो है। मैं अभी कात लेती हूं।'

'रुई कहां है ?'

प्रफुल्ल मुंह नीचा करके रो पड़ी। मां फिर चावल उधार लाने चली। प्रफुल्ल मां के हाथ से हांडी लेकर बोली, 'मां मैं भीख या उधार मांगकर क्यों खाऊं ? मेरे पास सब कुछ है।'

मां ने आंसू पोंछकर कहा, 'सब कुछ तो तो है बेटी ! पर भाग्य में कहां है ?'

'भाग्य में क्यों नहीं हैं मां ? मैंने क्या अपराध किया है जो ससुर के पास अन्न होते हुए भी मुझे न मिले ?'

'तूने इस अभागी के पेट से जन्म लिया। यही है तेरा अपराध और तेरा भाग्य।'

'सुनो मां ! मैंने निश्चय कर लिया है कि ससुर का अन्न भाग्य में होगा तो खाऊंगी, अन्यथा न खाऊंगी। तुम चाहो खालो पर मुझे मेरी ससुराल पहुंचा दो।'

'यह क्या बेटी ! क्या ऐसा भी हो सकता है ?'

'क्यों नहीं हो सकता मां ?'

'बिना बुलाए ससुराल कैसे भेज दूं ?'

'मांग कर खाया जा सकता है और बिना बुलाए ससुराल नहीं जाया जा सकता?'

'वे तो कभी तुम्हारा नाम भी नहीं लेते।'

'वे न लें। इसमें मेरा अपमान नहीं। जिनके ऊपर मेरा भार है, उनसे मांगने में मुझे लज्जा नहीं। अपना मांगने में लज्जा क्या है ?'

मां रोने लगी। प्रफुल्ल बोली, 'तुम्हें अकेली छोड़कर जाने की मेरी इच्छा नहीं हैं, परन्तु मेरा दुःख कम होने पर तुम्हारा भी दुःख कम होगा, इस आशा से जाने की इच्छा है।'

दोनों में बहुत देर तक बातें हुई। मां ने बेटी का ही कहना ठीक समझा। मां ने जो चावल बनाया था, वह प्रफुल्ल ने खाना स्वीकार नहीं किया। मां ने भी नहीं खाया। प्रफुल्ल बोली, 'समय नष्ट करने में क्या लाभ ? रास्ता लम्बा है।'

'आ, तेरे बाल बांध दूं।'

'नहीं, इन्हें यूं ही रहने दो।'

दोनों मैले पकड़े पहिने ही घर से निकल पड़ीं।

वरेन्द्रभूम में भूतनाथ नामक एक ग्राम था। वहीं प्रफुल्लमुखी की ससुराल थी। प्रफुल्ल के ससुर हरिवल्लभ बाबू बड़े आदमी थे। उनकी बहुत बड़ी जमींदारी थी। दो मंजिल की बैठक थी। चहारदीवारी से घिरा बाग और तालाब था। वह ग्राम प्रफुल्लमुखी के मायके से छः कोस पर था। बिना खाए-पिए मां-बेटी छः कोस पैदल चलकर तीसरे प्रहर वहां पहुंची।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर में प्रवेश करने को प्रफुल्ल की मां के पैर नहीं उठ रहे थे। प्रफुल्ल कंगाल की लड़की थी। इसलिए हरिवल्लभ बाबू उससे घृणा करते थे, यह बात नहीं थी। विवाह के पश्चात् एक गड़बड़ हो गई थी। हरिवल्लभ ने जान-बूझकर यह विवाह किया था। कन्या सुन्दर थी, इसीलिए उन्होंने सम्बन्ध किया था। उधर प्रफुल्ल की मां ने अपना सब कुछ लगाकर यह विवाह किया था। उस विवाह में वह कंगाल हो गई थी। यहां तक कि अन्न का भी अभाव हो गया, परन्तु भाग्य से फल उल्टा ही हुआ। बारातियों को उसने उत्तम भोजन कराया, परन्तु अपने पक्ष वालों को चिउड़ा ही दे सकी। इसे पड़ौसियों ने अपना अपमान समझा। वे बिना खाए ही उठ गए। इससे उन लोगों में मन-मुटाव हो गया। इसका पड़ौसियों ने भयंकर बदला लिया।

रसोई छूने के दिन हरिवल्लभ ने प्रफुल्ल के पड़ौसियों को आमन्त्रित किया। उनमें से कोई न गया और कहला दिया, 'कुल्टा के साथ हरिवल्लभ बाबू ने सम्बन्ध किया है। आपको सब शोभा देता है, परन्तु हम गरीबों की जाति ही सब कुछ है। हम जातिभ्रष्ट कन्या के हाथ का पानी नहीं पी सकते।' भरी सभा में यह बात कही गई। हरिवल्ला ने सोचा, विवाह के दिन जो पड़ौसियों ने प्रफुल्ल के यहां न खाया था, उसका यही कारण होगा। वे झूठ क्यों बोलेंगे ? हरिवल्लभ ने उनका विश्वास कर लिया। निमन्त्रित व्यक्तियों ने नव-वधू के हाथ का स्पर्श किया भोजन न खाया। दूसरे दिन हरिवल्लभ ने वधू को उसके मायके भेज दिया। तभी से प्रफुल्ल का ससुराल से सम्बन्ध टूट गया। उन्होंने अपने पुत्र का दूसरा विवाह कर दिया। प्रफुल्ल की मां ने दो-एक बार कुछ सामान भेजा, परन्तु हरिवल्लभ ने वह वापस करा दिया। इसलिए आज उस घर में प्रवेश करते प्रफुल्ल की मां के पैर कांप रहे थे।

परन्तु अब लौटा भी नहीं जा सकता था। दोनों ने साहस करके घर में प्रवेश किया। गृह-स्वामी अन्तःपुर में सो रहे थे। प्रफुल्ल की सास अपने पके केश चुनवा रही थीं। तभी प्रफुल्ल और उसकी मां वहां पहुंचीं। प्रफुल्ल ने घूंघट खींच लिया। उसकी आयु तब अट्ठारह वर्ष की थी।

गृहिणी ने पूछा, 'तुम कौन हो ?'

प्रफुल्ल की मां लम्बी सांस छोड़कर बोली, 'क्या कहकर परिचय दूं आपको ?'

'क्या परिचय देने में बहुत कुछ बताना होगा ?'

'हम लोग तुम्हारे सम्बन्धी हैं।'

'सम्बन्धी ! कैसे सम्बन्धी ?'

तारा की मां एक मजदूरिन, वहां काम करती थी। वह प्रफुल्ल के घर हो आई थी। वह बोली, मैं पहिचान रही हूं, समधिन है।'

'समधिन ! कौन समधिन ?'

'दुर्गापुर की समधिन। तुम्हारे बड़े लड़के की सास।'

गृहिणी कुछ अप्रसन्न होकर बोली, 'बैठो।'

समधिन बैठी। प्रफुल्ल खड़ी रही। गृहिणी बोली, 'यह लड़की कौन है तुम्हारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ ?'

'आपकी पुत्र-वधु है।'

गृहिणी कुछ देर चुप रही। फिर बोली, 'तुम लोग यहां कहां आई थीं ?'

'आपके पास।'

'क्यों ?'

'क्या मेरी बेटी अपनी ससुराल न आती ?'

'आती क्यों नहीं ? सास-ससुर जब बुलाते, तब आती। भले आदमियों के लड़के-लड़की इसी तरह आते हैं।'

'सास-ससुर यदि सात जन्म बुलाने का नाम लें तब ?'

'यदि नाम न लें तो न आएं।'

'तो खिलाए कौन ? मैं अनाथ विधवा तुम्हारी पुत्र-वधु को कहां से खिलाऊं?'

'खिला नहीं सकतीं, तो पैदा क्यों की थी ?'

'तुमने खाने-पहिनने का हिसाब लगाकर पेट रखा था तो उसी के साथ लड़के की बहू के खाने-पहिनने का हिसाब क्यों नहीं लगाया ?'

'अरे बाप रे ! यह औरत तो घर से संग्राम करने को तैयार होकर आई है।'

'नहीं, संग्राम करने नहीं आई हूं। आपकी बहू अकेली नहीं आ सकती थी, इसीलिए पहुंचाने आई हूं। अब जा रही हूं।'

इतना कहकर प्रफुल्ल की मां घर से निकलकर चली गई। मां चली गई, प्रफुल्ल वहीं रही। वह वैसे ही घूंघट निकाले खड़ी रही। सास बोली, 'तुम्हारी मां गई, तुम भी जाओ।'

प्रफुल्ल हिली तक नहीं। वह प्रस्तर-मूर्ति के समान खड़ी रही।

'अरे तू जाती क्यों नहीं ? खड़ी कैसे रह गई ? क्या मुसीबत है ! फिर तुम्हें पहुंचाने एक आदमी भेजना होगा। अपनी मां के साथ चली जाओ।'

अब प्रफुल्ल ने घूंघट उठाया। चांद की तरह उसका मुख खुला। उसकी आंखों से आंसू बह रहे थे। सास ने मन में सोचा, 'आह ! ऐसी चांद-सी बहू लेकर भी मैं गृहस्थी न चला पाई।' उसका मन कुछ नरम हुआ।

प्रफुल्ल अस्फुट स्वर में बोली, 'मैं अब जाने के लिए नहीं आई हूं मां ।'

'मैं क्या करूं बेटी ? क्या मेरी इच्छा नहीं है कि तुम्हें लेकर गृहस्थी चलाऊं ? परन्तु लोग तरह-तरह की बातें कहते हैं। जातिच्युत होने के भय से तुम्हें छोड़ना पड़ा।'

'मां ! जातिच्युत होने के भय से क्या सन्तान को त्यागा जाता है ? क्या मैं तुम्हारी सन्तान नहीं हूं ?'

प्रफुल्ल की बात सुनकर सास का मन और भी नरम हो गया। वह बोली, 'मैं क्या करूं बेटी ?'

प्रफुल्ल बोली, 'कुछ भी सही आपके घर में कितनी ही दासियां है। मैं आपके यहां दासी बनकर ही रहना चाहती हूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहिणी अब कुछ न कह सकी। वह बोली, 'लड़की तो लक्ष्मी है, रूप में और बातों में भी। गृह-स्वामी से पूछूं, वह क्या कहते हैं ? तुम यहां बैठो बेटी ?' प्रफुल्ल बैठ गई। तभी द्वार की ओट से एक चौदह वर्षीया सुन्दरी ने, जो घूंघट निकाले थी, प्रफुल्ल को बुलाया। प्रफुल्ल ने सोचा, यह कौन है ? वह उठकर उस बालिका के पास चली गई।

2

गृहिणी ने गृह-स्वामी के कक्ष में प्रवेश किया। गृह-स्वामी नींद से उठकर हाथ-मुंह धो रहे थे। उनका मन प्रसन्न करने के लिए गृहिणी बोली, 'तुम्हें किसने जगा दिया? मैंने सबको मना किया, परन्तु कोई सुनता ही नहीं।'

'जगाती तो तुम ही हो। आज शायद कुछ काम है। मुझे किसी ने जगाया नहीं। बात क्या है ?'

गृहिणी हंसती हुई बोली, 'आज एक घटना घटी है, उसे ही कहने आई हूं।' इस प्रकार भूमिका बांधकर और जरा मटककर गृहिणी ने प्रफुल्ल के आने की बात कही। बहू के चांद जैसे मुख और मीठी बातों का स्मरण कर अपनी ओर से भी कुछ कहा, परन्तु कुछ सफलता न मिली।

गृह-स्वामी क्रुद्ध होकर बोले, 'उसका इतना साहस ! उसे अभी झाड़ू मार कर घर से निकाल दो।'

'छिः छिः, कैसी बातें कहते हो ? कुछ भी हो, है तो वह हमारे लड़के की स्त्री। कुल्टा क्या वह लोगों के कहने से हो गई ?'

गृहिणी ने बहुत बातें कीं, परन्तु सब व्यर्थ। 'कुल्टा को झाड़ू मार कर निकाल दो', यही आज्ञा अन्तिम रही। अन्त में गृहिणी क्रुद्ध होकर बोली, 'झाड़ू मारनी है तो तुम्ही मारो। मैं इस बीच में नहीं पड़ूंगी।' यह कहकर वह चली आई। वह जहां प्रफुल्ल को छोड़ गई थी, वह वहां न थी। प्रफुल्ल को चौदह वर्षीया लड़की ने बुला लिया था और प्रफुल्ल के वहां घुसते ही उसने द्वार बन्द कर लिया था।

प्रफुल्ल ने पूछा, द्वार क्यों बन्द कर लिया ?'

'जिससे कोई आने न पाए। तुमसे कुछ बातें करनी हैं।'

'मेरा नाम सागर है ?'

'तुम कौन हो बहिन ?'

'मैं तुम्हारी सौत हूं !'

'तुम मुझे पहिचानती हो क्या ?'

'अभी द्वार की ओट से मैंने सब कुछ सुना है।'

'तुम्हीं हो उनकी गृहिणी ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मैं अभागिन गृहिणी कैसे हो सकती हूं। न मेरे दांत उतने बड़े-बड़े और न मैं उतनी काली ही हूं।'

'किसके दांत बड़े-बड़े हैं ?'

'जो गृहिणी है, और किसके ?

'वह कौन है ?'

'तुम नहीं जानतीं ? जानतीं भी कैसे ? कभी यहां रही ही नहीं। हमारी एक और सौत है।'

'मैंने तो अपने अतिरिक्त एक ही विवाह की बात सुनी थी। मैंने सोचा तुम्ही होगी बस।

'नहीं, वह तो पहिले की है। मेरे विवाह को तो तीन ही वर्ष हुए हैं हैं अभी।'

'क्या वह बहुत भद्दी है ?'

'मुझे उसका रूप देखकर उल्टी आती है।'

'इसीलिए शायद तुमसे विवाह हुआ ?'

'नहीं। किसी से कहना मत, तुम्हें बताती हूं। मेरे बाप के पास बहुत रुपया है। मैं अपने बाप की अकेली सन्तान हूं। उसी रुपए के लिए...।'

'समझी ! अब कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। तुम सुन्दर हो और वह भद्दी, फिर वह उनकी गृहिणी कैसे हुई ?'

'मैं अपने बाप की अकेली सन्तान हूं। मुझे वह जल्दी से यहां भेजते नहीं ! मेरे पिता से हमारे ससुर की पटती भी नहीं है। इसलिए मैं यहां नहीं रहती। कभी-कभी आती हूं। दो-चार दिन हुए आई हूं। शीघ्र ही चली जाऊंगी।'

प्रफुल्ल ने देखा, सागर सरल लड़की थी। उससे बोली, 'तुमने मुझे क्यों बुलाया?'

'कुछ खाओगी ?'

'अब क्या खाऊंगी ?'

'तुम्हारा मुख सुखा है। बहुत दूर से चलकर आई हो। तुम्हें प्यास लगी होगी। किसी ने भी तुमसे खाने को नहीं पूछा। इसलिए मैंने तुम्हें बुलाया है।'

प्रफुल्ल ने कुछ खाया नहीं था। प्यास से ओठ सूख रहे थे। बोली, 'सास जी ससुर जी के पास गई हैं। मेरे भाग्य में क्या है, बिना जाने मैं यहां का कुछ न खाऊंगी।'

'नहीं-नहीं, तुम्हें इन लोगों का कुछ खाने की आवश्यकता नहीं है। खाने के लिए मेरे मायके का है।'

यह कहकर सागर कुछ संदेश लाकर प्रफुल्ल के मुंह में ठूंसने लगी। प्रफुल्ल को कुछ खाना ही पड़ा। सागर ने ठण्डा पानी दिया। उसे पीकर प्रफुल्ल कुछ स्वस्थ हुई। वह बोली, 'मैं तो स्वस्थ हुई, परन्तु मेरी मां बिना खाए मर जाएगी।'

'तुम्हारी मां कहां गई हैं ?'

'क्या जानूं ? शायद कहीं बाहर खड़ी होंगी।'

'एक काम करूं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'क्या ?'

'ठकुरानी को उनके पास भेजूं ?'

'वह कौन है ?'

'ठाकुर की बुआ। वह यहीं रहती हैं।'

'वह क्या करेंगी ?'

'तुम्हारी मां को कुछ खिलाएंगी।'

'मां यहां का कुछ भी न खाएंगी।'

'धत्, किसी ब्राह्मण के घर तो खाएंगी।'

'जो इच्छा हो, करो। मां का कष्ट सहा नहीं जाता।'

सागर ने ब्रह्म ठकुरानी को सब समझाया। वह बोलीं, हां बेटी ! गृहस्थ के घर से कोई भूखा जा सकता है ?' वह उन्हें खोजने चली।

प्रफुल्ल बोली, 'पहिले जो बातें कर रही थीं, वे ही करो बहिन !'

'बातें क्या हैं ? मैं यहां नहीं रहती। रह भी न पाऊंगी। मेरा भाग्य तो मिट्टी के आम जैसा है। देवता का भोग कभी नहीं बनूंगी, तुम आई हो तो जैसे भी हो, रहो। मैं उस चुड़ैल को देख भी नहीं सकती।'

'मैं तो रहने ही आई हूं। रहने पाऊं तब तो ?'

'देखो, ससुर की आज्ञा न भी हो, तब भी तुम चली न जाना।'

'जाऊंगी नहीं तो क्या करूंगी ? किसलिए रहूंगी ? रहूं तो यदि...।'

'यदि क्या ?'

'यदि तुम मेरा जन्म सार्थक करा सको।'

वह कैसे होगा बहिन ?'

प्रफुल्ल थोड़ा हंसी, परन्तु तुरन्त ही आंखों से आंसू गिरने लगे। वह बोली, 'नहीं समझी बहिन '

सागर तब समझी। वह कुछ सोचकर बोलीं, संध्या के बाद इसी कोठरी में आकर बैठना। दिन में तो दर्शन मिलना कठिन है।'

प्रफुल्ल बोली, 'पहिले अपना भविष्य जानूं, तब तुमसे भेंट करूंगी। भाग्य में जो भी हो, एक बार उनसे भेंट करके जाऊंगी। वह क्या कहते हैं, यह भी सुनकर जाऊंगी।' इतना कहकर प्रफुल्ल बाहर आई। सास उसे खोज रही थी। प्रफुल्ल को देखकर सास ने पूछा, 'कहां गई थीं बेटी ?'

'घर द्वार देख रही थी।'

'तुम्हारा ही घर-द्वार है बेटी ! पर क्या करूं, तुम्हारे ससुर किसी भी प्रकार राजी नहीं हो रहे।'

यह सुनकर प्रफुल्ल पर वज्रपात हुआ। वह माथे पर हाथ रखकर बैठ गई। रोई नहीं, चुप रही। सास को उसे पर दया आई। उसने मन में सोचा, 'एक बार और प्रयत्न करके देखूं।' वह बोली, 'अब कहां जाएगी ? आज यहीं रह, सवेरे देखा जाएगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रफुल्ल बोली, 'वह तो रहूंगी, परन्तु एक बात ससुर जी से पूछना। मेरी मां चरखा कातकर पेट भरती है। उससे एक आदमी का भी पूरा नहीं पड़ता। आप पूछना, मैं क्या काम करके खाऊं ? मैं नीच होऊ, तुच्छ होऊं, हूं तो भी उनकी पुत्र-वधु, उनकी पुत्र-वधू कैसे दिन बिताए ?'

'सास बोली, 'अवश्य पूछूंगी ?'

संध्या को उसी कोठरी में सागर और प्रफुल्ल आपस में बातें कर रही थीं कि तभी किसी ने द्वार खटखटाया। सागर बोली, कौन है ?' 'मैं हूं।'

सागर ने प्रफुल्ल का हाथ दबाकर धीरे से कहा, 'बोलना नहीं, वही चुड़ैल आई है।'

'सौत ?'

'हां, चुप।'

'कोठरी में कौन है ? बोलती क्यों नहीं सागर बहू ?'

'तुम कौन हो ? नाईन हो क्या ?

'अरी मर ! मैं क्या नाईन हूं ?'

'फिर कौन हो ?'

'तेरी सौत ! सौत ! नयन बहू।'

बहू का नाम नयनतारा था। लोग नयन बहू कहकर पुकारते थे और सागर को सागर बहू। सागर बोली, 'कौन, दीदी ! भला तुम क्यों नाइन जैसी होने लगी ? वह तो गोरी है।'

'अरी मर भी ! मैं क्या उससे भी काली हूं ? सौत ऐसी ही होती है। अभी चौदह वर्ष की ही है ना।'

'चौदह वर्ष से क्या हुआ ? तुम तो सत्रह की हो। तुमसे अधिक मेरा रूप भी है और यौवन भी।'

'रूप यौवन को बाप के घर बैठकर चाटना। मैं तुमसे एक बात पूछने आई हूं।'

'क्या बात दीदी ?'

'बात क्या कहूं, तूने तो द्वार ही नहीं खोला। संध्या से ही द्वार बन्द करके बैठ गई।'

'मैं छिपकर संदेश खा रही थी। क्या तुम नहीं खातीं ?'

'खा, खा ! मैं पूछती थी कि एक और बढ़ोतरी हुई है क्या ?'

'और एक क्या ? पति ?'

'अरी नहीं ! ऐसा भी क्या कभी होता है ?'

'होता तो भला होता। नया तुम्हें देकर इन्हें अपने साथ ले जाती।'

'अरी ऐसी बात जबान पर भी न लाना।'

'और मन में, क्यों ?'

'जो मन में आए, मुझे कह ले ?'

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साफ-साफ नहीं कहती तो क्या उत्तर दूं बहिन।'

'एक और बहू आई है क्या ?'

'कौन बहू ? किसकी बहू ?'

'वह बहू, मैं जानती हूं।'

'मैंने तो नहीं सुना।'

'वह कुल्टा।'

'मैंने वह भी नहीं सुना।'

'हमारी एक कुल्टा सौत और है, सुना नहीं तूने ?

'नहीं तो।'

'वह जो पहिला विवाह हुआ था।'

'परन्तु वह तो ब्राह्मण की लड़की है।'

'ब्राह्मणी होती तो उसके साथ गृहस्थी न चलती ?'

'अगर पति तुम्हें विदा करके मेरे साथ गृहस्थी चलाएं, तो क्या तुम कुल्टा हो जाओगी ?'

'तू मुझे गाली क्यों देती है री ?'

'तो तुम किसी को गाली क्यों देती हो जी ?'

'अच्छा मैं जाकर ठुकरानी जी से कहती हूं। तू बड़े आदमी की लड़की है, इसलिए मुझसे मनमानी करती है।'

यह कहकर नयनतारा लौट गई। सागर बोलीं, दीदी, लौट आओ, द्वार खोलती हूं। नयनतारा बहुत क्रुद्ध थी, परन्तु यह देखने के लिए कि सागर ने कितने संदेश खाए हैं, लौट पड़ी। पर कोठरी में प्रवेश कर प्रफुल्ल को देखकर बोली, 'यह कौन है री ?'

'प्रफुल्ल।'

'प्रफुल्ल कौन ?'

'कुल्टा बहू।'

'अरे ! यह तो बड़ी सुन्दर है।'

'परन्तु तुमसे अधिक नहीं है।'

'चुप, तंग न कर। हां, तुझसे अधिक वास्तव में नहीं है।'

3

एक प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर गृह-स्वामी भोजन करने आए। गृहिणी भोजन कराने बैठी।

गृह-स्वामी ने पूछा, 'वह कुल्टा बहू गई क्या ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहिणी बोली, 'रात को कहां जाती ? क्या रात को मैं अपनी अतिथि बहू को भगा देती ?'

'अतिथि को अतिथिशाला में जाना चाहिए ?

'मैंने कह दिया, मैं न भगा सकूंगी। भगाना हो तो तुम्हीं भगाओं, परन्तु बहू है बहुत सुन्दर।'

'सुन्दर भी कुल्टा ही होती है। खैर, मैं ही भगा दूंगा। ब्रज को बुलाओ।'

एक नौकरानी ब्रजेशवर को बुला लाई। सुन्दर युवक था। वह पिता के पास विनीत भाव से आया।

हरिवल्लभ बोले, 'तुम्हारी तीन शादियां हुई हैं, जानते हो ?'

प्रथम विवाह एक बाग्दी (छोटी जाति) की लड़की से हुआ था ? फिर भी वह आज आई है। मैंने तुम्हारी मां से कहा, उसे झाड़ू मार कर बाहर कर दो, परन्तु यह औरतों पर हाथ नहीं उठा सकतीं ? यह तुम्हारा काम है। और कोई उसे स्पर्श नहीं कर सकता। तुम रात को मारकर घर से निकाल देना, नहीं तो मुझे चैन न पड़ेगी।'

गृहिणी बोली, 'नहीं बेटा ! स्त्री पर हाथ न उठाना। पिता की बात माननी पड़ेगी तो क्या मां की बात न सुनेगा ? खैर, जो हो, भली तरह विदा करना।'

ब्रज पिता से बोले, 'जो आज्ञा' और मां से 'अच्छा' कहकर खड़ा रहा। तभी गृहिणी ने अपने पति से पूछा, 'तुम जो बहू को निकाल रहे हो, तो वह खाएगी क्या?'

'जो चाहे करे, चोरी, डकैती, भीख मांगे, मुझे क्या ?'

गृहिणी ब्रजेश्वर से बोली, 'सुना तूने। बहू से यह बात भी कह देना, उसने पूछा। इससे तुम्हारे पिता की नाक रह जाएगी।'

ब्रजेश्वर वहां से ब्रह्म ठकुरानी के पास पहुंचा। वह माला जप रही थीं। ब्रजेश्वर बोला, 'दादी !'

'क्या है भाई ?'

'आज एक नई खबर है ?'

'नई खबर ? सागर ने मेरा चर्खा तोड़ दिया ? वह अभी बच्ची है, तोड़ देने दो। उसे चर्खा कातने का शौक तो हुआ।'

'यह नहीं। मैं कहता हूं आज...

'सागर से कुछ न कहना। तुम सुखी रहो। मुझे चर्खे की यहां क्या कमी है ?'

'तुम मेरी बात भी सुनोगी या अपनी ही कहती रहोगी।'

'मैं बूढ़ी हूं, कब तक जीऊंगी, खैर जाने दो...'

'मेरी बात सुनो, 'नहीं तो तुम्हारे सब चर्खे तोड़ दूंगा।'

'क्या ? तो खर्चे की बात नहीं है क्या ?'

'नहीं ! मेरी दो ब्राह्मणी हैं, जानती हो ना ?'

'ब्राह्मणी ! जैसी नयन बहू है, वैसी ही सागर बहू है। मैं और कहानी कहां से कहूं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अरे कहानी रहने दो... ।'

'तुमने तो कह दिया रहने दो, पर वे कहां छोड़ती हैं। वह कबूतर कबूतरी की कहानी जानते हो। लो, कहानी सुनो। एक पेड़ पर एक कबूतर-कबूतर रहते थे... ।'

'दादी क्या करती हो तुम ? मेरी बात सुनो।

'तुम्हारी बात क्या है ? तुम कहानी सुनने आए हो ना। तुम लोगों को कोई और काम तो है नहीं।'

ब्रजेश्वर ने सोचा, बूढ़ी को पता नहीं कब प्रभु की प्राप्ति होगी। वह बोला, 'मेरी दो ब्राह्मणी हैं और एक बाग्दिन। वह बाग्दिन आज यहां आई है ?'

'राम, राम, बाग्दिन क्यों ? वह तो ब्राह्मण की लड़की है।'

'आई है न वह ?'

'हां आई क्यों नहीं है ?'

'वह कहां है ? मैं उससे भेंट करूंगा।'

भेंट कराकर मैं तुम्हारे मां-बाप की बुरी क्यों बनूं ? तुम कबूतर-कबूतरी की कहानी सुनो।'

'भेंट की बात नहीं है। मां-बाप ने मुझसे उसे भगा देने को कहा है। भेंट हुए बिना उसे कैसे भगाऊं ? इसीलिए तुम्हारे पास आया हूं।'

'भाई, मैं बुढ़िया, कृष्ण नाम जपती हूं। कहानी सुनो तो कह सकती हूं। मैं न बाग्दी को जानूं, न ब्राह्मण को।'

'हाय ! तुम्हें कब डाकू उठाकर ले जाएंगे ?'

'ऐसी बात न कह। डाकू बड़े भयानक होते हैं। भेंट करेगा ?'

'तो क्या मैं तुम्हारी माला देखने आया हूं ?'

'तो सागर बहू के पास जा।'

'सौत सौत से मिलने देगी !

'जा, सागर ने तुझे बुलाया है। कोठरी में बैठी है। ऐसी लड़कियां बहुत नहीं हैं।

ब्रजेश्वर ब्रह्मा ठकुरानी के यहां से सीधा सागर के ऊपर वाले कमरे में गया। वहां सागर के स्थान पर प्रफुल्ल बैठी थी। ब्रज ने अनुमान से समझा कि वह वही स्त्री थी।

ब्रजेश्वर संकट में पड़ा। दोनों का स्त्री-पुरुष, एक दूसरे के अर्धांग, का सम्बन्ध था। यह सभी सम्बन्धों में घनिष्ठतर होता है। उन्होंने एक दूसरे को कभी देखा न था। अब कैसे बातें शुरू करें और पहिले कौन बोले, और जब उनमें से एक दूसरे को धक्का देकर घर से बाहर करने और दूसरा धक्का खाने के लिए आया था।

पहिले दोनों में से किसी ने कुछ न कहा। अन्त में प्रफुल्ल ने तनिक मुस्कुराकर ब्रजेश्वर के चरणों में प्रणाम किया।

ब्रजेश्वर ने प्रणाम स्वीकार कर प्रफुल्ल की बांह पकड़कर उसे ऊपर उठा लिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पलंग पर बैठाकर स्वयं उसके निकट बैठ गया।

प्रफुल्ल के मुख का घूंघट बैठते समय हट गया। ब्रजेश्वर ने देखा वह रो रही थी। ब्रजेश्वर ने बिना समझे-बूझे ही प्यार से प्रफुल्ल का मुख चूम लिया। तभी द्वार के अन्दर से एक मुख दिखाई दिया। मुख हंस रहा था। ब्रजेश्वर ने उधर घूमकर देखो, वह सागर थी। सागर ने स्वामी को एक ताला, एक चाबी दिखाए। सागर पति से अधिक बातें न करती थी। ब्रज कुछ समझे नहीं। सागर द्वार खींचकर ताला लगाकर भाग गई।

ब्रजेश्वर बोले, 'सागर क्या करती हो ? परन्तु वह जा चुकी थी। वह ब्र ठकुरानी के घर पहुंची।

ब्रह्म ठकुरानी ने पूछा, 'क्या हुआ सागर बहू ? तुम आज यहां क्यों सोने आई हो ?' सागर चुप रही।

'तुम्हें ब्रज ने भगा दिया है क्या ?'

'न भगाते तो तुम्हारे पास क्यों आती ? आज मैं यहीं सोऊंगी।'

'अच्छा सो। अभी वह खुद तुझे बुलाएगा। आह ! तेरे दादा भी इस तरह मुझे भगा दिया करते थे और फिर तुरन्त बुलाने आते थे। मैं क्रोध में नहीं जाती थी। फिर रह भी नहीं सकती थी। एक दिन क्या हुआ कि...।'

'दादी, एक कहानी कहो।'

'कौन सी कहूं, कबूतर-कबूतरी की ? अकेली सुनेगी ? वह नई बहू कहां है ? उसे भी बुला ला। दोनों सुनना।'

'वह पता नहीं कहां है। मैं उसे कहां खोजने जाऊंगी। मैं अकेली ही सुनूंगी।'

ब्रह्म ठकुरानी कहानी कहने लगीं। सागर सो गई। ठकुरानी कुछ देर कहानी कहती रही, फिर सागर के सो जाने पर वह भी सो गई।

सवेरे सागर ने ताला खोला। ताला खोलकर वह चुपचाप फिर ठकुरानी का टूटा चरखा लेकर बुढ़िया के कान के पास चलाने लगी।

ताला खुलने का स्वर सुनकर प्रफुल्ल उठ खड़ी हुई बोली, 'सागर ताला खोल गई, अब मैं जाती हूं। स्त्री न समझो तो दासी समझकर ही याद रखना।'

'अभी मत जाना, मैं एक बार पिताजी से बातें कर लूं।

'क्या वह अपनी राय बदल देंगे ?'

'न बदलें, मुझे अपना कर्तव्य करना ही होगा। अकारण तुम्हारा त्याग करने में मुझे पाप लगता है।'

'तुमने तो मेरा त्याग नहीं किया। तुमने तो ग्रहण ही किया है। मुझे अपनी शय्या पर स्थान दिया, यही मेरे लिए सब कुछ है। मैं प्रार्थना करती हूं कि मुझ दुखिया के लिए पिता से विवाद न करना। इससे मुझे सुख प्राप्त न होगा।'

'फिर भी तुम्हारे भरण-पोषण का प्रबन्ध तो उन्हें करना ही चाहिए।'

'जब उन्होंने मुझे त्याग दिया तो मैं उनसे भिक्षा न लूंगी। तुम्हारा निजी कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो तो मैं ले सकती हूं।'

'मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। केवल यह अंगूठी है। इसे ले जाओ और बेचकर अपना काम चलाना। मैं कुछ कमाने की चेष्टा करूंगा। मैं तुम्हारे भरण-पोषण का वचन देता हूं।'

ब्रजेश्वर ने अंगूठी प्रफुल्ल को दे दी। प्रफुल्ल ने अंगूठी पहिनकर पूछा, 'यदि तुम मुझे भूल गए तब ?'

'मैं अन्य सबको भूल सकता हूं, तुम्हें कभी न भूलूंगा।'

'आज के बाद यदि पहिचान न सके तो ?'

'यह मुख मुझे कभी न भूलेगा।'

'मैं यह अंगूठी बेचूंगी नहीं। भूखी मरती हूंगी, तब भी नहीं। जब तुम मुझे न पहिचानोगे तब तुम्हें यह अंगूठी दिखाऊंगी। इस पर क्या लिखा है।'

'मेरा नाम।'

दोनों रोते-रोते एक दूसरे से विदा हुए।

नीचे आने पर प्रफुल्ल की भेंट सागर और नयन से हुई। नयनतारा बोली, 'दीदी कल रात कहां सोई ?'

'तीर्थ करके क्या कोई मुंह से कहता फिरता है ?'

'तुम्हारा मतलब ?'

सागर बोली, 'समझी नहीं,। कल यह मुझे भगाकर लक्ष्मी बन बैठीं और देखती हो उन्होंने इन्हें उपहार में यह अंगूठी दी है।'

अंगूठी देखकर नयन डाह से जल उठी। वह बोलीं, 'दीदी ! ससुर ने तुम्हारे प्रश्न का क्या उत्तर दिया, जानती हो ?'

प्रफुल्ल ब्रजेश्वर से आदर पाकर यह बात भूल गई थी। उसने पूछा, 'किस प्रश्न का उत्तर ?'

'तुमने पूछा था ना, तुम कैसे खाओगी ?' उन्होंने कहा है कि चोरी, डकैती करके खाने को कहं दो।'

'देखा जाएगा।' कहकर प्रफुल्ल विदा हुई। बिना किसी से बात किए प्रफुल्ल चल दी। सागर द्वार तक उसके पीछे-पीछे गई। द्वार पर प्रफुल्ल ने कहा, 'आज जा रही हूं बहिन ! अब इस घर में पैर न रखूंगी। तुम जब अपने पिता के यहां जाओगी तो तुमसे वहीं आकर भेंट करूंगी।'

'तुम मेरे पिता का घर जानती हो ?'

'जान लूंगी ?'

'तुम वहां आओगी ?'

'मुझे अब लज्जा किसकी है ?'

'तुम्हारी मां तुमसे मिलने को खड़ी हैं।'

बागीचे के बाहर प्रफुल्ल की मां खड़ी थी। प्रफुल्ल उसके पास चली गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4

प्रफुल्ल और उसकी मां अपने घर लौट गई। प्रफुल्ल की मां को बड़ा कष्ट हुआ। उसे ज्वर आ गया। औषधि का उचित प्रबन्ध न होने से ज्वर बढ़ता ही गया। फिर भी दोनों समय स्नान चलता रहा। कभी मिल जाने पर कुछ रुख-सूखा खा लिया। अन्त में खाट पकड़ ली। ज्वर ने भयंकर रूप धारण कर लिया और अन्त में उसका प्राणान्त हो गया। पड़ोस के उन्हीं व्यक्तियों ने, जिन्होंने उसकी बदनामी की थी, उसका दाह-संस्कार किया।

अब प्रफुल्ल अकेली रह गई। लोगों ने कहा, 'तुम्हें अपनी मां का श्राद्ध करना होगा।'

प्रफुल्ल बोली, 'इच्छा तो है, परन्तु रुपया नहीं है ?'

मुहल्ले वाले बोले, 'तुम उसकी चिन्ता न करो, हम सब कर लेंगे।'

श्राद्ध की तैयारी हुई।

एक पड़ौसी बोला, 'मैं सोच रहा हूं कि श्राद्ध में तुम्हारे ससुर को भी बुलाया जाए।'

'कौन बुलाने जाएगा ?'

एक दो प्रतिष्ठित व्यक्ति उन्हें बुलाने को अग्रसर हुए। प्रफुल्ल बोली, 'तुम्हीं लोगों ने तो झूठी बात कहकर मेरा यह घर छुड़वाया था और तुम ही अब उन्हें बुलाने जाओगे। आखिर क्या मुंह लेकर तुम उन्हें बुलाने जाओगे ?'

वे बोले, 'वह अब भूल जाओ। हम लोग सब ठीक कर लेंगे। अब तुम अनाथ हो। तुम्हारे साथ हमारी कोई शत्रुता नहीं है।'

प्रफुल्ल उद्यत हो गई। वे दोनों हरिवल्लभ को निमंत्रण देने गए। हरिवल्लभ बोले, 'क्यों ठाकुर ! तुम्ही लोगों ने तो समधिन को जातिच्युत किया था। अब तुम्ही मुझे बुलाने आए हो ?'

'आप भी क्या बात करते हैं ? अरे पड़ौसियों में तो ऐसा झगड़ा चलता ही रहता है। उस बात में क्या कोई तथ्य था ?'

हरिवल्लभ ने सोचा, 'यह सब धोखा है। इन लोगों ने उसे लड़की से कुछ रुपया खाया है, परन्तु उसने रुपया पाया कहां से ?' हरिवल्लभ ने निमंत्रण की बात का ध्यान नहीं दिया। उनका हृदय प्रफुल्ल की ओर से और भी कठोर हो गया।

पड़ौसी हारकर लौट गए। प्रफुल्ल ने यथा रीति श्राद्ध करके पड़ौसियों की सहायता से ब्राह्मणों के भोजन का प्रबन्ध किया।

ब्रजेश्वर ने यह सुनकर सोचा, एक रात के लिए, छिपकर वहां जाए और प्रफुल्ल को देखकर रातों रात लौट आए।

फूलमणि नाइन का घर प्रफुल्ल के घर के ही पास था। मां की मृत्यु के बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूलमणि से प्रफुल्ल ने अपने घर सोने को कहा। फूलमणि विधवा थी। उस पर प्रफुल्ल की मां के उपकार भी थे। फूलमणि ने प्रफुल्ल का कहना स्वीकार कर लिया। प्रफुल्ल की मां के मरने के दिन से ही फूलमणि रात को प्रफुल्ल के पास सोने लगी।

फूलमणि के चालचलन को प्रफुल्ल नहीं जानती थी। फूलमणि प्रफुल्ल से दस वर्ष बड़ी थी। वह देखने-सुनने में बुरी न थी, परन्तु कपड़े-लत्ते जरा चटक-मटक के पहिनती थी। निम्न श्रेणी की स्त्री, दूसरे बाल विधवा, सो चरित्र शुद्ध नहीं रख सकी। प्राण चौधरी गांव के जमींदार थे। उनका कारिन्दा दुर्लभ चक्रवर्ती गांव में कचहरी करता था। फूलमणि पर उनकी विशेष कृपा थी। यह सब प्रफुल्ल ने न सुना हो, सो बात नहीं, परन्तु और कौन अपना घर-द्वार छोड़कर उसके पास आकर सोता। प्रफुल्ल ने सोचा, 'वह अच्छी हो या बुरी, मैं बुरी नहीं हूं तो कोई मेरा क्या कर लेगा?'

श्राद्ध के दूसरे दिन फूलमणि कुछ देर से आ रही थी। रास्ते में एक आम की बगिया थी। फूलमणि ने पेड़ के नीचे एक पुरुष खड़ा देखा। वह दुर्लभ था।

चक्रवर्ती महाशय ने फूलमणि से पूछा, 'क्यों, आज कैसा रहेगा ?'

'हां, आज ही ठीक है। तुम दो प्रहर रात गए पालकी लेकर आना। द्वार पर धीरे से दस्तक देना। मैं द्वार खोल दूंगी, परन्तु देखना, गोल-न होने पाए।'

'तुम डरो मत। वह शोर तो नहीं करेगी !'

'मैं धीरे से द्वार खोल दूंगी। उसके सोते ही मैं उसका मुंह कपड़े से बांध दूंगी। फिर कैसे चिल्लाएगी ?'

'इस प्रकार ले जाने से कितने दिन रहेगी ?'

'एक बार ले जाने पर सब ठीक हो जाएगा। जिसका कोई है नहीं, जिसको अन्न के भी लाले हैं, वह खाने को पाएगी, कपड़ा पाएगी, रुपया पाएगी, सुहाग पाएगी, रहेगी क्यों नहीं ? यह जिम्मा मेरा रहा। मुझे रुपये और गहने मिलने चाहिए।' दुर्लभ 'हां' करके चला गया। फूलमणि प्रफुल्ल के यहां गई। प्रफुल्ल को इस सर्वनाश की खबर न थी। वह अपनी मां के विषय में सोचती-सोचती सो गई।

दो प्रहर रात गए दुर्लभ ने द्वार पर दस्तक दी। फूलमणि ने द्वार खोल दिया। दुर्लभ ने प्रफुल्ल का मुंह बांधकर उसे पालकी में डाल दिया। कहार पालकी उठाकर प्राण बाबू के बिहार-मन्दिर की ओर चल पड़े।

आधा घण्टा पश्चात् ब्रजेश्वर वहां प्रफुल्ल को खोजने पहुंचा। वह सबसे छिपकर रात में आया था। उसे वहां कोई न मिला। लाचार होकर वह लौट गया।

प्रफुल्ल की पालकी के कहार डाकुओं के भय से चुप थे। शोर-गुल के भय से पालकी के साथ अधिक लोग नहीं थे, केवल दुर्लभ और फूलमणि ही थे।

मार्ग में बड़ा भारी जंगल था। कहारों को सामने दो आदमी दिखाई दिए। कहारों को लगा, मानो साक्षात् यम चले आ रहे थे।

एक बोला, 'मुझे संदेह है कि ये दोनों डाकू हैं ?'

दूसरा बोला, 'रात में क्या भले आदमी घूमते हैं ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आदमी बलवान मालूम होते हैं।'

'उनके हाथों में शायद लाठियां भी हैं ?'

'चक्रवर्ती महाशय क्या कहते हैं ? पांव नहीं उठते। डाकुओं के हाथों आज जान गई।

चक्रवर्ती बोला, 'वही तो ! मैं जिस बात से डर रहा था, वही हुआ।'

उन दोनों व्यक्तियों ने आवाज दी, 'कौन है रे ?'

कहार पालकी छोड़कर 'बाप रे' कहकर जंगल में भागे। दुर्लभ चक्रवर्ती भी भागा। फूलमणि बोली, 'मुझे छोड़कर कहां जाते हो ?' वह चिल्लाती हुई उसके पीछे दौड़ी।

जिन दो व्यक्तियों से ये डरकर भागे थे, वे दीनाजपुर की कचहरी में नौकरी की खोज में जा रहे थे। सवेरा निकट देखकर वे चल पड़े थे। कहारों को भागते देखकर वे खूब हंसे और फिर अपने रास्ते पर चले गए, परन्तु कहारों और चक्रवर्ती महाशय या फूलमणि ने फिर पलटकर भी नहीं देखा।

प्रफुल्ल ने पहिले ही अपने हाथ-मुंह खोल दिए थे। प्रफुल्ल कुछ देर हतबुद्धि रही परन्तु फिर उसने सोचा कि बिना साहस के न चलेगा। उसने धीरे-धीरे पालकी का द्वार खोला। उसने देखा, दो आदमी आ रहे थे। फिर वे दोनों चले गए। तब प्रफुल्ल बाहर निकली। उसने देखा, वहां कोई नहीं था।

प्रफुल्ल ने सोचा कि उसे चुराकर ले जाने वाले वहां लौटेंगे। इसलिए जंगल में छिप जाए। सवेरा होने पर जो होगा, देखा जाएगा। यह सोचकर वह जंगल में घुसी और कुछ देर में सवेरा हो गया।

सवेरा होने पर प्रफुल्ल जंगल में इधर-उधर घूमने लगी। उसने देखा, एक पगडण्डी थी, प्रफुल्ल पगडण्डी पर चल पडी।

पगडण्डी पर प्रफुल्ल काफी दूर निकल गई। परन्तु ग्राम का कोई चिह्न नहीं मिला। फिर पगडण्डी भी लुप्त हो गई। आगे रास्ता नहीं था। चलते-चलते प्रफुल्ल ने देखा कि घोर जंगल में एक खंडहर था। प्रफुल्ल ने ईटों के ढेर पर चढ़कर देखा, वहां दो-एक कोठरियां भी थीं। उसने सोचा, शायद वहां कोई मनुष्य हो। प्रफुल्ल ने खण्डहर में प्रवेश किया, तो द्वार खुला था। प्रफुल्ल ने किसी वृद्ध के कराहने का शब्द सुना। प्रफुल्ल उसके पास गई। वृद्ध के ओंठ सूखे थे और आंखें गढ़ों में धंस गई थीं।

वृद्ध ने पूछा, 'तुम कौन हो बेटी ? क्या कोई देवी हो तुम ? मृत्यु के समय मेरा उद्धार करने आई हो ?'

प्रफुल्ल बोली, 'मैं अनाथ हूं। रास्ता भूलकर इधर आ निकली हूं। देखती हूं तुम भी अनाथ हो। क्या मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकती हूं ?'

'बहुत सहायता कर सकती हो बेटी ! मुरली वाले की जय। थोड़ा पानी पिलाओ बेटी !'

प्रफुल्ल ने थोड़ा पानी लाकर वृद्ध को पिलाया।

पानी पीकर वृद्ध कुछ स्वस्थ हुआ। प्रफुल्ल को जंगल में वृद्ध को देखकर कौतहूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ। वह अधिक बोल नहीं सकता था, इसलिए वह उसका परिचय न पा सकी। फिर भी वृद्ध ने कुछ बताया कि वह वृद्ध वैष्णव था और उसका अन्य कोई नहीं था। एक वैष्णवी थी, जो उसे मरता देख, उसका सब कुछ लेकर चम्पत हो गई। उसने प्रफुल्ल से प्रार्थना की, 'मुझे मरने पर घसीटकर समाधि में डाल देना।'

प्रफुल्ल ने स्वीकार कर लिया। तब वृद्ध बोला, 'यहां मेरा कुछ रुपया गड़ा है। उसे वैष्णवी नहीं जानती थी। जानती तो उसे भी ले जाती। यह रुपया यदि बिना किसी को दिए मर जाऊंगा तो मेरी आत्मा यहीं मंडराती रहेगी और मेरी मुक्ति न होगी। यह रुपया वैष्णवी को ही देता, परन्तु वह दुष्ट स्त्री भाग गई। अब वह तुम्हें दिए जाता हूं। बिछावन के नीचे एक तख्ता है, उसे उठाना। उसके नीचे एक सुरंग मिलेगी। सीढ़ी से नीचे उतरना, डरना नहीं, रोशनी ले जाना। नीचे एक कोठरी है। उसकी खिड़की में तुम्हें रुपया मिलेगा।

प्रफुल्ल वृद्ध की सेवा करती रही। वृद्ध बोला, 'गौशाला में एक गाय है। दूध दूह सको तो दूह लाओ।' प्रफुल्ल ने वही किया जो वृद्ध ने उससे कहा।

तीसरे प्रहर वृद्ध का प्राणान्त हो गया। प्रफुल्ल ने उसे लेजाकर समाधि में लिटाकर ऊपर मिट्टी डाल दी। फिर पास के कुएं पर स्नान कर आधी धोती पहिनी और आधी सुखा ली तब वह फरसा-कुदाल लेकर वृद्ध के रुपए की खोज में चली। वृद्ध उसे रुपया दे गया था, इसलिए उसे लेने में कोई दोष नहीं था।

प्रफुल्ल ने तख्ता उठाया। उसके नीचे एक गढ़ा दिखाई दिया, उसमें उतरने की सीढ़ी थी।

प्रफुल्ल को चमक, सलाई इत्यादि सब कुछ मिल गया। वह गोशाला से कुछ फूंस ले आई और उसे जलाकर सीढ़ी से उतरने लगी। फरसा-कुदाल उसने पहिले ही नीचे फेंक दिए थे। नीचे एक कोठरी थी उसने फूंस जलाया। कोठरी में प्रकाश हो गया था। प्रफुल्ल बताए हुए स्थान पर खोदने लगी। खोदते-खोदते 'ठन्' से आवाज हुई।

प्रफुल्ल को वहां पर्याप्त धन मिला। धन के घड़ों को अच्छी तरह गाड़कर वह बाहर आकर सो गई। पुआल के बिछावन पर पड़ते ही उसे नींद आ गई।

5

डाकुओं के भय से फूलमणि दौड़ती हुई दुर्लभ के पीछे-पीछे भागी थी, परन्तु दुर्लभ को अपने प्राणों की पड़ी थी। वह फूलमणि की क्या चिन्ता करता ? फूलमणि जितनी चिल्लाती थी, उतना ही दुर्लभ और तेज भागता था। कांटों के जंगल में दुर्लभ दौड़ा तो उसकी धोती ढीली हो गई और एक कीचड़ में फंस गया। फूलमणि चिल्लाई, 'अरे नीच ! एक स्त्री को जंगल में लाया और अब डाकुओं को सौंपकर भाग रहा है।' यह सुनकर दुर्लभ और जोरों से भागा। हारकर फूलमणि रोने और दुर्लभ को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाली देने लगी।

कुछ देर में फूलमणि ने देखा, वहां न तो डाकू थे और न ही दुर्लभ। कुछ देर सोचकर वह जंगल से बाहर निकल आई। पालकी खाली थी। वहां किसी को न पाकर वह घर ओर चल पड़ी।

दिन निकलने पर वह घर पहुंची। फूलमणि चुपचाप द्वार बन्द करके सो रही। उसकी बहिन ने आकर उसे जगाया और पूछा, 'क्यों री, तू अभी आई है क्या ?'

'क्यों , मैं गई कहां थी ?'

'जाएगी कहां ? ब्राह्मण के घर गई थी। इतनी देर में क्यों लौटी, मैं यह पूछ रही हूं।'

'तू तो अंधी है। सवेरे तेरे सामने यहां आकर सोई थी। तूने देखा नहीं था क्या?'

'मैं सवेरे से तीन बार ब्राह्मण के घर जाकर देख आई हूं। वहां कोई न मिला। बता प्रफुल्ल कहां है ?'

'चुप, दीदी चुप ! वह सब मत पूछ।'

'क्यों, हुआ क्या ?'

'हमें ब्राह्मण देवताओं के कामों से क्या मतलब ?'

'यह क्या कह रही है तू ?'

'किसी से कहना मत, कल उसक मां आकर उसे ले गई।

'ऐं ! उसकी मां आकर उसे ले गई !'

फूलमणि ने एक कहानी गढ़ी कि प्रफुल्ल के बिछावन पर उसने उसकी मां को देखा था। फिर कमरे में आंधी उठी। फिर वहां कोई दिखाई न दिया। उसने अपनी बहिन से मना कर दिया कि वह यह सब किसी न कहे।

उधर सवेरे उठकर प्रफुल्ल से सोचा कि अब वह कहां जाए ? सोचा, घर लौट जाए, परन्तु वहां से डाकू फिर उठा ले जाएंगे। और वह धन कैसे ले जाए ? लोगों से उठवाकर ले गई तो बात फैलेगी। बहुत कुछ सोचकर प्रफुल्ल ने वहीं रहने का निश्चय किया। उसके लिए दुर्गापुर और जंगल में कोई अन्तर न था।

यह निश्चय कर प्रफुल्ल घर के काम पर जुट गई। घर में झाड़ू लगाई। फिर रसोई बनाने का प्रबन्ध करने लगी, परन्तु बनाए क्या ? हांडी में चावल, दाल, वहां कुछ भी न था।

प्रफुल्ल एक मोहर लेकर बाजार की खोज में निकली। प्रफुल्ल बड़ी साहसी लड़की थी। एक एक पगडण्डी पर चल पड़ी। जंगल में उसकी एक ब्राह्मण से भेंट हुई। ब्राह्मण रामनामी ओढ़े था। उसके मस्तक पर तिलक था। वह प्रफुल्ल को देखकर बोला, 'कहां जाओगी मां ?'

'मैं बाजार जाऊंगी।'

'इधर बाजार का मार्ग कहां है ?'

'तब फिर किधर है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुम कहां से आ रही हो ?'

'इसी जंगल से।'

'इस जंगल में ही तुम्हारा घर है ?'

'हां।'

'फिर भी तुम बाजार का रास्ता नहीं जानतीं ?'

'मैं नई आई हूं।'

'इस जंगल में स्वयं तो कोई आता नहीं, तुम कैसे आईं ?'

'आप मुझे बाजार का रास्ता बता दीजिए।'

'बाजार जाने में एक प्रहर लगेगा। तुम अकेली न जा पाओगी। चोर-डाकुओं का भय रहता है। तुम्हारा और कौन है ?'

'कोई नहीं।

ब्राह्मण कुछ देर प्रफुल्ल का मुख देखकर बोला, 'तुम अकेली बाजार मत जाओ, विपत्ति में पड़ोगी। यहां मेरी एक दुकान है। यदि इच्छा हो तो वहां से चावल-दाल खरीद लो।'

प्रफुल्ल बोली, 'ठीक है, परन्तु आप तो पंडित मालूम देते हैं।'

'पंडित अनेक प्रकार के होते हैं। तुम मेरे साथ आओ मां !'

ब्राह्मण प्रफुल्ल को अपने साथ लेकर घने जंगल में ले गया। प्रफुल्ल डरी। तभी सामने एक कुटी दिखाई दी। कुटी का ताला बन्द था। ब्राह्मण ने ताला खोला। प्रफुल्ल ने देखा, दुकान नहीं थी, फिर भी हांडी भर चावल, दाल, नून, तेल थे। ब्राह्मण बोला, 'तुम जितना ले जा सको, ले जाओ।'

प्रफुल्ल आवश्यतानुसार लेकर बोली, 'इनका दाम कितना हुआ ?'

'एक आना।'

'एक आना तो मेरे पास नहीं है।'

'रुपया है ? लाओ बाकी पैसे वापस कर दूंगा।'

'मेरे पास रुपया भी नहीं है।'

'तब बाजार क्या लेकर जा रही थीं ?'

'एक मोहर है।'

'देखूं।'

प्रफुल्ल ने मोहर दिखलाई। ब्राह्मण ने देखकर लौटा दी। वह बोला, 'मोहर भुनाने लायक रुपये मेरे पास नहीं हैं। चलो, तुम्हारे साथ तुम्हारे घर चलूं, मुझे पैसे दे देना।'

'मेरे घर में भी पैसा नहीं है।'

'तो सभी मोहरें हैं ! खैर चलो देख आऊं। जब पैसा होगा, तब देना, मैं जाकर ले आऊंगा।'

'सभी मोहरें हैं' यह बात प्रफुल्ल को भली न लगी। उसने समझा कि यह चतुर ब्राह्मण समझ गया कि उसके पास बहुत मोहरें हैं। इसीलिए यह उसका घर देखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाना चाहता है। प्रफुल्ल सब चीजें वहीं रखकर बोली, 'मुझे बाजार ही जाना होगा। कुछ कपड़ों की भी आवश्यता है।'

ब्राह्मण हंसकर बोला, 'मां ! सोचती हो तुम्हारा घर देखकर मैं तुम्हारी मोहरें चुरा लूंगा। क्या बाजार जाकर मुझसे बच पाओगी ? मैं पीछा न छोड़ूंगा तो क्या करोगी ?'

प्रफुल्ल कांपने लगी।

ब्राह्मण बोला, 'मैं तुम्हारे साथ छल न करूंगा। मैं डाकुओं का सरदार हूं। मेरा नाम भवानी पाठक है।'

यह सुनकर प्रफुल्ल को काठ मार गया। भवानी पाठक का नाम उसने दुर्गापुर में सुना था। वह विख्यात डाकू था। उसके भय से सारी बरेन्द्र-भूमि कांपती थी। प्रफुल्ल कुछ न बोलीं।

भवानी बोला, 'विश्वास न हो तो देखो।' यह कहकर वह एक नगाड़ा लाया और उस पर चोटें कीं। एक क्षण में लगभग पचास जवान वहां आ गए। वे बोले, 'क्या आज्ञा है सरदार ?'

भवानी बोला, 'इस लड़की को पहिचान लो। इसको मैंने मां कहा है। तुम सब भी इसे मां कहना और मां की ही तरह मानना। इसका कोई अनिष्ट न हो। बस जाओ।'

यह सुनते ही डाकुओं का दल लुप्त हो गया।

प्रफुल्ल आश्चर्यचकित रह गई। वह समझ गई कि अब उसकी शरण के अतिरिक्त अन्य कोई चारा नहीं है। वह बोली, 'चलिए, आपको अपना घर दिखा दूं।'

सब सामग्री उठाकर वह आगे-आगे चली। उसके पीछे-पीछे भवानी पांठक चले। उस टूटे घर में पहुंचकर प्रफुल्ल ने बोझा उतारा और भवानी ठाकुर को सादर बिठाया।

भवानी पाठक बोले, 'इसी टूटे घर में तुम्हें ये मोहरें मिली थीं ?'

'जी हां।'

'कितनी मोहरें मिलीं ?'

'बहुत।'

'ठीक से बताओ कितनी हैं ? मुझे धोखा दोगी तो हमारे आदमी यहां आकर सब खोद लेंगे।'

'बीस घड़े।'

'यह धन लेकर तुम क्या करोगी ?'

'अपने घर ले जाऊंगी।'

'इन्हें तुम रख सकोगी ?'

'यदि आपकी सहायता पाऊं तो।'

'इस वन में मेरा अधिकार है। इसके बाहर मेरी शक्ति नहीं है। इन्हें इस वन के बाहर ले जाने पर मैं तुम्हारी रक्षा न कर पाऊंगा।'

'तब मैं इस जंगल में ही रहूंगी। आप मेरी रक्षा करेंगे ना ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'करूंगा, परन्तु इतना धन तुम करोगी क्या ?'

'लोग धन लेकर क्या करते हैं ?'

'भोग करते हैं।'

'मैं भी भोग करूंगी।'

भवानी ठाकुर सुनकर हंस पड़े। प्रफुल्ल लज्जित हो गई। भवानी बोले, 'मां ! बच्चों जैसी तुम्हारी बात सुनकर हंसी आ गई। अभी तुमने कहा, तुम्हारा कोई नहीं है। फिर तुम किसके साथ भोग करोगी ? अकेले क्या ऐश्वर्य भोगा जाता है ?'

प्रफुल्ल ने सिर झुका लिया।

भवानी बोले, 'सुनो, कुछ लोग ऐश्वर्य पाकर भोग करते हैं, कुछ पुण्य-संचय करते हैं और कुछ नर्क का रास्ता बनाते है। तुम भोग नहीं कर सकतीं, क्योंकि तुम्हारे कोई है नहीं। या तो तुम पुण्य-संचय कर सकती हो या नर्क का मार्ग बना सकती हो। बोलो, तुम्हें कौन-सा रास्ता पसन्द है ?'

प्रफुल्ल बोली, 'ये बातें तो डाकुओं के सरदार के जैसी नहीं हैं ?'

'नहीं, मैं केवल डाकुओं का सरदार मात्र नहीं हूं। मैंने तुम्हें मां कहा है। इस समय तुम्हारा जिसमें लाभ होगा, मैं वही कहूंगा। धनभोग तुम नहीं कर सकतीं क्योंकि तुम अकेली हो। ऐसी दशा में धन से तुम खूब पाप या पुण्य कर सकती हो। तुम क्या करना चाहती हो ? वही मैं सुनना चाहता हूं।'

'यदि कहूं कि मैं पाप करूगी ?'

'तब मैं अपने आदमियों के द्वारा यह धन तुम्हारे साथ इस जंगल के बाहर भेज दूंगा। वन में मेरे बहुत से अनुचर धन के लोभ में तुम्हारे साथ पापाचार करने को तैयार हो जाएंगे। तुम्हारी पाप-इच्छा होने पर मैं तुम्हें इसी क्षण यहां से विदा करने को बाध्य हूंगा। इस धन को मैं अपना नहीं समझता।'

'मेरे साथ यदि आप मेरा धन भेज देंगे तो मेरी इसमें क्या हानि होगी ?'

'तुम रख पाओगी इसे ? तुम युवती हो, रूपवती हो। डाकुओं के हाथ से छुटकारा पा सकती हो तुम ? पाप की लालसा पूरी नहीं होगी। उससे पहिले ही धन समाप्त हो जाएगा। धन कितना भी क्यों न रहे, समाप्त होने में देर नहीं करता। उसके बाद?'

'उसके बाद क्या ?'

'नर्क का रास्ता साफ हो जाएगा। लालसा रहेगी और उसकी सृष्टि का साधन न रहेगा। यही नर्क का रास्ता है। पुण्य-संचय करोगी ?'

'बाबा ! मैं गृहस्थ की लड़की हूं। पाप को पहिचानती भी नहीं। मैं क्या पाप करने जाऊंगी ? मैं कंगाल हूं। मुझे रोटी-कपड़े के अलावा कुछ न चाहिए। मुझे धन नहीं चाहिए। यह धन सब तुम ले लो। मेरे लिए मुट्ठी भर अन्न का प्रबन्ध कर देना बस।'

भवानी प्रसन्न होकर बोले, 'नहीं, यह धन तुम्हारा ही है। मैं इसे नहीं लूंगा।'

प्रफुल्ल आश्चर्यचकित हुई। भवानी बोले, 'सोचती होगी कि करता तो डकैती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और लूट-पाट है, फिर मेरे साथ कपट क्यों नहीं ? खैर, कारण अभी तुम्हें बताने की जरूरत नहीं है। यदि तुमने पापाचरण करना चाहा तो मैं यह धन लूट भी सकता हूं। परन्तु अभी नहीं लूंगा। एक बार फिर पूछता, यह धन लेकर तुम क्या करोगी?'

'मैं देख रही हूं कि आप ज्ञानी पुरुष हैं। आप मुझे परामर्श दीजिए कि मैं इस धन का क्या करूं ?'

'शिक्षा देने में पांच-सात वर्ष लगेंगे। यदि चाहोंगी तो मैं सिखा सकूंगा। इस बीच में तुम्हें यह धन न छूना होगा। तुम्हें खाने-पहिनने का कोई कष्ट न होगा। तुम्हारी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति होगी, परन्तु मैं जो कहूंगा वह बिना विवाद मानना होगा। कहो स्वीकार है ?'

'रहूंगी कहां ?'

'यहीं। इस घर की कुछ और मरम्मत करा दूंगा।'

'यहां अकेली ही रहना होगा ?'

'नहीं। मैं दो स्त्रियां और भेज दूंगा। वे तुम्हारे पास रहेंगी। उनसे डरना मत। इस जंगल का मलिक मैं हूं। मेरे रहते तुम्हारा कभी कोई अनिष्ट न होगा।'

'आपकी शिक्षा कैसी होगी ?'

'तुम पढ़ना-लिखना जानती हो ?'

'नहीं।'

'तो पहिले पढ़ना-लिखना सिखाऊंगा।'

प्रफुल्ल राजी हो गई। उस जंगल में एक सहायक पाकर बहुत प्रसन्न हुई।

वहां से विदा होकर भवानी ठाकुर ने बाहर आकर देखा, एक व्यक्ति उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। भवानी ने पूछा, 'रंगराज ! तुम यहां क्यों आए ?'

'आपको ढूंढ़ने। आप यहां कैसे आए ?'

'इतने दिन से जो खोजता था, वह आज पा गया।'

'राजा ?'

'नहीं, रानी।'

'राजरानी खोजने की आवश्यकता नहीं रही। अंग्रेजी राज्य कायम हो गया है। सुना है कलकत्ते में हेस्टिंग्स साहब अपना राज्य स्थापित कर रहे हैं।

'मैं क्या खोजता था, तुम्हें मालूम है ?'

'वह पा गए ?'

'वह पाने योग्य वस्तु नहीं है। स्वयं बनाना होगा। ईश्वर लोहा बनाते हैं, मनुष्य तलवार गढ़ लेता है। अब पांच-सात वर्ष गढ़ना पड़ेगा। इस घर में मेरे सिवा कोई पुरुष न आए। लड़की युवती और सुन्दर है।'

'जो आज्ञा ! जागीदार के आदमियों ने रंजनपुर लूट लिया है। उसी के लिए मैं आपको खोज रहा था।'

'चलो ! हम जागीरदार को लूटकर उसका धन गांव वालों को लौटा दें। गांव

-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले मदद करेंगे ?'

'कर सकते हैं।'

6

भवानी ठाकुर ने प्रफुल्ल के पास दो स्त्रियां भेज दीं। एक कहीं जाने आने के लिए और एक प्रफुल्ल के पास रहने के लिए।

दोनों ने प्रफुल्ल को प्रणाम किया। प्रफुल्ल ने पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है ?'

एक दूसरी की ओर संकेत करके बोली, 'यह कुछ बहरी है। इसे गोबरा की मां कहते हैं।'

'गोबरा की मां ! तुम्हारे कितने लड़के हैं ?'

'मैं लड़ाकी नहीं हूं। सब लोग झूठे ही मुझे लड़ाकी कहते हैं ?'

'तुम कौन जाति से हो ?'

'जा सकूंगी। जहां कहोगी वहीं जाऊंगी ?'

'तुम कौन लोग हो ?'

'और लोग लेकर क्या करोगी ? मैं सब काम कर लूंगी।'

'कौन काम न कर सकोगी ?'

'पानी न भर सकूंगी। मेरे बदन में जोर नहीं है। कपड़ा भी बेटी तुम्हीं धो लेना।'

'और सब काम कर लोगी ?'

'बर्तन भी तुम्हीं मांज लेना।'

'यह भी न कर सकोगी तो करोगी क्या ?'

'हां, घर झाड़ने का काम भी अब मुझसे नहीं होता।'

'तब तुमसे होता क्या है ?'

'और जो कहोगी सो करूंगी। रस्सी बटूंगी, पानी बहा दूंगी। अपनी जूठी पत्तल फेंक दूंगी। असल काम सब करूंगी। बाजार हो आऊंगी ?'

'दुकानदारों का हिसाब लगा लोगी ?'

'बुढ़िया हो गई हूं, अब वह नहीं होता। हां, जितना पैसा दोगी, वह खर्च कर आऊंगी। तुम यह न कह सकोगी कि मैंने यह नहीं किया, वह नहीं किया।'

'तुम्हारी जैसी गुणवान कहां पाऊंगी ?'

'यह तो तुम्हारा बड़प्पन है बेटी !'

प्रफुल्ल ने दूसरी स्त्री से पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'यह नहीं जानती बहिन !'

'यह क्या ? मां-बाप ने नाम नहीं रखा था क्या ?'

दूसरी ने कहा, 'रक्खा होगा, मुझे मालूम नहीं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'क्यों ?'

'इसकी समझ होने से पूर्व ही मैं उनसे बिछुड़ गई थी। बचपन में बच्चे पकड़ने वालों ने मुझे चुरा लिया था।'

'उन लोगों ने भी तो कोई नाम रखा होगा ?'

'कई नाम रखे।'

'क्या-क्या ?'

'मुंह जली, अभागी, चुड़ैल।'

गोबरा की मां बोली, 'जो मुझे मुंहजली कहे वह खुद चुड़ैल, वह स्वयं मुंह जली है, बांझ कहीं की।'

दूसरी हंसकर बोली, 'मैंने तुम्हें नहीं कहा।'

गोबरा की मां बोली, 'कहा कैसे नहीं, अवश्य कहा होगा। तू मुझे क्यों गाली देती है ?'

प्रफुल्ल हंसकर बोली, 'तुम्हें नहीं, मुझे कहा है।'

'मुझे नहीं कहा तो कहने दो बेटी ! क्रोध मत करना। इस ब्राह्मणी की जबान खराब है। फिर भी तुम क्रोध न करना।'

गोबरा की मां को अपने लिए उत्तेजित, वीर और दूसरे के लिए शान्त देखकर प्रफुल्ल और युवती खूब हंसी। प्रफुल्ल दूसरी से बोली, 'तुम ब्राह्मणी हो, तब से क्यों नहीं बातया ? मैं प्रणाम करती हूं तुम्हें।'

वह आशीर्वाद देकर बोली, 'मैं ब्राह्मण की लड़की अवश्य हूं, परन्तु ब्राह्मणी नहीं हूं।'

'वह कैसे ?'

'मुझे कोई ब्राह्मण नहीं मिला।'

'तुम्हारा विवाह नहीं हुआ ?'

'बच्चे पकड़ने वाले क्या विवाह करते हैं किसी का ?'

'क्या तब से तुम उन्हीं के बीच रही हो ?'

'उन्होंने मुझे एक राजा के यहां बेच दिया था।'

'तो राजा ने तुमसे विवाह नहीं किया ?'

'राजकुमार करना चाहते थे, परन्तु गन्धर्व।'

'अपने से ?'

'वह भी पता नहीं कितने दिन के लिए।'

'फिर ?'

'मैं वहां से रानी का गहना लेकर भागी थी। मार्ग में डाकुओं ने मुझे पकड़ लिया। भवानी ठाकुर उनके सरदार थे। उन्होंने मेरी कहानी सुनकर मेरा गहना नहीं लिया। साथ में और कुछ दे दिया। उन्होंने मुझे अपने यहां आश्रय दिया। मैं उनकी कन्या के समान हूं। उन्होंने एक तरह से मेरा विवाह कर दिया है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'एक तरह से क्या मतलब ?'

'मेरे सर्वस्व श्री कृष्ण भगवान हैं।'

'वह कैसे ?'

वह बोली, 'मेरा रूप, यौवन, प्राण सब उन्हीं के अर्पण हैं।'

'वह तुम्हारे पति हैं।'

'जो सम्पूर्ण रूप से मेरे अधिकारी हैं, वह वही हैं।'

प्रफुल्ल लम्बी सांस लेकर बोली, 'क्या जानूं ? तुमने कभी पति नहीं देखा। इसी से यह कहती हो। पति देखा होता तो कृष्ण में मन न लगता।'

श्रीकृष्ण में सब लड़कियों का मन लग जाता है। उनका रूप, यौवन, ऐश्वर्य सब-कुछ अनन्त है।'

वह भवानी ठाकुर की शिष्या थी, इस बात का उत्तर न दे सकी। अनन्त जगदीश्वर हिन्दुओं के हृदय में सअन्त श्रीकृष्ण बनकर निवास करते हैं। पति और भी सअन्त हैं। इसीलिए प्रेम पवित्र हो तो पति ईश्वर-प्राप्ति की पहिली सीढ़ी है। इसी से हिन्दू-स्त्रियों का पति ही परमेश्वर होता है।

प्रफुल्ल बोली, 'बहिन ! यह सब मेरी समझ में नहीं आया। तुमने अपना नाम नहीं बताया।

'भवानी ठाकुर ने निशि नाम रखा है। मैं दिवा की बहिन निशि हूं। स्त्री का देवता पति है। श्रीकृष्ण सबके देवता हैं। मैं दो देवता क्यों बनाऊं बहिन ?'

'स्त्रियों की भक्ति का कोई अन्त है क्या ?'

'स्त्रियों के प्रेम का कोई अन्त नहीं है। भक्ति एक चीज है, प्रेम दूसरी।'

'मेरे लिए तो दोनों नए हैं। मैं आज तक एक को भी नहीं जान पाई।'

प्रफुल्ल रोने लगी। निशि बोली, 'मालूम देता है बहिन तुमने बहुत दुःख पाया है।'

निशि ने प्रफुल्ल के आंसू पोंछ दिए। वह बोली, 'मैं यह नहीं जानती थी।' तब निशि ने जाना, ईश्वर-भक्ति की पहिली सीढ़ी पति-भक्ति ही है।

7

जिस दिन दुर्लभ चक्रवर्ती प्रफुल्ल को चुराकर ले आया था, उसी रात्रि को ब्रजेश्वर दुर्गापुर में प्रफुल्ल के यहां गया था। ब्रजेश्वर घुड़सवारी में बहुत तेज था। वह चुपचाप अंधकार में घोड़े पर रवाना हुआ था। प्रफुल्ल की झोंपड़ी में जाकर उसने देखा, वहां कोई नहीं था। चारों ओर घोर अंधकार था। पड़ौसी भी कोई न मिला, जिससे कुछ पूछता। सोचा, शायद किसी सम्बन्धी के यहां चली गई है। पिता के डर से वह उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय घर लौट गया।

दिन बीतने लगे। हरिवल्लभ की गृहस्थी चल रही थी। सब खाते-पीते थे, परन्तु ब्रजेश्वर का जीवन सुखी न रहा। पहले किस ने कुछ न जाना। धीरे-धीरे मां को पता लगा। उन्होंने देखा, ब्रजेश्वर रसोई अच्छी नहीं बनीं कहकर थोड़ा कुछ खाकर उठ जाता था। उन्होंने सोचा, लड़के को मन्दाग्नि है। वैद्य बुलाने की बात हुई। ब्रज ने हंसकर बात टाल दी। मां से तो ब्रज ने हंसकर बात टाल दी, परन्तु ब्रह्म ठकुरानी से कहना पड़ा। वृद्धा ने एक दिन ब्रजेश्वर से पूछा, 'क्यों रे ब्रज! अब तू नयन बहू का मुंह भी नहीं देखता। आखिर क्यों ?'

ब्रज हंसकर बोला, 'एक तो अमावस्या है और फिर उसमें आंधी और बादल। इच्छा नहीं होती।'

'खैर यह तो नयन बहू जाने, परन्तु खाया क्यों नहीं !'

'तुम बनाती हो न !'

'मैं तो हमेशा से ऐसा ही बनाती हूं।'

'अब तुम्हारे हाथ पक गए हैं।'

'दूध क्यों नहीं पीता ? क्या वह भी मैं ही बनाती हूं ?'

'गायों का दूध अच्छा नहीं रहा।'

'तू दिन भर क्या सोचता है ?'

'सोचता हूं कि कब तुम्हें गंगा ले जाऊं।

'बक-बक न कर। वह समय आने पर नीम के नीचे फूंक देना। तो मुझे गंगा ले जानें के लिए दुबला हो गया है ?'

'क्या यह कम चिन्ता की बात है ?'

'कल नदी के किनारे बैठकर तू आंखों से आंसू क्यों गिरा रहा था पगले ?'

'मैं रो रहा था कि नहाते ही तुम्हारा बनाया भोजन करना पड़ेगा। इसी कारण आंखें भर आईं।'

'सागर को बुलवा दूं रसोई बनाने को ?'

'क्यों ? सागर का खाना क्या तुम जानती नहीं हो ?'

'तो फिर प्रफुल्ल को बुलवा दूं।'

प्रफुल्ल का नाम सुनकर ब्रजेश्वर के मुख की दशा बदली। वह बोला, 'वह तो बाग्दी है न ?'

'वह बाग्दी नहीं है यह बात झूठ है। तुम्हारे पिता समाज से डरतें हैं, परन्तु लड़के से तो समाज बड़ा नहीं है। मैं बात चलाऊं ?'

'नहीं। मैं अपने लिए पिता को समाज में बदनाम न करूंगा।'

उस दिन और बातें न हुई। ब्रह्म ठकुरानी सब कुछ न समझ पाई। प्रफुल्ल रूपवती थी। फिर उस रात्रि में ब्रजेश्वर ने देखा था कि प्रफुल्ल जैसी सुन्दर थी वैसी ही मधुर भी थी यदि प्रफुल्ल स्त्री का अधिकार प्राप्त कर वहां आ जाती तो उसके गुण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सब पर छा जाते, परन्तु यह हुआ नहीं। प्रफुल्ल विद्युत् की तरह चमक कर सदा के लिए बादलों में छिप गई। इसलिए यह सब था। ब्रजेश्वर का हृदय प्रफुल्लमय था। उसमें अन्य किसी के लिए स्थान नहीं था। वृद्धा यह नहीं समझ सकी।

कुछ दिन पश्चात् फूलमणि की फैलाई हुई प्रफुल्ल के मरने की बात हरिल्लभ के यहां पहुंची। यहां समाचार आया कि प्रफुल्ल वायु श्लेष्मा से मर गई। मरने के पहले उसने अपनी मृत मां को देखा था। यह बात ब्रजेश्वर ने भी सुनी।

हरिवल्लभ ने श्राद्ध के लिए मना कर दिया। वह बोले, 'बाग्दी का श्राद्ध ब्राह्मण करेंगे ?' नयनतारा ने भी स्नान किया। वह बोली, एक पाप कटा। दूसरी के लिए भी स्नान कर पाऊं तो छाती ठण्डी हो।'

कुछ दिन में ब्रजेश्वर ने खाट पकड़ ली। रोग विशेष न था, कुछ-कुछ बुखार था। वैद्य की औषधि से लाभ न हुआ। ब्रजेश्वर ने प्राणों की बाजी लगा दी।

अब बात छिपी न रही। पहिले वृद्धा ने समझा। फिर गृहिणी ने भी समझा। गृहिणी ने समझा तो गृह-स्वामी भी जान गए। अब हरिवल्लभ की छाती पर चोट लगी। वह रोकर बोले, 'यह मैंने क्या किया ? अपने हाथों अपना घर उजाड़ दिया।' गृहिणी बोली, 'लड़का न बचेगा तो विष खा लूंगी।' हरिवल्लभ ने प्रतिज्ञा की कि यदि प्रभु इस बार ब्रजेश्वर को बचा दें तो उसकी इच्छा जाने बिना कोई कार्य न करेंगे।

ब्रजेश्वर बच गया। धीरे-धीरे वह निरोग हो गया। ब्रजेश्वर प्रफुल्ल को भूलने का प्रयत्न करने लगा। उसके पिता प्रफुल्ल की मृत्यु के कारण थे, यह याद आने पर ब्रजेश्वर व्याकुल हो उठता था।

उधर प्रफुल्ल की शिक्षा आरम्भ हुई। निशि ने उसे अक्षर-ज्ञान कराया। वर्णमाला और अंक प्रफुल्ल ने उससे सीखे। फिर पाठक जी ने स्वयं अध्यापन-कार्य किया। पहिले व्याकरण पढ़ाया। दो-चार दिन पढ़ाकर वह बहुत विस्मित हुए। प्रफुल्ल की बुद्धि बहुत प्रखर थी। वह बहुत जल्दी-जल्दी पढ़ने लगी। उसके परिश्रम को देखकर निशि भी चकित हुई। वह दिन-रात व्याकरण पढ़ती। व्याकरण समाप्त हुआ। अब प्रफुल्ल काव्य पर छा गई। उस पर भी उसका अधिकार हो गया। रघुवंश, कुमार संभव, नैषध, शाकुन्तलम उसने पढ़े। फिर उसने योगशास्त्र का अध्ययन किया और अन्त में भगवतगीता पढ़ी। पांच वर्ष में शिक्षा पूर्ण हुई।

साथ-साथ दूसरी शिक्षा भी चली। गोबरा की मां केवल बाजार से सौदा ला देती थी। निशि भी सहायता अधिक न देती थी। प्रफुल्ल को सब काम स्वयं करना पड़ता। इसमें उसको कोई कष्ट नहीं होता था। उसके आहार के लिए भवानी ठाकुर ने मोटा चावल,नमक, घी और कच्चे केले का प्रबन्ध किया था। निशि वही खाती थी। प्रफुल्ल को भी उसमें बहुत आनन्द था, क्योंकि मां के यहां वह इतना भी नहीं पाती थी। परन्तु एक बात में प्रफुल्ल ने भवानी ठाकुर की बात न सुनी। एकादशी के दिन वह मछली अवश्य खाती थी। यदि गोबरा की मां मछली न लाती तो वह किसी तालाब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पकड़ लाती थी।

दूसरे वर्ष मिठाई, घी, मक्खन, फल इत्यादि सब कुछ मिलने लगा, परन्तु प्रफुल्ल वही नमक, मिर्च और भात खाती थी। वह निशि के साथ बैठकर खाती थी। निशि भी मिठाई बहुत न खाती थी। वह सब गोबरा की मां को दे देती थी।

चौथे वर्ष भोजन की व्यवस्था कुछ और अच्छी हुई, परन्तु प्रफुल्ल ने वहीं खाया, जो खाती थी।

पांचवे वर्ष इच्छानुसार खाने की आज्ञा मिली, परन्तु प्रफुल्ल ने भोजन में कोई परिवर्तन न किया।

वस्त्र पहिनने को भी इसी प्रकार पहिले वर्ष दो धोतियां मिली। दूसरे वर्ष चार। तीसरे वर्ष गर्मियों में मोटे गाढ़े की धोती और जाड़ों में मलमल की। चौथे वर्ष ढाका की धोतियां मिलीं। पांचवे वर्ष इच्छानुसार, परन्तु प्रफुल्ल मोटा गाढ़ा ही पहिनती रही।

केशों के लिए तेल का निषेध रहा। बाल रूखे ही बांधने पड़ते थे। दूसरे वर्ष खुले रहे। तीसरे वर्ष सिर मुंड़वा दिया गया। चौथे वर्ष नए केश निकले। भवानी ठाकुर ने सुगन्धित तेल लगाकर संवारने की आज्ञा दी। पांचवें वर्ष इच्छानुसार केश रखने की आज्ञा मिली। प्रफुल्ल ने पांचवें वर्ष बालों को हाथ भी न लगाया।

प्रफुल्ल ने अपने बदन को वायु, धूप, आग सहन करने योग्य बना लिया था। भवानी ठाकुर ने प्रफुल्ल को एक और शिक्षा प्राप्त करने को कहा। भवानी ठाकुर बोले, 'तुम्हें मल्ल युद्ध सीखना होगा।'

प्रफुल्ल लज्जा से सिर झुकाकर बोली, ठाकुर ! यह मैं न सीख सकूंगी।'

'इसके बिना काम नहीं चलेगा।'

'क्यों ठाकुर ? स्त्री मल्ल-युद्ध क्यों सीखें ?'

'इन्द्रियों पर विजय पाने के लिए।'

'मुझे मल्ल-युद्ध कौन सिखाएगा ? पुरुष से मैं न सीखूंगी।'

'निधि सिखाएगी।'

प्रफुल्ल ने चार वर्ष तक मल्ल-युद्ध भी सीखा।

पहिले वर्ष भवानी ठाकुर ने प्रफुल्ल के पास किसी पुरुष को नहीं जाने दिया था। न उसे किसी पुरुष से बातें करने दीं। दूसरे वर्ष बातें करने पर प्रतिबन्ध न रहा। तीसरे वर्ष भवानी ठाकुर अपने चुने हुए शिष्यों को लेकर प्रफुल्ल के पास जाने लगे। वह उन लोगों से शास्त्रीय बातें करती थीं। चौथे वर्ष भवानी अपने चुने हुए लठैतों से प्रफुल्ल का मल्ल-युद्ध कराते। पांचवे वर्ष सब बन्धन खुल गए। अब जब वह पुरुषों से बात करती तो उन्हें अपना पुत्र समझती थी।

इस प्रकार अतुल ऐश्वर्यशालिनी प्रफुल्ल भवानी ठाकुर के दिशा-दर्शन में सिद्धहस्त हुई। पांच वर्ष में सब शिक्षा प्राप्त हुईं

एकादशी के दिन मछली खाने के अतिरिक्त प्रफुल्ल ने भवानी ठाकुर की जो बात न मानी, वह था उसका परिचय। भवानी ठाकुर पूछकर भी कुछ न जान पाए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांच वर्ष का अध्यापन समाप्त कर भवानी ठाकुर प्रफुल्ल से बोले, 'पांच वर्ष की तुम्हारी शिक्षा समाप्त हुई। अब तुम अपना धन अपनी इच्छा से व्यय करो, मैं न रोकूंगा। मैं केवल राय दूंगा। उसे तुम मानना, या न मानना। अपने खाने-पहिनने का प्रबन्ध अब तुम स्वयं करना। अब तुम कौन-सा मार्ग अपनाओगी ?'

'कर्म करूंगी। ज्ञान मेरे लिए नहीं है।'

'ठीक। मैं यह सुनकर प्रसन्न हुआ, किन्तु कर्म अनासक्त होकर करना। अनासक्ति क्या है, तुम जानती हो ? इसका प्रथम लक्षण है इन्द्रिय-संयम। यह मैंने गत पांच वर्षो में तुम्हें सिखाया है। दूसरा लक्षण है निरहंकार। इसके बिना धर्माचरण नहीं हो सकता।

ज्ञान अहंकार है। जो कुछ करो, अपने गुण से हुआ है, यह बात मत सोचना। तीसरा लक्षण कर्म का फल श्रीकृष्ण को अर्पण कर देना है। अब बताओ। मां, इस धन-राशि का क्या करोगी ?'

'जब मैंने अपना सब कर्म श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिया तो यह धन भी उन्हीं के चरणों पर अर्पित है।'

'सब का सब ?'

'और क्या ?'

'परन्तु ऐसा करके कर्म में अनासक्त न हो सकोगी। यदि आहार के लिए तुम्हें उद्योग करना पड़ा, तो आसक्ति होगी। तब या तो भिक्षा-वृत्ति अपनानी होगी या इस धन से अपना काम चलाना होगा। भिक्षा में भी आसक्ति है। इसलिए तुम इस धन से ही काम चलाना। शेष सब श्रीकृष्ण को अर्पण करना, परन्तु उनके चरणों में यह धन पहुंचेगा कैसे ?'

'वह सर्वभूत में स्थित हैं। मैं सर्वभूत में इसका वितरण करूंगी।'

'ठीक । भगवान ने यही कहा है ?'

'परन्तु दान करने के लिए बड़े कष्ट और बड़े श्रम की आवश्यकता है। वह तुम कर सकोगी ?'

'मैंने इतने दिन सीखा ही क्या है ?'

'उस कष्ट की बात नहीं कर रहा हूं। कुछ दुकानदारी भी करनी पड़ती है। कुछ वेश, कुछ भोग, कुछ ठाठ की आवश्यकता होती है। उसमें कड़ा कष्ट है। वह सह सकोगी ?'

'वह किस प्रकार ?'

'सुनो ! मैं डकैती करता हूं, तुम्हें बता चुका हूं।'

'इस धन में से कुछ आप भी ले लें और यह दुष्कर्म त्याग दें।'

'मेरे पास काफी धन है। मैं धन के लिए डकैती नहीं करता।'

'फिर किसलिए करते हैं ?'

'मैं राज्य करता हूं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'डकैती से राज्य कैसे होता है ?'

'जिसके हाथ में राज्य-दण्ड होता है वही राजा है।'

'परन्तु राज-दण्ड तो राजा के हाथ में होता है।'

'इस देश में कोई राजा नहीं है। मुसलमान समाप्त हो गए। अंग्रेज अभी आए नहीं। मैं यहां राजा बनकर दुष्टों का दमन और शिष्टों का पालन करता हूं।'

'क्या आप यही डकैती करते हैं ?'

'सुनो समझाता हूं।'

भवानी ने देश की दुर्दशा का वर्णन किया। जमींदारों के अत्याचार बताए। उन्होंने बताया, 'वे बाकीदारों के घर लूटते हैं। वे बच्चों के पैर पकड़कर पटक देते हैं, युवकों की छाती बींध देते हैं, वृद्धों का वध कर देते हैं, युवतियों को कचहरी में ले जाकर नंगी कर देते हैं, मारते हैं उनके स्तन काट डालते हैं, उनका अपमान करते हैं।'

मैं उन दुरात्माओं को दण्ड देता हूं। अनाथ दुर्बलों की रक्षा करता हूं। कैसे करता हूं, यह तुम दो दिन मेरे साथ रहकर देख लो।'

प्रफुल्ल का हृदय यह सुनकर भर आया। वह भवानी ठाकुर को धन्यवाद देकर बोली, 'मैं तुम्हारे साथ चलूंगी। कुछ धन उन दुखियों को भी दे आऊंगी।'

'मैं कह रहा था, इन्हीं कामों में दुकानदारी करनी चाहिए। मेरे साथ चलना है तो जरा ठाठ से चलना। संन्यासिनी बनकर यह काम न होगा।'

'मैंने कर्म श्रीकृष्ण को अर्पण कर दिया है। उनके काम के लिए जो करना होगा करूंगी।'

भवानी ठाकुर की इच्छा पूर्ण हुई। वह दल के साथ डकैती को निकले तो प्रफुल्ल धन का घड़ा लेकर साथ चली। निशि भी उनके साथ गई।

भवानी ठाकुर ने पांच वर्ष तक सान पर चढ़ाकर प्रफुल्ल को तीक्ष्णधार वाला वस्त्र बना दिया था। पुरुष होता तो अच्छा होता, परन्तु प्रफुल्ल जैसे गुणों वाला पुरुष नहीं मिला। इतना धन भी किसी के पास नहीं था। धन की मार भी बहुत तीक्ष्ण होती है।

परन्तु भवानी ठाकुर ने एक भूल की। प्रफुल्ल एकादशी के दिन मछली क्यों खाती थी, इस बात पर ध्यान देकर विचार नहीं किया। खैर, अब पुफुल्ल कर्म-शिक्षा की दिशा में आगे बढ़ी।

8

बाग्दी की लड़की कहकर हरिवल्लभ द्वारा प्रफुल्ल को निकाले गए आज दस वर्ष हो गए थे। हरिवल्लभ राय के ये दस वर्ष अच्छे नहीं बीते। जागीरदार देवीसिंह का अत्याचार और ऊपर से डाकुओं का आतंक था। हरिवल्लभ के ताल्लुके का रुपया डाकुओं ने लूट लिया और देवीसिह का लगान नहीं गया। देवींसिह ने ताल्लुका नीलाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करा लिया। हेस्टिंग्स तथा गोविन्दसिंह की कृपा से सरकारी कर्मचारी देवीसिंह के दास थे। हरिवल्लभ का दस हजार का ताल्लूका देवीसिंह ने अढ़ाई सौ रुपए में खरीद लिया था। शेष लगान भी नहीं चुका। देनदारी बढ़ने लगी। देवीसिंह से तंग आकर, जेल के भय से, हरिवल्लभ ने दूसरी सम्पत्ति गिरवी रखकर ऋण चुकाया। इससे आय बहुत घट गई और खर्च घटा नहीं। हरिवल्लभ की पूजा, उत्सव, अन्य कर्म, दान-धर्म, लाठीबाजी पहिले की ही तरह रहीं। डाकुओं के खजाना लूटने के बाद लठैत कुछ और बढ़ाने पड़े। खर्च का पूरा नहीं पड़ता था। सरकारी खजाने की कई किश्तें शेष रह गई। जो सम्पत्ति बची थी, उसके भी बिक जाने की नौबत आ गई। ऋण पर ऋण लदता जा रहा था। सूद असल के बराबर हो गया था।

पचास हजार रुपया देवीसिंह का शेष रह गया। हरिवल्लभ रुपए का प्रबन्ध न कर सके। हरिवल्लभ राय की गिरफ्तारी का परवाना निकल गया।

ब्रजेश्वर रुपए के लिए अपनी ससुरार्ल गया तो उसके ससुर बोले, 'भैया, मेरा रुपया तुम्हारे लिए ही है। मेरा और है कौन ? परन्तु यह जब तक मेरे पास है, तब तक है। तुम्हारे बाप को दे दूंगा तो क्या बचेगा ? महाजन सब ले लेंगे। तुम अपना धन क्यों नष्ट करना चाहते हो ?'

ब्रजेश्वर बोला, 'मुझे धन की आवश्यकता नहीं है। अपने बाप को बचाना मेरा धर्म है।'

ससुर बोले, 'तुम्हारे बाप के बचने से मेरी बेटी को क्या मिलेगा ? रुपया रहने से मेरी बेटी का दुःख दूर होगा, ससुर के रहने से नहीं।'

यह सुनकर ब्रजेश्वर को बहुत क्रोध आया। वह बोला, 'तो आपकी लड़की रुपया लेकर रहे। दामाद की आपको क्या आवश्यकता है ? मैं सर्वदा के लिए विदा होता हूं।'

तब सागर के पिता ने लाल आंखें करके ब्रजेश्वर का और अपमान किया। ब्रजेश्वर ने भी कड़ा उत्तर दिया। उसने चलने की तैयारी की। यह सुनकर सागर भयभीत हुई। सागर की मां ने दामाद को अन्दर बुलाया, बहुत समझाया, परन्तु सब व्यर्थ।

एकान्त में ब्रजेश्वर की सागर से भेंट हुई। उसने ब्रजेश्वर के पैर पकड़कर कहा, 'एक दिन ठहरो। मैंने तो कोई अपराध नहीं किया।'

ब्रजेश्वर ने क्रुद्ध होकर पैर खींच लिए। पैर खीचने में कुछ जोर से सागर को पैर लग गया। सागर ने समझा, पति ने लात मारी। वह पैर छोड़कर खड़ी हो गई और बोली, 'मुझे लात मार रहे हो ?'

ब्रजेश्वर के 'लात मारी नहीं, लग गई,' यह कह देने से ही बात समाप्त हो जाती, परन्तु क्योंकि वह क्रुद्ध था इसलिए सागर की त्योरी देखकर उसका क्रोध भड़क गया। वह बोला, 'यदि मारी ही है तो क्या हुआ ? मेरा पैर तुम्हारे बाप ने भी एक दिन पूजा था।'

सागर क्रोध में अपने आपको भूल गई। वह बोली, 'मैं उसका प्रयाश्चित करूंगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तो तुम बदले में लात मारोगी ?'

'मैं इतनी नीच नहीं हूं, परन्तु यदि ब्राह्मण की बेटी हूं तो मेरा पैर... ।'

सागर की बात पूरी भी न हुई थी कि पीछे से किसी ने कहा, 'नौकर की तरह दबाओगे ।'

सागर भी शायद यही कहने जा रही थी । उसने बिना सोचे-समझे कह दिया, 'गोद में रखकर नौकर की तरह दबाओगे ।'

ब्रजेश्वर बोला, 'तो मेरा यह प्रण हैं कि जब तक वह स्थिति पैदा न होगी, तब तक तुम्हारा मुंह न देखूंगा । प्रतिज्ञा भंग करूं तो ब्राह्मण नहीं ।' यह कहकर ब्रजेश्वर चला गया । सागर रोने लगी । तभी नौकरानी वहां आई । उसे देखकर सागर ने उससे पूछा, 'खिड़की से तू बोली थी क्या ?'

'नहीं, मैं तो कुछ नहीं बोली ।'

'तब खिड़की पर कौन था?

तभी एक रूपवती और तेजस्विनी स्त्री ने कमरे में प्रवेश किया । वह बोली, 'खिड़की पर मैं थी ।'

'तुम कौन हो ?' सागर ने चकित होकर पूछा ।

'क्या तुम भी तुम मुझे नहीं पहिचानतीं ?'

'नहीं । तुम कौन हो ?'

'मैं देवी चौधरानी हूं ।' वह स्त्री बोली ।

नौकरानी कांपती हुई बैठकर रोने लगी । देवी चौधरानी बोली, 'चुप रह हरामज़ादी ! रोई तो जबान खींच लूंगी ।'

नौकरान सिसकती हुई खड़ी हो गई । सागर को भी पसीना आ गया । वह चुपचाप उसकी ओर देख रही थी । जो नाम उन्होंने सुना, उसे बच्चा, बूढ़ा कौन नहीं जानता था? बड़ा भयानक नाम था, परन्तु तभी सागर हंस पड़ी । देवी चौधरानी के चेहरे पर भी मुस्कान खिल उठी । दोनों फिर बहुत देर तक ध्यानपूर्वक एक दूसरी की ओर देखती और बातें करती रहीं ।

9

वर्षा काल की चांदनी रात थी । त्रिस्रोता नदी में बाढ़ आ रही थी । चन्द्रमा की किरणें नदी की लहरों पर चमक रही थीं ।

किनारे से कुछ दूर एक बजड़ा बंधा था । बजड़े से कुछ दूर एक नाव थी । एक और बांसों पर पाल बिछा था । उस पर मल्लाह सो रहे थे । बजड़े की छत पर भी कोई था ।

छत पर एक गलीचा बिछा था । वह बहुत सुन्दर था । उस पर चित्र बने थे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गलीचे पर एक स्त्री बैठी थी। उसके बालों पर चांद की किरणें पड़ रही थीं। बालों की सुगन्धि से आकाश भर उठा था। जूही का गजरा उसके बालों में बंधा था।

रमणी साक्षात् सरस्वती के समान वीणा बजा रही थी। चन्द्रमा की किरणें युवती के अलंकारों पर नृत्य कर रही थीं।

एकाएक उसके कर्ण-कुण्डल हिल उठे। सर्प जैसे उसके केश लहराने लगे। वीणा पर नट-रागिनी बजी और पाल पर सोए हुए मल्लाहों में से एक जाग उठा। वह चुपचाप आकर सुन्दरी के पास खड़ा हो गया।

उसने पूछा, 'क्या हुआ ?'

'दिखाई नहीं पड़ा ?'

'आ रहा है क्या ?'

स्त्री ने पुरुष को एक दूरबीन उठाकर दी। उसने दूरबीन से चारों ओर देखा। उसे एक बजड़ा दिखाई पड़ा। वह बोला, 'देख वही है ?'

'इधर और किसी बजड़े के आने की बात तो नहीं थी ?'

पुरुष फिर दूरबीन से इधर-उधर देखने लगा।

युवती बोली, 'रंगराज !'

'आज्ञा ?'

'क्या देख रहे हो ?'

'देखता हूं कितने लोग हैं।'

'कितने हैं ?'

'ठीक से पता नहीं चल रहा। अधिक नहीं है। नाव खोलूं ?'

'खोलों अंधेरे-अंधेरे चुपचाच चले जाओ।'

रंगराज ने कड़क कर कहा, 'नाव खोले।'

उस नाव पर पचास आदमी सोए हुए थे। रंगराज की आवाज सुनकर वे सब उठ बैठे। उन्होंने अपने-अपने हथियार संभाल लिए। सब तैयार होकर बैठ गए। नाव चुपचाप खुलकर बजड़े से आ लगी। रंगराज हथियारों से सज्जित होकर उस पर सवार हो गया। युवती बोली, 'रंगराज ! जो मैंने कहा, याद रखना।'

'याद है,' कहकर वह नाव पर बैठ गया। नाव चुपचाप किनारे-किनारे बढ़ चली।

जो बजड़ा रंगराज ने देखा था, वह बहता हुआ निकट आ गया था। नाव को बहुत दूर नहीं जाना पड़ा। बजड़े के पास पहुंचकर नाव किनारा छोड़कर उस बजड़े की ओर चली। शब्द जरा भी नहीं हो रहा था।

बजड़े की छत पर आठ सिपाही थे। उनमें दो व्यक्ति हथियारबन्द थे। शेष छः वायु का आनन्द ले रहे थे। वे सो रहे थे। पहरे वालों में से एक ने नाव को बजड़े के निकट आते देखा। वह चिल्लाया, 'नाव दूर रखो।'

रंगराज बोला, 'तुम दूर रक्खो अपना बजड़ा।'

पहरेदार ने धमकाने को बंदूक छोड़ी। रंगराज हंसकर बोला, 'क्या पांडे जी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास एक छर्रा भी नहीं है ? लो, मुझसे ले लो।' यह कहकर रंगराज ने पहरेदार को निशाना बनाया, परन्तु तुरन्त ही बन्दूक नीची करके कहा, 'अभी तुझे मारूंगा नहीं, केवल तेरी लाल पगड़ी उड़ाऊंगा।' उसने बन्दूक रखकर एक तीर चलाया, जिससे उसकी लाल पगड़ी उड़ गई।

पहरेदार भयभीत हो उठा।

नाव बजड़े के पीछे लग गई। दस-बारह आदमी बजड़े पर चढ़ गए। सोए हुए छः पहरेदार बन्दूक की आवाज सुनकर उठ तो गए थे, परन्तु नींद में ही आक्रमणकारियों ने उन्हें बांध लिया। जगने वालों ने लड़ाई की, परन्तु बहुत साधारण। शीघ्र ही उन्हें भी बांध लिया गया। बजड़े में प्रवेश करना चाहा तो उसका द्वार बन्द था।

उसके अन्दर ब्रजेश्वर थे। वह ससुराल से घर लौट रहे थे। रास्ते में यह आफत आ गई।

रंगराज द्वार खटखटाकर बोला, 'दरवाजा खोलो महाशय !'

ब्रजेश्वर बोला, 'कौन है ?'

रंगराज ने कहा, 'कोई बात नहीं। बजड़े पर डकैती हुई है ?'

ब्रजेश्वर तनिक स्तब्ध रहे। फिर पुकारा, 'पांडे, तिवारी, रामसिंह।'

रामसिंह ने छत पर से उत्तर दिया, 'धर्मावतार ! हम सबको बांध रखा है।'

ब्रजेश्वर हंसकर बोले, 'बड़े दुःख की बात है जो तुम्हारे जैसे बहादुरों को भी बांध लिया। डाकुओं ने बहुत बड़ा अपराध किया। अच्छा घबडाओं नहीं, कल तुम्हारा प्रबन्ध होगा।'

रंगराज भी हंसकर बोला, 'मेरी भी यही राय है। अब आप द्वार खोलिए।'

'तुम कौन हो ?'

'मैं डाकू हूं और आपसे द्वार खोलने की प्रार्थना करता हूं।'

'मैं द्वार क्यों खोलूं ?'

'हम लोग आपको लूटेंगे।'

'क्या मुझे भी तुमने पहरेदार समझा है ? मेरे हाथ में दुनाली बंदूक है। जो पहिले घुसेगा, उसे जान से मार दूंगा।'

'एक आदमी नहीं घुसेगा। आप अपनी बंदूक से कितनों को मारेंगे ? फिर आप ब्राह्मण हूं। एक और ब्रह्महत्या होगी। व्यर्थ ब्रह्माहत्या से क्या लाभ ?'

'तो मैं ही वह पाप करूंगा।'

तभी बगल का द्वार तोड़कर दो डाकू अन्दर घुस गए। ब्रजेश्वर ने बन्दूक घुमाकर उनके मारी तो उनमें से एक गिर पड़ा। तभी रंगराज ने सामने के द्वार पर दो लात मारीं। द्वार टूट गया। रंगराज अन्दर घुसा। ब्रजेश्वर रंगराज़ को निशाना बनाने लगे तो रंगराज ने बन्दूक छीन ली। दोनों बलवान् थे, परन्तु रंगराज अधिक फुर्तीला था। ब्रजेश्वर फुर्ती से तलवार खींचकर हंसता हुआ बोला, देख ठाकुर ? मुझे ब्रह्महत्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भय नहीं है।' यह कहकर वह रंगराज पर झपटा। तभी टूटे द्वार से चार-पांच डाकू और आ गए। उन्होंने ब्रजेश्वर से तलवार छीन ली। दो ने उन्हें कसकर पकड़ लिया। एक डाकू रस्सी लेकर बोला, 'बांधना पड़ेगा क्या ?'

ब्रजेश्वर बोला, 'बांधो नहीं। मैं हार मानता हूं। क्या चाहते हो, बोलो मैं देता हूं ?'

'आपके पास जो कुछ भी है, सब लूंगा। पहिले शायद कुछ छोड़ देता, अब एक पैसा न छोड़ूंगा।'

'जो बजड़े में है ले जाओ। मैं बाधा नहीं डालता।'

डाकुओं ने सामान उठाना शुरू कर दिया। अब लगभग पच्चीस आदमी बजड़े पर थे। सामान कुछ था नहीं। पहिनने के कपड़े, पूजा के बर्तन, बस। तब ब्रजेश्वर बोला, 'सब ले चुके, अब जाओ।'

रंगराज बोला, 'जाता हूं, परन्तु आपको भी मेरे साथ चलना पड़ेगा।'

'मुझे कहां जाना होगा ?'

'हमारी रानी के पास।'

'तुम्हारी रानी कौन हैं ?'

102281

'हमारी राजरानी ।'

'वह हैं कौन ? क्या डाकुओं की भी राजरानी होती हैं ?'

'देवी रानी का नाम नहीं सुना तुमने ?'

'तो तुम लोग देवी चौधरानी के दल के हो ?'

'दल क्या ? हम रानी जी के सेवक हैं।'

'जैसी रानी, वैसे ही सेवक, परन्तु मुझे उनके दर्शन करने क्यों जाना होगा ? क्या मुझे बन्दी बनाकर कुछ वसूल करना चाहते हो ?'

'बजड़े पर कुछ नहीं मिला। आपको रोकने से शायद हमें कुछ मिले।'

'चलो मेरी भी चलने की इच्छा है। सुना है, तुम्हारी रानी देखने योग्य हैं ? वह युवती हैं ना ? सुना है वह बहुत रूपवती हैं।'

'हमारी मां देवी के समान हैं।'

'चलो मैं भी देवी का दर्शन कर आऊं।'

ब्रजेश्वर रंगराज के साथ बाहर निकले। बजड़े के मल्लाह भय से पानी में कूद पड़े थे। ब्रजेश्वर उनसे बोले, 'तुम लोग बजड़े पर जाओ, डरो नहीं। भगवान का नाम लो। तुम लोगों का सब कुछ सुरक्षित है।'

मल्लाह बजड़े पर चढ़ गए। ब्रजेश्वर रंगराज से बोला, 'मेरे पहरेदारों के बन्धन खोल दो।'

रंगराज बोला, 'यदि इन्होंने खुलकर हम पर आक्रमण किया तो हम आपका सिर काट लेंगे। आप इन्हें यह समझा दें।'

ब्रजेश्वर ने पहरेदारों को समझा दिया। उन्हें आदेश दिया, 'तुम लोग यहीं रहना, कहीं जाना नहीं। मैं अभी लौटकर आता हूं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रजेश्वर नाव पर चढ़ गए। नाव के मांझियों ने देवी रानी की जय-ध्वनि करके नौका को किनारे की ओर बढ़ा दिया।

10

ब्रजेश्वर ने रंगराज से पूछा, 'तुम्हारी रानी जी कहां रहती हैं ?'

'वह बजड़ा देख रहे हो। वह उन्हीं का बजड़ा है।'

'वह बजड़ा ! मैंने तो उसे अंग्रेजी जहाज समझा था। वह रंगपुर को लूटने आया था। इतने बड़े बजड़े में रहती हैं तुम्हारी रानी जी ?'

'वह रानी की तरह रहती हैं। इसमें सात कमरे हैं।'

'इतने कमरों में कौन रहता है ?'

'एक में उनका दरबार है। एक उनका शयन-गृह है। एक में दासियां रहती हैं। एक स्नान-गृह है। एक रसोई है। एक फाटक है।'

नाव बजड़े से जा लगी। अब देवी चौधरानी छत पर नहीं थीं। नाव के निकट आने पर वह कमरे में चली गई थीं। रंगराज ने द्वार पर 'रानीजी की जय' कहा। अन्दर से देवी ने पूछा, 'क्या समाचार है ?'

'सब मंगल है।'

'कोई घायल तो नहीं हुआ ?'

'कोई नहीं।'

'उन लोगों में से कोई मरा तो नहीं ?'

'कोई नहीं। आपकी आज्ञानुसार कार्य हुआ है।'

'उनका कोई आदमी घायल हुआ है ?'

'दो पहरेदारों को साधारण चोट आई है।'

'कुछ माल मिला ?'

'सब ले आया हूं। कुछ है नहीं।'

'बाबू ?'

'बाबू को पकड़ लाया हूं।'

'प्रस्तुत करो।'

रंगराज ने ब्रजेश्वर को द्वार पर खड़ा कर दिया।

देवी ने पूछा, 'आप कौन हैं ?'

ब्रजेश्वर निर्भय व्यक्ति था। देवी चौधरानी के नाम से पूरा उत्तरी बंगाल कांपता था, उसके पास आकर उसे हंसी आ गई। उसने मन में कहा, 'पुरुष भी कभी स्त्री से डरते हैं ? स्त्री-पुरुष की दासी है।' उसने हंसकर उत्तर दिया, 'परिचय जानकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या करेंगी आप ? मेरे धन से आपको मतलब था, वह आपने ले लिया। नाम से क्या रुपया मिलता है ?'

'मिलेगा क्यों नहीं ? आप किस हैसियत के आदमी हैं, यह पता लगने पर रुपया निकलेगा।'

'क्या इसीलिए मुझे पकड़वाकर मंगवाया है ?'

'नहीं तो आपकी क्या आवश्यकता थी ?'

देवी पर्दे की आड़ में खड़ी थी। किसने देखा कि इस बीच में उसने कितनी बार अपनी आंखों के आंसू पौंछे।

'मैं यदि कहूं कि मेरा नाम दुःखीराम चक्रवर्ती है तो आप विश्वास करेंगी ?'

'नहीं।'

'तब पूछने से क्या लाभ ?'

'मैं देखना चाहती हूं कि आप कितना सत्य बोलते हैं ?'

'मेरा नाम कृष्ण गोविन्द घोषाल है ?'

'यह भी गलत है।'

'दयाराम बख्शी है ?'

'तुम्हारा यह नाम भी नहीं है।'

'मेरा नाम ब्रजेश्वर राय ?'

'यह हो सकता है।'

तभी देवी के पास एक और स्त्री चुपचाप आकर बैठ गई। वह उससे बोली, 'आपका गला बैठ गया है ?'

देवी के आंसू अब रुक न सके। वर्षाकाल में खिले फूलों से जैसे बूंद टपकती हैं, वैसे ही देवी की आंखों से टपाटप आंसू गिरने लगे। देवी उस स्त्री से बोली, 'मैं अभिनय नहीं कर पाऊंगी, अब तू बोल। सब जानती तो है।' यह कहकर वह दूसरे कमरे में चली गई। वह स्त्री देवी का आसन ग्रहण कर बातें करने लगी। वह स्त्री निशि ठकुरानी थी।

निशि बोली, 'अब तुम सच बोले तुम्हारा नाम ब्रजेश्वर राय ही है।'

ब्रजेश्वर चकरा गए। वह परदे के अन्दर कुछ देख नहीं पा रहे थे, परन्तु स्वर सुनकर उन्हें दोनों आवाजों में अन्तर प्रतीत हुआ। वह आवाज बड़ी मीठी थी। यह उतनी मीठी नहीं थी। ब्रजेश्वर बोले, 'परिचय जानती हैं तो मोल-भाव कर लीजिए। मुझे आप किस शर्त पर छोड़ेंगी ?'

'एक कानी कौड़ी देने पर। पास में हो तो देकर चले जाइए।'

'इस समय तो कानी कौड़ी भी नहीं है।'

'बजड़े से ले आइए।'

'बजड़े पर जो कुछ था वह आपके आदमी ले आए। शेष कुछ नहीं है वहां।'

'मल्लाहों से उधार मांग लीजिए।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'उनके पास कानी कौड़ी भी नहीं रहती।'

'तब जब तक कीमत न चुकाइएगा, बन्दी रहना होगा।'

ब्रजेश्वर ने सुना, अन्दर किसी ने कहा, 'रानी जी ! यदि एक कानी कौड़ी इस व्यक्ति का मूल्य है तो मुझसे ले लीजिए और इसे मेरे हाथ बेच दीजिए।'

रानी बोली, 'ले-ले, परन्तु तू करेगी क्या ? ब्राह्मण है, पानी भरेगा नहीं, क्या करेगा ?'

रमणी बोली, 'मेरा रसोईया चला गया है। यह रसोई बनाएगा।'

निशि बोली, 'सुना आपने ? आप बेच दिए गए। मैं कानी कौड़ी पा गई। आपको अपने खरीदार के पास रसोई बनानी होगी।'

ब्रजेश्वर ने पूछा, 'वह कहां है ?'

'वह स्त्री है, बाहर नहीं आ सकती। आप अन्दर आइए।'

ब्रजेश्वर ने कमरे में प्रवेश किया। वहां की सजावट देखकर वह विस्मित हो गए। कमरे की दीवारों पर अद्‌भुत चित्रकारी थी।

ब्रजेश्वर ने पूछा, 'रानी जी को क्या कहकर आशीर्वाद दूं ?'

'मैं रानी नहीं हूं।'

ब्रजेश्वर ने देखा, वह जिससे बात कर रहे थे, यह उसकी आवाज नहीं थी। हो भी सकती थी, क्योंकि स्त्री अपनी आवाज बदल सकती है। फिर चौधरानी इतनी मायाविनी न होती तो डकैती कैसे कर सकती थी ? उसने पूछा, 'अभी मैं जिनसे बातें कर रहा था, वह कहां गईं ?'

सुन्दरी बोली, 'तुम्हें आने की आज्ञा देकर वह सोने के लिए चली गईं, परन्तु तुम्हें क्या करना है वह मैं बताऊंगी ?'

'तुम कौन हो ?'

'तुम्हारी मालकिन ?'

'मेरी मालकिन ?'

'मैंने अभी-अभी तुम्हें कानी कौड़ी देकर खरीदा है।'

'तो तुम्हें क्या कहकर आशीर्वाद दूं ?'

'आशीर्वाद के बहुत-से तरीके होते हैं ?'

'हां, सधवा, विधवा, पुत्रवती...।'

'मुझे शीघ्र मरने का आशीर्वाद दीजिए।'

'मैं यह आशीर्वाद नहीं दे सकता। तुम्हारी एक सौ तीन वर्ष की आयु हो।'

'मेरी आयु पच्चीस वर्ष है। तुम अठत्तर वर्ष मेरी रसोई बनाओगे ?'

'पहिले एक दिन तो बनाऊं। यदि बनवा सकोगी तो अठत्तर वर्ष तक भी बनाऊंगा।'

'बैठो। कैसी रसोई बनाते हो ?'

ब्रजेश्वर गलीचे पर बैठ गये। सुन्दरी ने पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वह तो तुम जानती ही हो, मेरा नाम ब्रजेश्वर है। तुम्हारा नाम क्या है ?'

'तुम्हारा गला रुंधा क्यों है ? क्या तुम्हारा मुझसे कोई पुराना परिचय है ?'

'मैं तुम्हारी मालकिन हूं। मुझसे 'आप' कहकर बातें करो।'

'जी, अब ऐसा ही होगा। आपका नाम क्या है ?'

'नाम मेरा पांच कौड़ी है, पर तुम मेरे नौकर हो। नाम लेकर न पुकारना। क्या मैं भी तुम्हारा नाम लेकर न पुकारूं ?'

'तब मैं 'जी' कैसे कहूंगा ?'

'मैं तुम्हें रामधन कहूंगी। तुम मुझे मालकिन कहना। अब बोलो, तुम्हारा घर कहां है ?'

'एक कौड़ी में खरीदे दास का इतना परिचय जानने की क्या जरूरत है ?'

'चलो न बताओ। रंगराज से पूछ लूंगी। तुम राढ़ी हो, या वारेन्द्र या वैदिक ब्राह्मण ?'

'मैं कुछ भी सही। मेरे हाथ की रसोई तो खायेंगी ही आप ?'

'यदि तुम मेरे श्रेणी के न होगे, तो मैं तुम्हारे हाथ की रसोई कैसे खाऊंगी ? तुम्हें दूसरा काम दूंगी।'

'दूसरा क्या काम होगा ?'

'पानी भरना, लकड़ी काटना, बहुत काम हैं।'

'मैं राढ़ी हूं।'

'तब तो तुम्हें पानी भरना और लकड़ी काटनी होगी। मैं वारेन्द्र हूं। तुम कुलीन राढ़ी हो या वंशज ?'

'ये सब बातें तो विवाह के समय पूछी जाती हैं। क्या मेरा विवाह कराइएगा आप ? वैसे मैं विवाहित हूं।'

'विवाहित हैं ? कितने विवाह हुए हैं ?'

'पानी भरना पड़ेगा तो भरूंगा, परन्तु इतना परिचय नहीं दूंगा।'

पांच कौड़ी रानी को पुकारकर बोली, 'रानी जी ! ब्राह्मण बड़ा हठी है। बात का उत्तर नहीं देता।'

दूसरे कमरे से निशि बोली, 'बेंतें लगाओ' तभी एक दासी लपलपाती बेंत मसनद पर रख गई। पांच कौड़ी ने रूमाल में हंसी रोककर दो बार कालीन पर बेंत को फटकारा और ब्रजेश्वर से बोली, 'देख रहे हो ? कितनी लचकदार है यह बेंत ?'

ब्रजेश्वर मुस्कुराकर बोले, 'आप सब कुछ कर सकती हैं। पूछिए क्या पूछती हैं?'

'अब तुम्हारा परिचय लेकर क्या होगा ? तुम्हारे हाथ की रसोई तो खानी नहीं है। तुम और क्या कर सकते हो, वह बताओ ?'

'आज्ञा दीजिए। आप क्या कराना चाहती हैं ?'

'पानी खींचकर ला सकते हो ?'

'नहीं। यह काम मैंने कभी किया नहीं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'लकड़ी काटकर ला सकते हो ?'

'नहीं। यह भी मुझसे नही होगा।'

'बाजार से सामान खरीद कर ला सकते हो ?'

'यह काम कुछ कर सकता हूं।'

'कुछ से काम नहीं चलेगा। पंखा झल सकते हो ?'

'हां इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।'

'तो यह पंखा लेकर हवा करो।'

ब्रजेश्वर पंखा झलने लगा। पांच कौड़ी बोली, 'क्या तुम पैर भी दबा सकते हो?'

ब्रजेश्वर ने सोचा शायद डाकुओं की सरदार को प्रसन्न करके उसे मुक्ति मिल सके। वह बोला, 'आप जैसी सुन्दरी के पैर दबाने हों तो मैं अपना सौभाग्य...।'

'तब जरा दबाओ।' कहकर पांच कौड़ी ने अपना पैर ब्रजेश्वर की जांघ पर रख दिया।

ब्रजेश्वर को पैर दबाना पड़ गया। वह लाचारी में पैर दबाने लगे। साथ ही सोचने लगे, 'यह ठीक नहीं हुआ, प्रायश्चित करना होगा, परन्तु किसी प्रकार यहां से छुटकारा तो मिले।'

पांच कौड़ी बोली, 'रानी जी, तनिक इधर आइए।'

देवी के आने की आहट सुनकर ब्रजेश्वर ने पैर हटा दिया। पांच कौड़ी हंसकर बोली, 'यह क्या ? भागते क्यों हो ?'

पांच कौड़ी ने स्वाभाविक स्वर में यह बात कही थी। ब्रजेश्वर ने विस्मित होकर अपने से कहा, 'यह तो पहिचानी हुई आवाज है।' उसने साहसपूर्वक पांच कौड़ी के मुख का रूमाल हटा दिया। पांच कौड़ी खिलखिलाकर हंस पड़ी ब्रजेश्वर विस्मित होकर बोले, 'यह क्या ? तुम ! सागर !'

'हां ! मैं सागर हूं। गंगा नहीं, यमुना नहीं, ताल-तलैया नहीं; साक्षात् सागर हूं। तुम्हारा अभाग्य था जो तुम किसी पर स्त्री के आनंदपूर्वक पैर दबा रहे थे और जब घर की स्त्री ने पैर दबाने को कहा था तो क्रुद्ध होकर चले आए थे। खैर, मेरी बात पूरी हो गई और आपकी भी। आपने मेरा पैर दबाया है, अब आप मेरा मुंह देख सकते हैं। अब चाहे चरणों में स्थान दें या त्याग दें। आपने यह भी देख लिया कि मैं ब्राह्मण की बेटी हूं ?'

11

ब्रजेश्वर ने सहमे हुए स्वर में पूछा, 'सागर ! तुम यहां कैसे ?'

सागर बोली, 'सागर के स्वामी, आप यहां कैसे ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मैं तो बन्दी हूं। क्या तुम भी बन्दी हो ? मुझे यहां पकड़कर लाया गया है ? क्या तुम्हें भी इसी प्रकार लाया गया है ?'

'मैं बन्दी नहीं हूं और न ही मुझे कोई पकड़ कर लाया है। मैंने स्वयं अपनी इच्छा से देवी रानी की सहायता ली है। आपसे पैर दबाने के लिए मैं देवी रानी के राज्य में आई हूं ?'

तभी निशि वहां आ गई। उसके वस्त्राभूषणों की चमक देखकर ब्रजेश्वर ने समझा शायद वही देवी रानी है। वह उठ खड़ा हुआ।

निशि बोली, 'डकैत होने पर भी स्त्रियों को इतने सम्मान की आवश्यकता नहीं होती। आप बैठिए। अब जान गए कि आपके बजड़े को क्यों रोका गया था ? सागर का प्रण पूरा हो गया। अब यदि आप यहां से जाना चाहें तो जा सकते हैं। आपका सब सामान बजड़े पर भेजा जा रहा है, परन्तु सागर का क्या होगा ? अब यह बाप के यहां कैसे लौटेगी ? इसे आप अपने साथ ले जाइए।'

ब्रजेश्वर की समझ में कुछ न आया। तब क्या डकैती झूठी थी ? क्या ये लोग डाकू नहीं हैं ? उसने पूछा, 'तुम लोगों ने मुझे खूब मूर्ख बनाया। मैंने समझा था कि मेरे बजड़े पर देवी चौधरानी के दल ने डाका डाला है।'

निशि बोली, 'यह देवी चौधरानी का ही बजड़ा है। देवी रानी सचमुच डकैती डालती हैं ?'

'देवी रानी डकैती डालती हैं ? तो क्या आप देवी चौधरानी नहीं हैं ?'

'जी नहीं। यदि आप उनके दर्शन करना चाहें तो वह दर्शन दे सकती हैं, परन्तु पहिले जो कहती हूं, वह सुनिए। हम डकैती ही करते हैं, परन्तु आपसे ऐसा कोई अभिप्राय नहीं था। हमें केवल सागर की प्रतिज्ञा पूर्ण करानी थी। अब बताइए सागर घर कैसे जाए ?'

'जिस तरह आई थी, उसी तरह जाए ?'

'यह रानी जी के साथ आई थीं।'

'मैं भी वहीं से आ रहा हूं। वहां तो मैंने रानीजी को कहीं नहीं देखा।'

'आपके चले आने के बाद रानीजी वहां पहुंची थीं।'

'तब इतना शीघ्र यहां कैसे पहुंच गईं ?'

'हमारी नाव देखी है आपने। उसमें पचास डांडे एक साथ लगते हैं।'

'तब आप ही इन्हें नाव पर पहुंचा आइए।'

'इसमें कठिनाई है। वह बिना किसी से कहे आई हैं। लौटने पर घर भर पूछताछ करेगा। आपके साथ जाने पर कोई कुछ न कहेगा।'

'चलो यही सही। आप नाव तैयार करायें।'

'अभी कराती हूं।' कहकर निशि वहां से चली गई।

एकान्त पाकर ब्रजेश्वर ने पूछा, 'सागर ! तुमने यह प्रतिज्ञा क्यों की थी ?'

सागर मुंह ढांपकर रोने लगी। वह सिसक-सिसककर बहुत रोई। फिर बोली, 'पीछे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी रानी सुन रही थीं ना !'

ब्रजेश्वर ने पूछा, 'सागर, तुमने मुझे बुलाया क्यों नहीं ? बुला लेतीं तो सब समाप्त हो जाता।'

'कर्म का भोग, परन्तु मैंने न पुकारा तो तुम क्यों नहीं लौटे ?'

'तुमने मुझे भगा दिया था। बिना बुलाए कैसे आता ?'

अन्त में ब्रजेश्वर ने पूछा, 'सागर ! तुम डाकुओं के साथ यहां क्यों आईं ?'

सागर ने कहा, 'देवी रिश्ते में मेरी बहिन लगती हैं। मेरा उनसे पहिला, परिचय था। तुम्हारे आने पर वह पहुंची थीं। मुझे रोती देख कर बोलीं, 'रोती क्यों हो, तुम्हारे श्याम-सलौने को मैं अभी पकड़वा मंगाती हूं। मेरे साथ चलो, मैं उनके साथ चली आई। मैं नौकरानी से कह आई हूं कि मैं तुम्हारे साथ जा रही हूं।'

ब्रजेश्वर बोले, 'परन्तु देवी रानी तो कुछ कहती नहीं।'

सागर ने देवी को पुकारा तो देवी नहीं, निशि आई। उसे देखकर ब्रजेश्वर बोले, 'नाव तैयार हो तो मैं जाऊं।'

'नाव तुम्हारी ही है, परन्तु तुम रानी जी के बहनोई हो। यहां आने पर आपका स्वागत भी तो होगा। अपमान जो कर डाला हमने उसका हमें बड़ा दुःख है। डाकू हैं तो क्या हिन्दू नहीं हैं ?'

'क्या आज्ञा है ?'

'पहिले ठीक से बैठिए।'

ब्रजेश्वर बोला, 'मैं बड़े आराम से बैठा हूं।'

निशि सागर से बोली, 'तुम्हीं उठाकर बैठाओ। हम तुम्हारी चीज को नहीं छू सकते, सोना-चांदी छोड़कर।'

'तो क्या मैं पीतल, कांसा हूं ?'

'पुरुष स्त्री का बर्तन भांडा ही तो होते हैं। उनके बिना गृहस्थी चलती नहीं, इससे रखना पड़ता है। उसे मांजने, धोने, उठाने, रखने में जान निकल जाती हैं। सागर, अपना लोटा-थाली सम्भालो।'

'एक तो पीतल, कांसा, फिर लोटा, थाली। घड़ा, कलसा कहलाने योग्य भी नहीं?'

'मैं तो वैष्णवी हूं। घर-गृहस्थी की बातें सागर से जानी हैं।'

सागर बोली, 'पुरुष वास्तव में कलसा होते हैं, हृदय के खाली, हर गुणवती उन्हें पूरी तरह रखती हैं।'

'तूने ठीक कहा सागर। तभी तो स्त्रियां इन्हें अपने गले में बांधकर संसार-सागर में डूब मरती हैं। तू सम्भाल अपना कलसा और रख ठिकाने।'

'कलसा स्वयं ठिकाने हो जाता है।' यह कहकर ब्रजेश्वर मसनद पर बैठ गया। तभी दो और सुन्दर वेशभूषा धारण किए युवती दासियां आकर सोने का चंवर झलने लगीं। निशि सागर से बोली, 'अपने पति के लिए तम्बाकू भर ला।'

सागर फुर्ती से सुगन्धित तम्बाकू भर लाई। ब्रजेश्वर बोले, 'मुझे दूसरे हुक्के पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तम्बाकू दो।'

'यह जूठा नहीं है। इस पर कभी किसी ने तम्बाकू नहीं पिया है। हम तम्बाकू नहीं पीतीं।'

'तब यह कहां से आया ?'

'देवी की रानीगिरी की दुकानदारी है यह सब।'

'पर मैं जब यहां आया था तब कोई तम्बाकू पी रहा था ?'

'कोई नहीं।'

ब्रजेश्वर ने गुड़गुड़ी के मुंह-नाल देखे, नई थी वह। वह धूम्रपान करने लगे। निशि सागर से बोली, 'तू यहां क्या कर रही है ? जा पान लगाकर ला। अपने हाथों से लगाना। हो सके तो टोना कर देना।'

सागर बोली, 'पान तो मैंने लगाया है, परन्तु जादू-टोना नहीं जानती। जानती तो मेरी यह दशा क्यों होती ?'

निशि, 'पति के लिए कुछ जलपान ले आ।'

ब्रजेश्वर बोला, 'अरे बाप रे बाप ! इतनी रात गए जलपान। क्षमा करो मुझे।'

परन्तु उसकी किसी ने नहीं सुनीं। सागर ने बराबर के कमरे में आसन बिछाकर थालियों में सामग्री सजा दी। सोने के पात्र में शीतल सुगन्धित जल रखा। निशि बोली, 'उठो।'

ब्रजेश्वर हाथ जोड़कर बोला, 'डकैती करके मुझे बन्दी बना लिया। वह अत्याचार मैंने सहा, परन्तु इतनी रात को यह अत्याचार न सह सकूंगा।'

अन्त में ब्रजेश्वर को कुछ खाना ही पड़ा। सागर निशि से बोली, 'ब्राह्मण को भोजन कराकर दक्षिणा देनी पड़ती है।'

निशि बोली, 'दक्षिणा रानी जी स्वयं देंगी।' वह ब्रजेश्वर को अन्य कमरे में ले चली।

भोजन के पश्चात् निशि ब्रजेश्वर को देवी के शयनागार में ले गई। शयनागार दरबार की तरह सजा था। एक स्वर्ण मण्डित पलंग था, जिसमें मोती की झालरें लगी थीं, किन्तु ब्रजेश्वर का ध्यान उधर नहीं था। वह तो उस अतुल सम्पत्ति की स्वामिनी से मिलने आया था। एक ओर काठ की चौकी पर घूंघट निकाले एक स्त्री बैठी थी। निशि और सागर में ब्रजेश्वर ने जो चंचलता देखी थी वह उसमें नहीं थी। वह धीर स्थिर थी। उसका मुख लज्जा से झुका था। वह एक मोटी धोती और हाथ में एक साधारण गहना पहिने थी।

निशि चली गई। देवी ने उठकर ब्रजेश्वर को प्रणाम किया। ब्रजेश्वर और भी चकित हुआ। अन्य किसी ने उसे प्रणाम नहीं किया था। ब्रजेश्वर ने देखा, वह वास्तव में देवी-मूर्ति थी। वह मूर्ति उसने पहिले भी कभी देखी थी। उस मुख को देखकर ब्रजेश्वर को उसकी याद आई। क्या उस मुख और इस मुख में कोई समानता थी। ब्रजेश्वर एकटक देखने लगे, परन्तु वह तो बहुत दिन हुए मर चुकी। कभी-कभी किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मुख देखकर मनुष्य को अन्य की स्मृति हो आती है।

ब्रजेश्वर का हृदय भर आया। उसकी आंखों में आंसू आ गए। देवी उन्हें देख न पाई। दोनों मेघों में बिजली भरी थी।

देवी बोली, 'मैंने आज आपको कष्ट दिया। कारण आप जान सकते ही हैं। मेरा अपराध क्षमा कर दीजिए।'

ब्रजेश्वर बोले, 'आपने मेरा उपकार ही किया है।' ब्रजेश्वर और कुछ न कह सका।

'आपने हमारे यहां जलपान करके हमारी प्रतिष्ठा बढ़ाई। आप कुलीन हैं, आपकी मर्यादा रखना हमारा धर्म है। आप हमारे सम्बन्धी हैं। मैं जो दक्षिणा स्वरूप आपको दे रही हूं, कृपया ग्रहण कीजिए।'

'स्त्री से बढ़कर और क्या धन हो सकता है रानी जी ? आपने मुझे वही दे दिया। इससे अधिक और क्या दीजिएगा ?'

ओह ब्रजेश्वर ! तूने यह क्या कहा ! स्त्री से बढ़कर कौन धन है। तब बाप-बेटे ने मिलकर प्रफुल्ल को क्यों भगा दिया था ?

देवी एक चांदी की कलसी ब्रजेश्वर के पास रखकर बोली, 'आपको यह ग्रहण करनी होगी।'

'आपके बजड़े पर सोना-चांदी बिखरा पड़ा है। अगर मैं यह न लूं, तो सागर क्रुद्ध होगी, परन्तु एक बात है...।'

बात समझकर देवी बोली, 'मैं शपथ से कहती हूं कि यह चोरी या डकैती का धन नहीं है। मेरी अपनी भी सम्पत्ति है। अतएव संकोच न करें।'

ब्रजेश्वर उद्यत हो गया।

ब्रजेश्वर ने कलसी में हाथ डालकर देखा तो उसमें मोहरें थीं, 'पूछा, यह तो इस कलसी में भरा है, इसे कहां उलट दूं ?'

'यह सब आपको दे रही हूं ?'

'ये सब ?'

'हां सब।'

'इसमें कितनी मोहरें हैं ?'

'तैंतीस सौ।'

'तैंतीस सौ मोहरें ! अर्थात् पचार हजार रुपए से भी अधिक ! शायद सागर ने आपसे रुपए की बात की है।'

'मैंने सागर से सुना था कि आपको पचास हजार रुपए की आवश्यकता है।'

'इसीलिए आपको ये दे रही हूं।'

'यह रुपया मेरा नहीं है। न ही मुझे इसे दान करने का कोई अधिकार है। यह सब रुपया देवता का है, ऋण देने का अधिकार मेरा है। उसी में से मैं आपको ऋण दे रही हूं।'

'मुझे इन रुपयों की इस समय बहुत आवश्यकता है। इनके लिए मुझे चोरी डकैती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी करनी पड़ती तो मैं करता। मेरे पिता संकट में हैं। यह रुपया मुझे कब चुकाना होगा ?'

'देवता की सम्पत्ति देवता को मिल जाए बस। मेरी मृत्यु का समाचार पाकर इनमें एक मोहर सूद की मिलाकर देव-सेवा में खर्च कर देना आप।'

'यह तो आपको धोखा देना हुआ। मुझे यह स्वीकार नहीं है।'

'तब आपकी जैसी इच्छा हो वैसे चुका दीजिए।'

'धन एकत्रित होने पर आपके पास भेज दूंगा।'

'आपका कोई आदमी मेरे पास नहीं आ सकेगा।'

'मैं स्वयं रुपया लेकर आऊंगा।'

'कहां आओगे ? मैं एक स्थान पर तो नहीं रहती।'

'आप जहां कहें।'

'दिन निश्चित करें तो मैं स्थान बता सकती हूं।'

'मैं माघ या फागुन में रुपया एकत्रित कर पाऊंगा। बैशाख में रुपया लौटा दूंगा।'

'तब बैशाख के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को रात्रि में रुपया लेकर यहीं आना। सप्तमी के चन्द्रास्त तक मैं यहीं रहूंगी। चन्द्रास्त के पश्चात् भेंट न होगी।'

ब्रजेश्वर ने स्वीकार कर लिया। देवी ने दासी को कलसी नाव पर रख आने की आज्ञा दी। ब्रजेश्वर भी आशीर्वाद देकर नाव पर चले जाने को उद्यत हुए तो देवी रोक कर बोली, 'यह तो ऋण हुआ, दक्षिणा कहां दी है अभी ?'

'कलसी दक्षिणा में है।'

'वह आपके योग्य नहीं।'

यह कहकर देवी ने अपनी अंगूठी उतारी। ब्रजेश्वर ने प्रसन्नतापूर्वक उसे लेने के लिए हाथ बढ़ाया। देवी ब्रजेश्वर का हाथ पकड़कर अंगूठी पहिनाने लगी।

ब्रजेश्वर का हृदय जाने कैसा होने लगा। उनका बदन कंटकित हो गया। हृदय में जैसे अमृत की धारा बहने लगी। वह हाथ खींचना भूल गए। तभी दो बूंद गरम जल ब्रजेश्वर के हाथ पर गिरा। ब्रजेश्वर ने देखा, देवी का चेहरा आंसुओं से भीगा था। ब्रजेश्वर को वह सुख याद आ गया। उस रात्रि को वह मुख भी उसी प्रकार आंसुओं से भीगा था। उन आंसुओं को पोंछना भी याद आया। ब्रजेश्वर ने अनायास ही देवी का मुख ऊपर उठाया, वह बिल्कुल प्रफुल्ल के मुख जैसा था।

ब्रजेश्वर के सिर पर आकाश टूट पड़ा। उसने यह क्या किया ? यह क्या प्रफुल्ल थी ? वह तो दस वर्ष हुए मर चुकी। वह भागकर नाव पर जा चढ़ा ? सागर को भी अपने साथ न ले जा सका। सागर बोली, 'पकड़ो, पकड़ो, असामी भाग रही है।' कहती हुई वह जाकर नाव पर चढ़ गई।

नाव ब्रजेश्वर और सागर को उनके बजड़े पर पहुंचा आई।

उधर निशि ने देखा, देवी शयनागार में पड़ी रो रही थीं। उन्हें उठाकर बैठाया और आंसू पौंछकर बोली, 'यही आपका निष्काम धर्म है ? यही संन्यास है ? आपका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवद्-वाक्य कहां गया ?'

देवी चुप रही। निशि बोली, 'यह व्रत तुम जैसी स्त्रियों के लिए नहीं है। इसके लिए मेरी जैसी स्त्री होनी चाहिए। मुझे रुलाने को कोई ब्रजेश्वर नहीं है। मेरा ब्रजेश्वर और बैकुण्ठेश्वर एक हैं।'

देवी आंखें पौंछकर बोली, 'तुम यमराज के यहां जाओ।'

'मुझे कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु मुझ पर यमराज का कोई अधिकार नहीं है। तुम संन्यास छोड़कर लौट जाओ।'

'वह मार्ग खुला होता तो इधर न आती। बजड़ा खोलने को कहो। पालें उठवा दो।'

12

ब्रजेश्वर अपने बजड़े पर आकर भी गम्भीर रहा। सागर से बोला तक नहीं। उसने देखा कि देवी का बजड़ा हवा की तरह उड़ गया था। तब उसने सागर से पूछा, 'बजड़ा कहां गया ?'

'देवी यह बात किसी को नहीं बतलातीं।'

'यह देवी कौन हैं ?'

'देवी, देवी हैं।'

'यह तुम्हारी कौन होती हैं ?'

'बहिन।'

'कैसी बहिन ?'

'नाते की।'

ब्रजेश्वर चुप हो गए। उन्होंने मल्लाहों से पूछा, 'तुम लोग उस बजड़े के साथ अपना बजड़ा ले जा सकते हो ?'

मल्लाह बोले, 'असम्भव। वह टूटे तारे की तरह जा रहा है।'

ब्रजेश्वर फिर चुप हो गया। सागर सो गई।

सवेरा होने पर सागर का बजड़ा चल पड़ा। सागर ब्रजेश्वर के पास आकर बैठ गई। ब्रजेश्वर ने पूछा, 'क्या देवी डकैती करती हैं ?'

'तुम क्या समझते हो ?'

'डकैती का सब सामान उनके पास है। वह चाहें तो कर सकती हैं, परन्तु विश्वास नहीं होता।'

'विश्वास क्यों नहीं होता ?'

'परन्तु बिना डकैती के इतना धन कहां से प्राप्त किया ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कोई कहता है देवता ने दिया है। कोई कहता है देवी को गड़ा हुआ धन मिला है। कोई कहता है देवी सोना बनाना जानती हैं।'

'देवी कहती हैं कि उनका कुछ नहीं है, सब पराया है।'

'यह धन पाया कहां से ?'

'मैं क्या जानूं ?'

'पराए धन पर इतनी अमीरी है ? मालिक कुछ कहेगा नहीं ?'

'देवी अमीरी नहीं करतीं। जमीन पर सोती हैं। गाढ़ा पहिनती हैं। कल जो देखा, वह दुकानदारी थी। यह तुम्हारे हाथ में क्या है ?'

सागर ने ब्रजेश्वर की अंगुली में अंगूठी देखी।

ब्रजेश्वर बोला, 'देवी की नाव पर जलपान किया था न। उन्होंने मुझे यह अंगूठी दक्षिणा में दी है।'

'देखूं।'

'ब्रजेश्वर ने अंगूठी सागर को दी। सागर ने उसे उलट-पलटकर देखा। वह बोली, 'इसमें देवी चौधरानी नाम लिखा है ?'

'कहां ?'

'अन्दर।'

ब्रजेश्वर उसे पढ़कर बोला, 'अरे ! यह क्या ? यह तो मेरा नाम है। यह तो मेरी अंगूठी है। सागर तुम्हें मेरी कसम, सच-सच बताओ देवी कौन हैं ?'

'तुम न पहिचान सके तो मेरा क्या दोष ? मैंने तो एक क्षण में पहिचान लिया था।'

'प्रफुल्ल !'

'वह कौन है ? देवी ही तो हैं प्रफुल्ल।'

ब्रजेश्वर चुप रहा। सागर ने देखा, उसका बदन अपूर्व आनन्द से भर गया। उसका चेहरा चमक उठा, परन्तु आंखें सजल हो गईं। सागर की ओर देखते हुए उसने अपनी आंखें मूंद लीं और उसकी गोद में सिर रखकर लेट गया। सागर ने कातर होकर बहुत पूछा, परन्तु उत्तर न पाया। केवल एक बार कहा, 'प्रफुल्ल डाकू है क्या ?'

देवी का बजड़ा अपने स्थान पर पहुंच गया। देवी ने नदी में स्नान किया। उन्होंने देह और सिर पर नदी की मिट्टी पोत ली और रूखे केश फैला दिए। भीगी साड़ी में देवी का अनुपम सौन्दर्य प्रकट हुआ। इस वेश में वह साक्षात् देवी लग रही थीं।

इसी अपूर्व वेश में एक स्त्री को साथ लेकर देवी ने जंगल में प्रवेश किया।

देवी जंगल में काफी दूर जाकर अपनी दासी से बोलीं, 'दिवा ! तू यहीं बैठ, मैं अभी आती हूं। यह कहकर देवी ने घने जंगल में प्रवेश किया। जंगल में एक सुरंग थी। नीचे एक कोठरी थी, जहां अंधेरा था। पहिले वहां मंदिर था। देवी अंधकार में सीढ़िया उतरने लगीं।

मंदिर में एक दीपक टिमटिमा रहा था। उसके प्रकाश में एक शिवलिंग दिखाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया। एक ब्राह्मण शिवलिंग के सामने पूजा कर रहा था। देवी शिवलिंग को प्रणाम करके बैठ गईं। ब्राह्मण पूजा समाप्त कर देवी से बातें करने लगा।

'मां ! कल रात तुमने डकैती की थी ?'

'आप क्या जानते हैं ?'

'क्या जानूं ?'

ब्राह्मण भवानी पाठक थे। देवी बोलीं, 'क्या जानूं, क्यों ठाकुर ? क्या आप मुझे नहीं पहिचानते ? मैं दस वर्ष डाकुओं के साथ रही हूं। लोग जानते हैं, जितनी डकैती होती हैं, मैं करती हूं, परन्तु मैंने कभी यह नहीं किया, यह आपको ज्ञात है। फिर भी आप कहते हैं, क्या जानूं !'

'क्रुद्ध क्यों होती हो ? हम लोग जिस लिए डकैती करती हैं उसे बुरा नहीं मानते। बुरा समझते तो करते ही नहीं। तुम भी उसे बुरा नहीं समझतीं। इन दस वर्षों में...।'

'इस विषय में मेरा मत बदल चुका है। मैं अब तक आपकी बातों में भूली थी, अब न भूलूंगी। दूसरों का धन लूटना यदि बुरा नहीं है तो क्या है ? मैं अब आपसे कोई सम्बन्ध न रखूंगी।'

'यह क्या ? इतने दिन जो समझाया, क्या वह फिर से समझाना होगा ? यदि मैं डकैती की एक कौड़ी भी अपने काम में लूं तो यह पाप है। तुम जानती हो मैं दूसरों को देने के लिए डकैती करता हूं।

हम भले आदमियों को नहीं लूटते। हम जालिम आदमियों का धन लूटकर उन्हें देते हैं जिन पर अत्याचार होता है।

देश में अराजकता फैली है। दुष्टों का दमन करने वाला कोई नहीं है। इसलिए हम तुम्हें रानी बनाकर राज-शासन चलाते हैं। तुम्हारे नाम से दुष्टों का दमन और शिष्टों का पालन करते हैं।'

'राज-रानी आप जिसे बनाना चाहें बना सकते हैं। आप मुझे छुट्टी दीजिए। मेरा मन इसमें नहीं लगता।'

'इस राज्य को संभालने के लिए अन्य किसी के पास इतना अतुल ऐश्वर्य नहीं है। तुम्हारे दान से सब तुम्हारे वश में रहते हैं।'

'मैं यह सब धन आपको देती हूं। जैसे मैं खर्च करती हूं वैसे ही आप करें। मैं अब काशी जाकर रहूंगी।'

'लोग केवल तुम्हारे धन से प्रभावित नहीं हैं। तुम रूप, गुण, हर चीज में राजरानी लगती हो। बहुतेरे तुम्हें साक्षात् भगवती मानते हैं। तुम सबकी मंगलकारिणी हो। दान करती हो। भगवती के समान रूपवती हो। तुम्हारे नाम पर हम शासन चला रहे हैं।

'इसीलिए लोग मुझे डाकू समझते हैं। यह कलंक मरने पर भी नहीं मिटेगा।'

'कलंक ! वरेन्द्रभूमि में क्या कोई इस नाम को कलंकित कर सकता है ? चलो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे जाने दो। धर्म-कार्य में यश-अपयश नहीं देखा जाता। कलंक के भय से कर्म निष्काम कैसे हुआ ? कलंक की बात सोचकर तुमने केवल अपना हानि-लाभ सोचा, दूसरों का नहीं ? आत्मविसर्जन कहां हुआ ?'

'मैं तर्क में आपसे नहीं जीत सकती। आप महामहोपाध्याय हैं। मेरी स्त्री-बुद्धि में जो आता है वही कहती हूं। मैं इस पद् से मुक्त होना चाहती हूं। मुझे यह भला नहीं लगता।'

'भला नहीं लगता तो कल रंगराज को डकैती के लिए क्यों भेजा ? सही कहना। मुझसे कुछ छिपा नहीं है।'

'छिपा नहीं है तो यह भी ज्ञात होगा कि रंगराज ने डकैती नहीं की, केवल अभिनय किया था।'

'यह मैं नहीं जानता, इसीलिए पूछ रहा हूं।'

'यह काम एक आदमी को पकड़ने के लिए किया था।'

'किस आदमी को ?'

नाम देवी के मुंह से नहीं निकला, परन्तु भवानी से छल नहीं चल सकता था। देवी बोलीं, 'उनका नाम ब्रजेश्वर राय है।'

'मैं उसे खूब जानता हूं। उससे तुम्हें क्या काम था ?'

'कुछ देना था। उसके बाप को जागीरदार कैद करने वाला है। उसे कुछ देकर ब्राह्मण की जान बचाई।'

'यह उचित नहीं किया। हरिवल्लभराय बड़ा पाजी और पाखण्डी आदमी है। उसने अपनी निर्धन समधिन पर घोर अत्याचार किया था। ऐसे नीच व्यक्ति का जेल जाना ही उचित था।'

देवी सिहरकर बोलीं, 'वह कैसे ?'

'उसकी एक पुत्र-वधू की केवल विधवा मां थी। हरिवल्लभ ने उसे बाग्दी कहकर घर से निकाल दिया। इसी दुःख में बहू की मां मर गई।'

'और बहू ?'

'सुना है वह बेचारी भी भूखों मर गई।'

'हमें इन बातों से क्या मतलब ? हमने परोपकार का व्रत लिया है। जिसे दुःखी देखेंगे उसी का दुःख मिटाएंगे।'

'खैर, कोई हानि नहीं, परन्तु इस समय बहुत से लोग दरिद्र हो गए हैं। जागीरदार ने उनका सर्वस्व ले लिया है। उन्हें कुछ खाने को मिले तो वे अपनी शक्ति बढ़ाएं। शक्ति पाकर वे अपना अधिकार लाठी से प्राप्त कर लेंगे। तुम शीघ्र अपना दरबार लगाकर उनकी रक्षा करो।'

'सूचना भिजवा दीजिए आगामी सोमवार को दरबार लगेगा।'

'नहीं, तुम अब वहां न रह पाओगी। अंग्रेजों को पता चल गया है कि तुम यहां हो। वे पांच सौ सिपाहियों के साथ तुम्हें पकड़ने आ रहे हैं। यहां दरबार न होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरबार बैकुण्ठपुर के जंगल में होगा। यही सूचना फैला दी गई है। सोमवार का दिन निश्चित किया है। वहां जाने का साहस सिपाही न करेंगे। करेंगे तो मारे जाएंगे। इच्छानुसार रुपया लेकर वहां को प्रस्थान करो।'

'इस बार जा रही हूं, परन्तु फिर मैं यह काम न कर सकूंगी। अब मेरा मन नहीं लग रहा।'

देवी जंगल से निकलकर बजड़े पर जा चढ़ीं। रंगराज को देवी ने आदेश दिया, 'सोमवार को बैकुण्ठपुर के जंगल में दरबार लगेगा। वहां के लिए प्रस्थान करो। बरकन्दाजों को भी सूचना भेज दो। साथ में रुपया ले चलना है।'

बजड़े के मस्तूल पर पालें हवा में फूल उठीं नाव बजड़े के सामने बांधी गई। साठ जवान 'रानीजी की जय' कहकर उसे खेने लगे। बजड़ा हवा की तरह उड़ चला। स्थल-मार्ग में साधारण वेश में बहुत से लोग बजड़े के साथ चल पड़े थे। उनके हाथों में एक-एक लाठी थी। बजड़े के अन्दर असंख्य ढाल, बर्छे और बन्दूकें थीं।

सोमवार को जंगल में देवी का दरबार लगा।

देवी पूजा की प्रतिमा के समान सजी थीं। यह सब देवी का ठाट था। दोनों ओर से चार युवा दासियां सोने के चंवर डुला रही थीं। उनके आगे-पीछे बहुत से चोबदार भड़कीली पोशाक पहिने खड़े थे। बरकन्दाजों की शोभा सबसे बढ़कर थी। पांच सौ बरकन्दाज देवी के दोनों ओर थे। लाल पगड़ी, लाल अंगरखा, घुटने तक की लाल धोती पहिने थे। उनके हाथों में ढाल, बर्छे थे। चारों ओर लाल झंडे लगे थे।

देवी सिंहासन पर बैठी थीं। दस हजार व्यक्तियों ने 'देवी रानी की जय' की। दस युवकों ने देवी की स्तुति गाई। रंगराज एक-एक दरिद्र को देवी के सिंहासन के पास लाने लगा। उन्होंने भक्ति-भाव से साष्टांग प्रणाम किया। देवी ने मीठे शब्दों में सबका परिचय जाना और दान दिया। प्रातःकाल से दान करते-करते रात्रि का एक प्रहर बीत गया। यही देवी की डकैती थी।

गुडलैण्ड साहब को सूचना मिली कि बैकुण्ठपुर के जंगल में देवी का दल आया है। असंख्य डाकू हैं। बहुत-सा धन लेकर अपने घरों को लौटे हैं। इस बार उन्होंने बड़ी भारी डकैती की है।

इधर ब्रजेश्वर ठीक समय पर घर पहुंचे। हरिवल्लभ ने पूछा, 'रुपए का क्या हुआ ?'

'ससुर ने रुपया नहीं दिया।'

वह घबराकर बोले, 'तो क्या रुपया नहीं मिला ?'

'ससुर ने नहीं दिया। मैं दूसरी जगह से लाया हूं।'

'लाए हो ? तो मुझसे कहा क्यों नहीं ? दुर्गा ! प्राण बचे।'

'जहां से रुपया पाया है, वह लेना चाहिए या नहीं, यह मैं नहीं समझ पाया।'

'किसने दिया है ?'

'नाम याद नहीं आ रहा है, वह जो डाकू स्त्री है न !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'देवी चौधरानी ?'

'हां वही।'

'उससे रुपया कैसे मिला ?'

'संयोग से मिल गया।'

'डाकू का रुपया है। क्या लिख-पढ़ आए हो कुछ ?'

'लिखना-पढ़ना कुछ नहीं पड़ा। फिर भी 'पाप का धन ग्रहण करने वाला भी पापी होता है। इसलिए मैं यह रुपया रखना नहीं चाहता।'

'रुपया न लूं तो क्या जेल में जाऊं ? ऋण लेने में पाप पुण्य क्या ? यह सोचने की बात नहीं। सोचना यह है कि डाकू का रुपया लिखकर तो नहीं लिया। कहीं देरी होने पर वह घर बार न लूट ले।'

ब्रजेश्वर कुछ न बोला।

हरिवल्लभ ने पूछा, 'लौटाने की मियाद कितनी है ?'

'वैशाख शुल्क सप्तमी के चन्द्रास्त तक।'

'रुपया भेजा कहां जाएगा ?'

'उस दिन वह सन्धानपुर के घाट पर रहेंगी। वहीं रुपया पहुंचाना होगा।'

'ठीक है। रुपया भेज दिया जाएगा।'

ब्रजेश्वर चला गया। हरिवल्लभ ने मन में सोचा, हूं ! 'मैं उसका रुपया चुकाने जाऊंगा ? सिपाही बुलाकर पकड़वा दूंगा। सब टण्टा कट जाएगा। उस दिन यदि पलटन सहित कप्तान साहब उसके बजड़े पर न पहुंचे तो मेरा नाम हरिवल्लभ नहीं।'

यह बात हरिवल्लभ ने ब्रजेश्वर से नहीं कही।

सागर ने ब्रह्म ठकुरानी से कहा कि ब्रजेश्वर एक राजरानी से विवाह कर आये हैं। उसने मना किया, पर माने नहीं। वह शूद्र है। उसके दो विवाह और हैं। इसलिए ब्रजेश्वर की जात गई। अब सागर ब्रजेश्वर की जूठन न खाएगी। ब्रह्म ठकुरानी ने ब्रजेश्वर से पूछा। ब्रजेश्वर स्वीकार करके बोला, 'रानी की जाति उच्च है। वह सागर की बहिन हैं। अब रही विवाह की बात सो तीन उनके हैं और तीन मेरे हैं।'

ब्रह्म ठकुरानी ने यह बात झूठी जानी। सागर चाहती थी कि ठकुरानी यह बात नयनतारा से कहे। वह पति के नया विवाह करने की बात सुनकर चिढ़ गई। इसलिए कुछ दिन ब्रजेश्वर नयनतारा के पास न गया।

नयनतारा ने तूफान मचा दिया। उसने गृहिणी से कहा। गृहिणी बोली, 'तुम तो पागल हो गई हो। ब्राह्मण-पुत्र शूद्र से विवाह नहीं कर सकता। तुम चिढ़ती हो इससे वे तुम्हें चिढ़ाते हैं।'

नयन बहू तब भी न समझी। वह बोली, 'यदि किया हो !' गृहिणी बोली, 'यदि किया है तो मैं बहू को घर में रक्खूंगी। लड़के की बहू को छोड़ नहीं सकती।'

तभी ब्रजेश्वर आ गया तो नयन बहू उठकर भाग गई। ब्रजेश्वर ने पूछा, 'क्या कहती थीं ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कहती थी कि तू नया विवाह करे, तो बहू को घर ले आऊं।'

ब्रजेश्वर बिना कुछ कहे ही चला गया।

गृहिणी ने गृह-स्वामी से यह बात उठाई। उन्होंने पूछा, 'तुम्हारा क्या मन है ?'

'सोचती हूं, सागर बहू यहां रहती नहीं। नयन वह लड़के के योग्य नहीं है। यदि ब्रज एक ब्याह और करके घर बसाये तो सुख मिले।'

'लड़के का मन जान लो। वह चाहे तो कहना मैं अच्छा सम्बन्ध करा दूंगा।'

'मैं उसका मन टटोल लूं।'

मन टटोलने का भार ब्रह्म ठकुरानी को सौंपा गया। उन्होंने ब्रजेश्वर को बहुत से विरही राजकुमारों की कहानियां सुनाईं, परन्तु फल न निकला। तब ब्रह्म ठकुरानी ने स्पष्ट पूछा, परन्तु ब्रजेश्वर का मन न खुला। ब्रजेश्वर बोले, 'मां-बाप की जो आज्ञा होगी, मैं वही करूंगा।'

13

वैशाख शुक्ल सप्तमी निकट थी और देवी का ऋण चुकाने का कोई उद्योग न था। हरिवल्लभ इस समय सम्पन्न थे, चाहते तो रुपए एकत्रित कर सकते थे, परन्तु उन्होंने ध्यान ही न दिया। समय सिर पर आ गया। दो चार दिन रह गए। अब ब्रजेश्वर ने तकाजा किया तो बोले, 'घबड़ाओ नहीं, मैं रुपयों का प्रबन्ध करने जा रहा हूं। षष्ठी को लौटूंगा।' वह पालकी पर चढ़कर घर से निकल पड़े।

हरिवल्लभ ने सीधे रंगपुर जाकर कलेक्टर साहब से भेंट की। वह बोले, 'मेरे साथ सिपाही भेजिए। मैं देवी चौधरानी को पकड़वाता हूं। पकड़वा देने पर मुझे क्या इनाम मिलेगा ?'

साहब बहुत प्रसन्न हुए। वह जानते थे कि देवी चौधरानी सब डाकुओं की सरदार है। उन्होंने देवी को पकड़ने का काफी प्रयत्न किया था, परन्तु सफलता न मिली थी। साहब हरिवल्लभ को पुरस्कार देने को उद्यत हो गए। हरिवल्लभ बोले, 'मेरे साथ पांच सौ सिपाही भेजिए।'

साहब ने हुक्म दिया और हरिवल्लभ के साथ लेफ्टीनेण्ट ब्रेनन पांच सौ सिपाही लेकर चल पड़े।

ब्रजेश्वर से हरिवल्लभ ने उस घाट का नाम सुन लिया था जहां देवी आने वाली थी। शायद देवी बजड़े पर रहे, इसलिए ब्रेनन फौज लेकर नाव से चले। पांच नावें बजड़ा घेरने को चलीं। साहब ने बहुत-सी सेना स्थल-मार्ग से भेज दी।

जिस घाट पर ब्रजेश्वर को पकड़ा गया था, उसी पर देवी उपस्थित थीं। सन्ध्या बीत चुकी थी। बजड़ा था, परन्तु नाव और उसके पचास जवान नहीं थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बजड़े पर कोई पुरुष नहीं था। देवी गाढ़े की धोती पहिने साधारण वेश में थीं।

देवी छत पर अकेली नहीं थीं। उनके पास दो स्त्रियां बैठी थीं, एक निशा, दूसरी दिवा।

दिवा बोली, 'क्या परमेश्वर भी कभी प्रत्यक्ष देखा जा सकता है ?'

प्रफुल्ल बोली, 'प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता। मैं प्रत्यक्ष देखने की बात नहीं कह रही थी। मैं प्रत्यक्ष करने की बात कह रही थी। प्रत्यक्ष छह प्रकार का होता है। तुम मेरी बात सुनती हो यह तुम्हारा श्रवण-प्रत्यक्ष है। तुम मेरे फूलों की गंध सूंघ रही हो ना।'

'सूंघ रही हूं।'

'यह नासिका-प्रत्यक्ष है। यदि मैं तुम्हें हाथ से छूं दूं तो वह त्वचा-प्रत्यक्ष होगा। यदि निशि तेरा माथा खाए तो वह रसना-प्रत्यक्ष होगा।

'यह ठीक है, परन्तु प्रभु को न देखा है न सुना है, न सूंघा है, न छुआ है और न खाया ही जा सकता है। उसे किस तरह प्रत्यक्ष किया जाएगा ?'

'आंख, कान, नाक, रसना और त्वचा को छोड़कर एक ज्ञानेन्द्रि होती है। उसी से परमात्मा का प्रत्यक्ष होता है।

'देखो आज अंग्रेजों के सिपाही मुझे पकड़ने को आ रहे हैं। तुम जानती हो न?'

दिवा बोली, 'हां जानती हूं।'

'सिपाही को तुमने प्रत्यक्ष किया है ?'

'नहीं, उनके आने पर प्रत्यक्ष करूंगी।'

'मैं कहती हूं वे आ गए हैं। पर बिना आंखों से देखे तुम प्रत्यक्ष नहीं कर पा रही हो। लो, इसकी सहायता लो।' देवी ने दिवा को दूरबीन दी। दिवा ने उससे देखा। 'देवी बोली, 'क्या देखा ?'

'एक नाव है। उसमें बहुत से आदमी हैं।'

'वे सिपाही हैं।' फिर देवी ने दिवा को पांच नावें दिखाईं।

निशि ने पूछा, 'नाव किनारे पर दिख रही हैं। यहां न आकर वहां क्यों लगा ली हैं इन लोगों ने ?'

'शायद स्थल से आने वाले सिपाही अभी नहीं आए हैं। ये उनकी प्रतीक्षा में हैं।'

'अब हम चाहें तो भाग सकते हैं।'

'उन्हें मालूम नहीं है कि हमारे पास दूरबीन है।'

'बहिन ! प्राण रहेंगे तो कभी-न-कभी पति से भेंट अवश्य होगी।

'आज प्राण बचाओ।'

'प्राणों का भय होता तो मैं सब कुछ जानकर भी यहां क्यों आती और अन्य सब लोगों को विदा क्यों कर देती ? अपने हजारों बरकन्दाजों को क्यों भेज देती?'

'हम पहिले जानतीं तो तुम्हें यह कभी न करने देतीं।' दिवा बोली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मैंने जो सोचा है वह मैं अश्वय करूंगी। मैं आज पति का दर्शन करूंगी। उनकी आज्ञा प्राप्त कर दूसरे जन्म में उनसे मिलने के लिए प्राण-त्याग करूंगी। तुम दोनों जब मेरे पति लौटने लगें तो उनके साथ चली जाना। मैं अकेली पकड़ी जाकर फांसी चढ़ूंगी। इसीलिए मैंने सबको हटा दिया है।'

'इस बदन में प्राण रहते मैं तुम्हें न छोड़ूंगी। मरना ही होगा तो तुम्हारे साथ मरूंगी।' निशि बोली।

तभी देवी ने निशी के हाथ से दूरबीन लेकर एक डोंगी देखी। वह बोली, 'वह आ रहे हैं। तुम लोग नीचे जाओ।'

दिवा और निशि कमरे में चली गईं। डोंगी बजड़े से लगी। उसमें से ब्रजेश्वर कूदकर बजड़े पर चढ़ आया और देवी की ओर बढ़ा। देवी ने उसके चरणों की धूलि मस्तक से लगाई। ब्रजेश्वर बोला, 'आज रुपया नहीं ला सका। शायद दो-चार दिन में दे सकूं। तुमसे कहा था, भेंट होगी, इसीलिए इस समय आया हूं। पिताजी रुपये का प्रबन्ध करने गए हैं। वह अभी लौटे नहीं हैं।'

देवी ब्रजेश्वर की भोली-भाली बात सुनकर थोड़ा मुस्कुराती हुई बोली, 'अब मुझसे भेंट नहीं होगी।' कहते हुए देवी का गला भर आया। उन्होंने अपनी आंखें पौंछीं। भेंट नहीं होगी परन्तु ऋण चुकाने का और उपाय है। जब सुविधा हो तब वह रुपया गरीब-दुखियों को बांट देना, मुझे मिल जाएगा।'

ब्रजेश्वर देवी का हाथ पकड़कर बोले, 'प्रफुल्ल ! तुम्हारा रुपया...।' जैसे ही ब्रजेश्वर ने 'प्रफुल्ल' का हाथ पकड़ा, प्रफुल्ल का बंधा बांध टूट पड़ा। उसकी आंखों से आंसू की धारा बह चली। रुपये की बात उस धारा में बह गई। तेजस्विनी देवी बच्चों की तरह फूट-फूट कर रो पड़ी। ब्रजेश्वर की विचित्र दशा हुई। उसने सोचा। वह डकैती करती है, उसें आंसू बहाने की क्या आवश्यकता ? ब्रजेश्वर की भी आंखें भर आईं। ब्रजेश्वर के आंसू गालों पर से बहते हुए प्रफुल्ल के हाथ पर गिरने लगे? बालू का बांध टूट गया। ब्रजेश्वर ने सोचा था डकैती करने के लिए प्रफुल्ल का तिरस्कार करेगा। पापिन कहेगा और जन्म भर के लिए त्याग कर चला आयेगा, परन्तु आंसुओं से हाथ भिगाकर वह कुछ भी न कह सका।

आंसू पौंछकर ब्रजेश्वर बोला, 'प्रफुल्ल ! तुम्हारा रुपया मेरा रुपया है। उसे चुकाने के लिए मैं कातर नहीं हूं, परन्तु आज मैं बहुत कातर हूं। गत दस वर्षों में मैं तुम्हारे ध्यान में डूबा रहा। मेरी और दो स्त्रियां हैं, परन्तु गत दस वर्षों में मैंने उन्हें स्त्री नहीं समझा। यह क्यों हुआ, यह मैं तुम्हें नहीं समझा सकता। मैंने सुना था कि तुम संसार में नहीं रहीं, परन्तु मेरे लिए तुम थीं। मेरे मन में और किसी का ध्यान नहीं था। तुम्हारे मरने का समाचार पाकर मैं मरना चाहता था। आज सोचता हूं, मर गया होता तो अच्छा होता। तुम मर गई होतीं, तो भी अच्छा होता। अब जो सुन-समझ रहा हूं, वह तो न सुनना-समझना पड़ता। आज दस वर्ष की खोई सम्पत्ति प्राप्त कर मुझे स्वर्ग से भी अधिक सुख प्राप्त होगा, परन्तु वह हुआ नहीं। तुम्हें इस रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाकर मुझे मर्मांतक पीड़ा है।' उसके आंसू बह चले। वह दोनों हाथों में माथा पकड़कर बोला, 'मैंने अपने मन के मन्दिर में जो प्रतिमा बैठा रखी थी प्रफुल्ल ! वह यह पेशा करती है ?'

प्रफुल्ल बोली, 'डकैती करती हूं ?'

'नहीं करतीं क्या ?'

प्रफुल्ल कह सकती थी कि जब ब्रजेश्वर के पिता ने उसे घर से निकाला था तो प्रफुल्ल ने उनसे पुछवाया था, 'मैं कंगाल हूं। तुम निकाल दोगे तो मैं खाऊंगी क्या ?' ससुर ने उत्तर दिया था, 'चोरी, डकैती या भीख मांग कर खाना।' ब्रजेश्वर प्रफुल्ल की भर्त्सना करने चला था। प्रफुल्ल कह सकती थी, 'डाकू की भर्त्सना कर रहे हो ? तुम्हीं लोगों ने तो चोरी, डकैती करके खाने की आज्ञा दी थी। मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन कर रही हूं।' परन्तु यह उत्तर प्रफुल्ल ने नहीं दिया। वह हाथ जोड़कर बोली, 'मैं डाकू नहीं हूं। मैं शपथ लेकर कहती हूं कि मैंने कभी डकैती नहीं की और न कभी डाके की एक कौड़ी छुई है। तुम मेरे देवता हो। मैं अन्य देवता की अर्चना करना सीख रही थी, परन्तु सीख न पाई। लोग मुझे डाकू कहते हैं। क्यों कहते हैं, वह तुम्हें सुनाती हूं। वही सुनाने आज यहां आई हूं। फिर कभी तुम सुन न सकोगे।'

प्रफुल्ल ने ससुराल से निकाले जाने के दिन से आज तक की सारी कहानी ब्रजेश्वर को सुनाई। ब्रजेश्वर सुनकर विस्मित, लज्जित और आनन्दविभोर हो उठे। प्रफुल्ल ने पूछा, 'मेरी इन बातों पर आपको विश्वास है ?'

अविश्वास का कोई कारण नहीं था। ब्रजेश्वर उत्तर नहीं दे सका, परन्तु उसके चेहरे की क्रान्ति देखकर वह समझ गई कि विश्वास हो गया। प्रफुल्ल बोली, 'अब अपनी चरण-धूलि देकर मुझे विदा दो। देर न करो।

विपत्ति आने वाली है। तुम्हें पाकर जाने को कह रही हूं, इसी से समझ लो कि विपत्ति असाधारण है। मेरी दो सखियां इस नाव पर हैं। उन्हें अपने साथ लेते जाओ। वे जहां जाना चाहें, पहुंचा देना। मुझे जैसे आज तक याद रक्खा है, वैसे ही भविष्य में याद रखना। सागर मुझे भूलने न पाएगी।'

ब्रजेश्वर कुछ चुपचाप सोचकर बोला, 'मैं कुछ नहीं समझ पा रहा हूं प्रफुल्ल ! तुम्हारे इतने आदमी थे, वे सब कहां हैं ? बजड़े पर दो स्त्रियां हैं, उन्हें भी जाने को कहती हो फिर भेंट नहीं होगी, यह सब क्या है ? क्या आपत्ति है, मुझे न बताओगी तो मैं नहीं जाऊंगा।'

'तुम्हारे सुनने की बात नहीं है।'

'मैं क्या तुम्हारा कुछ भी नहीं हूं ?'

उसी समय बन्दूक का शब्द हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

14

सामने से पांच नाव आ रही थीं। डांडों की चोट से उछलता पानी चांदनी रात में चमक रहा था। उनमें सिपाही भरे थे। बन्दूक का शब्द सुनकर पांचों नाव बढ़ने लगीं। यह देखकर प्रफुल्ल बोली, 'अब विलम्ब न करो। जल्दी से डोंगी पर चढ़कर चले जाओ।'

'क्यों ? ये नाव किसकी हैं ?'

'इनमें कम्पनी के सिपाही हैं। ये बन्दूकें भी उन्हीं के सिपाहियों ने छोड़ी थीं।'

'वे इधर क्यों आ रहे हैं ? तुम्हें पकड़ने के लिए ?'

प्रफुल्ल चुप रही। ब्रजेश्वर बोला, 'ज्ञात होता है तुम पहिले से यह सब कुछ जानती थीं।'

'हां ! मेरे गुप्तचर सब स्थानों पर हैं ?'

'तुमने यह यहां आकर जाना, या पहिले से ही जानती थीं ?'

'पहिले से ही जानती थी।'

'तब जान-बूझकर यहां क्यों आईं ?'

'एक बार तुम्हारे दर्शन करने के लिए।'

'तुम्हारे आदमी कहां हैं ?'

'उन सबको मैंने विदा कर दिया है। मेरे लिए वे क्यों मरें ?'

'क्या तुमने आत्मसमर्पण करने का निश्चय किया है ?'

'जीकर भी क्या होगा ? तुम्हें देख लिया, मन की बात तुमसे कह दी। तुम मुझे प्यार करते हो, यह जान लिया। मेरे पास जो कुछ था, वह गरीबों को बांट चुकी। अब क्या शेष है ?'

'मेरे साथ घर नहीं चलोगी ?'

'अब कहते हो ?'

'तुमने मुझसे शपथ खाई है, मैं भी शपथ खाता हूं। आज तुम किसी तरह अपने प्राण बचा लो, मैं तुम्हें अपनी गृहिणी बनाऊंगा। अब मैं किसी की बात न सुनूंगा।'

'ससुर जी क्या कहेंगे ?'

'उन्हें मैं समझ लूंगा।'

'अब कोई उपाय नहीं है। तुम अपना डोंगी बुलवाओ। निशि और दिवा को लेकर यहां से शीघ्र चले जाओ।'

ब्रजेश्वर ने डोंगी बुलाई। डोंगी वाले से कहा, 'तुम लोग भाग जाओ। मैं नहीं जाऊंगा।'

डोंगी वाले जल्दी से डोंगी खोलकर चलते बने।

प्रफुल्ल बोली, 'तुम नहीं गए।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुम मरना जानती हो तो क्या मैं नहीं जानता ? तुम मेरी स्त्री हो। मैं सौ बार तुम्हारा त्याग कर सकता हूं, परन्तु मैं तुम्हारा पति हूं, विपत्ति में तुम्हारी रक्षा का भार मुझ पर है।' इस समय मैं तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता तो क्या तुम्हें छोड़कर भाग जाऊं ?'

देवी गम्भीर वाणी में बोली, 'अच्छा, यदि जान बचने का कोई उपाय होगा तो मैं करूंगी।' कहकर प्रफुल्ल ने आकाश की ओर देखा, परन्तु तुरन्त ही निराश होकर बोली, 'परन्तु मेरे बचने से एक दूसरा अमंगल होगा।'

'वह क्या ?'

'मैंने सोचा था यह बात तुम्हें न बताऊं, परन्तु अब बिना बताए चारा नहीं है। इन सिपाहियों के साथ मेरे ससुर हैं। मैं न पकड़ी गई तो उन पर विपत्ति आ सकती है।'

ब्रजेश्वर सिहर उठा यह सुनकर। वह माथा ठोंककर बोला, 'क्या वही मुखबिर हैं ?'

प्रफुल्ल चुप रही। ब्रजेश्वर सब कुछ समझ गया। इस स्थान पर देवी चौधरानी के मिलने की बात हरिवल्लभ ने ब्रजेश्वर से सुनी थी। देवी की गूढ़ मंत्रणा और कोई नहीं जान सकता था। हरिवल्लभ ने इसीलिए रुपया चुकाने का कोई यत्न नहीं किया था, यह समझने में ब्रजेश्वर को अधिक समय नहीं लगा। उनका हृदय अपने पिता के प्रति घृणा से भर गया।

फिर भी वह बोले, 'मैं मरूं तो कोई हानि नहीं। तुम्हारा मरना उससे अधिक दुःखकर होगा, परन्तु मैं उसे देखने नहीं आऊंगा। फिर भी पिताजी की रक्षा अवश्य करनी है।'

'उसकी चिन्ता न करो। मेरी रक्षा नहीं होगी, अतः उन्हें कोई भय नहीं है। उनकी रक्षा से तुम्हारी रक्षा हो जाएगी। मैं प्रतिज्ञा करती हूं कि उनके अमंगल की शंका रहते अपनी रक्षा के लिए प्रयत्न न करूंगी। तुमने कहा तब भी वही बात है, न कहते तब भी वही होता।'

उसी समय जंगल में शंख-नाद हुआ। उसे सुनकर प्रफुल्ल चौंक पड़ी।

देवी ने पुकारा, 'निशि !'

निशि दौड़कर छत पर आई।

'यह शंख-नाद किसने किया ?'

'दाढ़ी वाले बाबा का लगता है।'

'रंगराज का ?'

'हां ऐसा ही प्रतीत हो रहा है।'

'परन्तु मैंने तो उन्हें सवेरे देवोगढ़ भेजा था।'

'शायद मार्ग से लौट आए हैं ?'

'उन्हें बुलाओ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रजेश्वर बोला, 'नाद दूर से आया था। यहां से आवाज वहां तक नहीं पहुंचेगी। मैं उतरकर खोज लाता हूं।'

देवी बोली, 'आपको कुछ नहीं करना है। आप नीचे जाकर निशि के पास बैठें।'

निशि और ब्रज नीचे गए। निशि ने अपनी वंशी निकाली। उसने वंशी पर मल्हार छेड़ा। रंगराज बजड़े पर आ गए।

ब्रजेश्वर निशि से बोला, 'तुम छत पर जाओ। क्या बातें होती हैं, आकर मुझे बताना।'

निशि स्वीकार कर कमरे के बाहर निकली और फिर लौटकर ब्रजेश्वर से बोली, 'जरा बाहर आकर देखिए।' ब्रजेश्वर ने देखा तो जंगल में से असंख्य लोग निकल रहे थे। उसने पूछा, 'ये कौन हैं ? सिपाही हैं क्या ?'

'ये बरकन्दाज हैं। रंगराज के सैनिक।'

देवी भी उन्हीं को देख रही थीं। तभी रंगराज ने आकर उन्हें आशीर्वाद दिया। देवी ने पूछा, 'तुम यहां कैसे रंगराज ?'

'मैं देवीगढ़ जा रहा था। रास्ते में ठाकुरजी से भेंट हो गई।'

'भवानी ठाकुर से ?'

'उनसे सुना कि कम्पनी के सिपाही आपको पकड़ने आ रहे हैं। हम दोनों बरकन्दाज इकट्ठे करके इधर आए हैं। अब उनकी नाव को इधर आते देखकर मैंने शंख बजाकर संकेत दिया था।'

'उस जंगल में भी सिपाही हैं ?'

'हम लोगों ने उन्हें घेर लिया है।'

'ठाकुर जी कहां हैं।'

'वह बरकन्दाजों को लेकर बाहर निकल रहे हैं ?'

'तुम कितने बरकन्दाज लाए हो ?'

'एक हजार के लगभग होंगे।'

'सिपाही कितने होंगे ?'

'पांच सौ ?'

'पन्द्रह सौ की लड़ाई में कितने मरेंगे ?'

'दो चार सौ मर सकते है।'

'ठाकुर जी से कहो, इस काम से मुझे मर्मांतक पीड़ा पहुंची है।'

'क्यों मां ?'

'मेरे प्राण बचाने के लिए तुम लोग इतने लोगों के संहार को उद्यत हुए हो। तुम्हें धर्म-ज्ञान नहीं है ? मेरी आयु समाप्त हो चुकी है। मैं अकेली ही मरूंगी। मेरे लिए चार सौ आदमी क्यों मरें ? मुझे क्या तुम लोगों ने इतना नीच समझा है कि मैं इतने लोगों का प्राण लेकर अपना प्राण बचाऊंगी ?'

'आपके रहने से अनेकों प्राणों की रक्षा होगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी ने क्रोधपूर्ण स्वर में कहा, 'रंगराज ! ठाकुर जी से कहो कि इसी क्षण बरकन्दाजों के साथ लौट जाएं। विलम्ब होगा तो मैं पानी में कूदकर प्राण दे दूंगी।'

रंगराज का मुंह उतर गया। वह बोला, 'मैं जा रहा हूं मां ! ठाकुर जी से कह दूंगा। वह जो उचित समझेंगे, करेंगे। मैं तो दोनों का आज्ञाकारी हूं।'

रंगराज चला गया। निशि रंगराज के जाने के बाद देवी से बोली, 'अपने प्राणों को तुम जो भी चाहे करो, परन्तु आज तुम्हारे पति तुम्हारे पास हैं। उनका भी खयाल नहीं किया तुमने ?'

'किया है बहिन ! खयाल करके भी मैं कुछ न कर पाई। अब जगदीश्वर का भरोसा है। अपने पति का प्राण बचाने के लिए भी मैं इतने व्यक्तियों के प्राण नहीं ले सकती। मेरे पति मेरे लिए सब कुछ हैं, परन्तु उनके यह कौन हैं ?'

निशि चकित रह गई। वह बोली, 'देवी ने सच्चा निष्काम धर्म सीखा है। आपके साथ मरना भी सुखकर होगा।'

निशि ने यह सब ब्रजेश्वर से कहा। ब्रजेश्वर प्रफुल्ल को अपनी स्त्री न समझ सका। उसने कहा, 'वह सचमुच देवी हैं। मैं महापापी उसे डाकू कहकर उसकी भर्त्सना करने चला था।'

नाव बजड़े के निकट आ गई। प्रफुल्ल निश्चल बैठी रही।

प्रफुल्ल की दृष्टि दूर आकाश पर लगी थी। वह 'जय जगदीश्वर' कहकर छत से नीचे उतर आई।

निशि ने पूछा, 'अब क्या करोगी देवी ?'

'अपने पति की रक्षा।'

'और अपनी।'

'मेरी बात न पूछो। मैं जो कहती या करती हूं उसे सावधानी से देखो। मेरा तुम्हारा चाहे जो हो, मुझे अपने पति, दिवा और सुसर को बचाना है।'

यह कहकर देवी ने शंक में फूंक मारी। निशि बोली, 'यह अच्छा किया आपने।'

15

जंगलों से बरकन्दाजों का दल बाहर निकलने लगा। उन्होंने देखा, नावें काफी निकट आ पहुंची थीं और वे बजड़ा घेर लेंगी। वे दौड़ पड़े। 'रानी जी की जय' कहकर वे बजड़ा घेरने चले। उन्होंने बजड़ा घेर लिया और नावों ने उन्हें घेर लिया शंख बजाते ही बरकन्दाज बजड़े पर आ चढ़े। वे बजड़े के माझी थे। वे अपने-अपने स्थान पर डांडा, पतवार पकड़कर बैठ गए। सिपाहियों ने बन्दूकों पर संगीने चढ़ा कर उन पर आक्रमण किया। चारों ओर लड़ाई होने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रफुल्ल ने सोचा, 'भवानी ठाकुर तक उनकी बात पहुंच नहीं पाई, या उन्होंने सुनी नहीं। अच्छा आज वह भी मेरा काम देखें।'

देवी के पास एक सफेद झण्डा था। उन्होंने बाहर आकर उसे फहरा दिया।

उस झण्डे को देखते ही लड़ाई बन्द हो गई। जो जहां था, हथियार रोककर खड़ा हो गया। देवी ने ब्रजेश्वर से कहा, 'तुम यह झण्डा पकड़े रहो। रंगराज यहां आएं तो उनसे कहना कि अन्दर आयें।'

यह कहकर देवी ब्रजेश्वर को झण्डा पकड़ाकर अन्दर चली गईं। तभी रंगराज वहां आया। उसने ब्रजेश्वर के हाथ में सफेद झण्डा देखकर पूछा, तुमने किसकी आज्ञा से यह झण्डा फहराया ?'

'रानी जी की आज्ञा से।'

'तुम कौन हो ?'

'पहिचान नहीं रहे ?'

रंगराज बोले, 'पहिचान गया। तुम ब्रजेश्वर बाबू हो ? यहां क्यों आए हो ? बाप-बेटे एक ही काम से आए हो क्या ? कोई इसे बांधो।'

आज्ञा पाकर दो व्यक्ति ब्रजेश्वर को बांधने के लिए आए। ब्रजेश्वर ने कोई आपत्ति न की। वह बोले, 'मुझे बांध लो, कोई हानि नहीं, परन्तु यह बताओ कि सफेद झण्डा देखकर युद्ध रुक क्यों गया ?'

रंगराज बोले, 'जानते नहीं सफेद झण्डा देखकर अंग्रेज लड़ाई बन्द कर देते हैं।'

'मैं नहीं जानता था। खैर, तुम पूछ आओ कि मैंने रानी जी की आज्ञा से सफेद झण्डा फहराया है। तुम्हारे लिए आदेश है कि उनसे आज्ञा प्राप्त करो।'

रंगराज सीधे अन्दर पहुंचा। वह बोला, 'रानी मां !'

'कौन, रंगराज ?'

'जी हां। हमारे बजड़े से सफेद झण्डा क्यों दिखाया गया ?'

'मैंने आज्ञा की है। तुम सफेद झण्डा लेकर लेफ्टीनेंट के पास जाओ और कहो कि लड़ने की आवश्यकता नहीं है। मैं आत्मसमर्पण कर रही हूं।'

'मेरा शरीर रहते यह न होगा।' रंगराज बोला।

'प्राण देकर भी मेरी रक्षा न कर सकोगे।'

'तब भी प्राण दूंगा।'

'मूर्खों जैसी बातें न करो। सिपाहियों की बन्दूकों के सामने लाठी-सोटा नहीं चलेगा।'

'रक्त एक बूंद नहीं बहेगा। मैं गोली के सामने खड़ी हो जाऊंगी। तुम मुझे न बचा पाओगे। इस समय मेरे पकड़े जाने से तुम्हें भागने का अवसर रहेगा। मुझे छुड़ाने में अपना प्राण न दो। मेरे पास बहुत रुपया है। कम्पनी के आदमी रुपए के दास हैं। मैं भाग निकलूंगी।'

देवी ने घूस देकर भागने की बात रंगराज को फुसलाने के लिए कही थी। वैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने सरल भाव से आत्मसमर्पण करने का निश्चय किया हुआ था।

रंगराज बोले, 'जो देकर आप उन्हें अपने वश में करेंगी, वह तो बजड़े में है। पकड़ी जाने पर अंग्रेज बजड़ा भी ले लेंगे।'

'तुम उनसे कह देना कि केवल मुझे ही पकड़ सकेंगे, बजड़े को नहीं। मैं इसी शर्त पर आत्मसमर्पण करने को उद्यत हूं।'

'यदि वे न माने और बजड़ा लूटने आएं तब ?'

'कह देना बजड़े पर आयेंगे तो मैं नहीं पकड़ी जाऊंगी। उनके बजड़े पर चढ़ते ही लड़ाई शुरू हो जाएगी। हमारी बात स्वीकार करें तो मैं स्वयं उनकी नाव पर चली जाऊंगी।'

रंगराज ने सोचा, इस सब में अवश्य कोई कौशल है।

देवी ने पूछा, 'भवानी ठाकुर कहां हैं ?'

'वह बरकन्दाजों को लेकर युद्ध कर रहे हैं। उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी। शायद वह वहीं होंगे।'

'पहिले उनके पास जाओ। उनसे कहो कि तुरन्त लौट जायें। मेरे लिए बजड़े के लोगों को छोड़ जाएं। मेरी रक्षा के लिए युद्ध की आवश्यकता नहीं है। मेरी रक्षा का भगवान उपाय कर रहे हैं।'

रंगराज बोले, 'मां ! एक आज्ञा चाहता हूं। हरिवल्लभराय आज का मुखबिर है। उसके लड़के ब्रजेश्वर को मैंने नाव पर देखा है। उसका उद्देश्य अच्छा नहीं है। उसे बांधकर रखना चाहता हूं।'

यह सुनकर निशि और दिवा हंस पड़ीं।

देवी बोली, 'नहीं, बांधना नहीं। उन्हें अभी चुपचाप छत पर बैठा रहने को कहो।'

रंगराज ने ब्रजेश्वर को छत पर बिठा दिया और भवानी ठाकुर को जाकर देवी का संदेश दिया। आकाश में मेघ देखकर भवानी ने आपत्ति नहीं की। वह बरकन्दाजों के साथ लौटने लगे।

तभी निशि मल्लाहों के कान में कुछ कह गई।

भवानी ठाकुर को विदा कर रंगराज सफेद झण्डा लेकर लेफ्टीनेण्ट के पास गया। कोई उससे कुछ नहीं बोला। साहब ने पूछा, 'तुम लोग आत्मसमर्पण करोगे ?'

'हम लोग नहीं, आप जिसे पकड़ने आए हैं, वह आत्मसमर्पण कर रही हैं।'

'देवी चौधरानी आत्मसमर्पण करेंगी !'

'जी हां।'

'और तुम लोग ?'

'हम लोग कौन ?'

'देवी चौधरानी के दल के लोग ?'

'वे नहीं करेंगे।'

'मैं उन्हें उनके दल के साथ पकड़ने आया हूं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दल में कौन-कौन हैं ? इन हजारों बरकन्दाजों में से कितनों को पकड़ेंगे आप?'

भवानी ठाकुर अभी गए नहीं थे, जाने का प्रयत्न कर रहे थे।

साहब बोले, 'ये सब डाकू हैं। हम इन सबको पकड़ेंगे।'

तभी साहब ने देखा बरकन्दाज सेना जा रही थी। वह गरजकर बोले, 'तुम लोग सफेद झण्डा दिखलाकर भाग रहे हो ?'

'तुमने पकड़ा किसे है, जो भाग रहे हैं। अभी कोई नहीं भागा है। पकड़ सको तो पकड़ो।' यह कहकर रंगराज ने सफेद झण्डा फेंक दिया। सिपाही साहब की आज्ञा न पाकर चुपचाप खड़े रहे।

साहब ने उनका पीछा करना व्यर्थ समझा। वह बोले, 'उन्हें जाने दो। तो तुम सब आत्मसमर्पण करोगे ?'

'केवल देवी रानी।'

'अब लड़ेगा कौन ? ये थोड़े से लोग ? तुम्हारी सेना तो जंगल में घुस गई।'

रंगराज ने देखा भवानी ठाकुर जंगल में जा चुके थे। वह बोले, 'मैं यह नहीं जानता। मुझे जो आज्ञा मिली है वह कहता हूं। बजड़ा नहीं मिलेगा, बजड़े का धन नहीं मिलेगा, हममें से कोई नहीं मिलेगा, केवल देवी रानी मिलेंगी।'

'क्यों ?'

'मैं नहीं जानता।'

'मैं सबको कब्जे में करूंगा।'

'साहब बजड़े पर मत चढ़ना, उसे छूना नहीं, वरना शामत आ जाएगी।'

'हमारा पांच सौ सिपाहियों का तुम्हारा दो-चार आदमी आफत करेगा ?' यह कहकर साहब ने भी सफेद झण्डा फेंक दिया और सिपाहियों से कहा, 'बजड़ा घेरो।'

साहब ने आदेश दिया, 'बजड़े पर चढ़कर बरकन्दाजों के हथियार छीन लो।'

देवी ने आदेश दिया, 'बजड़े पर जिसके पास हथियार हो पानी में फेंक दो।' सुनते ही बजड़े के हथियार पानी में गिर गए। यह देखकर साहब बोले, 'अब बजड़े पर देखता हूं क्या है।'

'आप बल-प्रयोग कर ऊपर न चढ़ें। आपको कुछ हो जाए तो मुझे दोष न देना।'

'तुम्हारा क्या दोष ?' यह कहकर साहब एक सशस्त्र सिपाही के साथ बजड़े पर चढ़ गए।

साहब रंगराज के साथ अन्दर पहुंचे तो द्वार खुल गया। कमरे का ठाट देखकर साहब आश्चर्यचकित रह गए।

दो मसनदों पर स्वर्ण-रत्न आदि से आभूषित दो सुन्दरियां बैठी थीं। उनके बदन पर बहुमूल्य वस्त्र और अलंकार थे। रंगराज ने देखा उनमें एक निशि थी, एक दिवा।

साहब के लिए एक चांदी की चौकी रक्खी गई। वह उस पर बैठ गए। रंगराज देवी को खोज रहे थे। एक कोने में साधारण वेश में देवी खड़ी थीं।

साहब ने पूछा, 'देवी चौधरानी कौन है ? किससे बातें करूं ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निशि बोली, 'मुझसे बात कीजिए। मैं देवी हूं।'

दिवा हंसकर बोली, 'दिल्लगी न करो ? यह दिल्लगी का समय नहीं है। लेफ्टिनेण्ट! यह मेरी बहिन दिल्लगी बहुत करती है, परन्तु यह दिल्लगी का अवसर नहीं है। आप मुझसे बातें कीजिए, मैं देवी चौधरानी हूं।'

निशि बोली, 'तू क्यों मेरे लिए फांसी चढ़ना चाहती है ?' फिर साहब से बोली, 'यह मेरी बहिन है। स्नेहवश मुझे बचाने के लिए आपको धोखा दे रही है। मैं इसके प्राण लेकर अपने प्राण नहीं बचा सकती ? चलिए कहां चलना होगा, मैं देवी चौधरानी हूं।'

दिवा बोली, 'साहब ! आपको ईसा की कसम जो आप निरपराध को पकड़ें। देवी मैं हूं।'

साहब परेशान होकर रंगराज से बोले, 'यह क्या गोलमाल है ? तुम बताओ, इनमें देवी चौधरानी कौन है।'

रंगराज केवल यही समझ रहा था कि उसमें कोई भेद था। वह निशि की ओर संकेत करके बोला, 'हुजूर, यह देवी रानी हैं।'

तब देवी आगे बढ़कर बोलीं, 'मुझे इस बीच में न आना चाहिए, परन्तु झूठी बात पकड़ी जाने पर सब मारे जाएंगे, इसलिए कहती हूं यह झूठ है।'

साहब ने देवी से पूछा, 'तब देवी कौन है ?'

'मैं देवी हूं।' वह बोली।

अब देवी, निशि, दिवा और रंगराज में झगड़ा होने लगा।

लेफ्टिनेण्ट साहब बोले, 'तुम दोनों में से कौन देवी रानी है। वह दासी है। वह देवी नहीं हो सकती। मैं दोनों को पकड़कर ले जाऊंगा। बाद में जो देवी चौधरानी सिद्ध होगी, उसे फांसी दी जाएगी।'

तब निशि और दिवा बोलीं, 'इतने झंझट की क्या बात है ? आप मुखबिर को बुला लें। वह बता देगा कौन देवी चौधरानी हैं।'

देवी का अभिप्राय हरिवल्लभ को बजड़े पर बुलाना था। उनकी रक्षा का उपाय किए बिना देवी अपनी रक्षा का उपाय न करतीं।

साहब ने मुखबिर को बुलाने की आज्ञा दी।

हरिवल्लभ कमरे की ओर बढ़े। वह कमरे की सजावट को देखकर चकित रह गए। वह साहब को सलाम करना भूलकर निशि को सलाम कर बैठे। निशि हंसकर बोली, 'बन्दगी खां साहब ! मिजाज तो खुश हैं आपके ?'

दिवा हंसकर बोली, 'खां साहब बन्दगी। मुझे सलाम नहीं की। रानी को भूल गए आप ?'

साहब हरिवल्लभ से बोले, 'ये दोनों अपने को देवी चौधरानी कहती हैं। इनमें कौन देवी चौधरानी है ?'

हरिवल्लभ बड़ी कठिनाई में पड़े। उन्होंने देवी को नहीं देखा था। कुछ सोचकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने निशि की ओर संकेत किया। निशि खिलखिलाकर हंस पड़ी। वह घबराकर बोले, 'भूल हुई।' इतना कहकर उन्होंने दिवा की ओर उंगली उठा दी। दिवा भी खिलखिलाकर हंस पड़ी। हरिवल्लभ ने घबड़ाकर फिर निशि को दिखलाया। साहब गरम होकर बोले, 'बद्‌जात ! सूअर ! पाजी कहीं का। पहिचानता नहीं। बदमाशी करता है हमारे साथ।'

दिवा बोली, 'साहब ! शायद हमें यह नहीं पहिचानते। इनका लड़का पहिचानता है। वह बजड़े की छत पर है। वह पहिचान लेगा।'

हरिवल्लभ घबड़ाकर बोले, 'मेरा लड़का ब्रजेश्वर !'

'जी हां, वही।'

'वह कहां है ?'

'बजड़े की छत पर है।'

'वह यहां कैसे आया ?'

'यह सब तो वही बताएंगे।'

साहब ने उसे बुलाने की आज्ञा दी। रंगराज ने ब्रजेश्वर से कहा, 'आपको दिवा ठकुरानी बुला रही हैं।'

ब्रजेश्वर उतरकर कमरे में आया। साहब ने ब्रजेश्वर से पूछा, 'तुम देवी चौधरानी को पहिचानते हो ?'

'जी, पहिचानता हूं।'

'देवी चौधरानी इनमें कौन-सी हैं ?'

वह इनमें नहीं है।'

साहब क्रोध से पागल होकर बोला, 'क्या इन दोनों में कोई भी देवी चौधरानी नहीं है ?'

'ये दोनों उनकी दासी हैं। वह इनमें नहीं हैं।'

'तुम देवी को पहिचानते हो ?'

'अच्छी तरह पहिचानता हूं।'

'यदि ये देवी नहीं हैं तो वह बजड़े पर कहीं छिपी होगी। शायद वह दासी ही देवी हो। मैं बजड़े की तलाशी लूंगा। तुम मेरे साथ चलकर मुझे बताओ।'

'आप तलाशी लो, मैं क्यों बताऊं ?'

साहब गरजकर बोले, 'बदजात ! तुम मुखबिर नहीं हो ?'

'नहीं, मैं आपका मुखबिर नहीं हूं।'

'सर्वनाश !' हरिवल्लभ के मुख से निकला।

बाहर से जमादार चिल्लाया, 'हजूर तूफान।'

आसमान से भयंकर वेग से आती हुई हवा सांय-सांय करने लगी। कम्पनी की नावें आपस में टकराने लगीं।

साहब गरजकर बोला, 'तुम मुखबिर का लड़का नहीं है, हरामखोर बदमाश ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रजेश्वर साहब की गाली सहन न कर सका। उसने उसके गाल पर इतने जोर का घूंसा लगाया कि वह लड़खड़ाकर नीचे गिर पड़ा।

तभी कमरे में शंखनाद हुआ।

शंख बजते ही मल्लाह रस्से खोलकर बजड़े पर चढ़ गए। किनारे के सिपाहियों ने संगीनें उठाईं, परन्तु वे उठी ही रह गईं। पलक मारते देवी के कौशल से एक क्षण में कम्पनी के पांच सौ सिपाही खड़े-के-खड़े रह गए।

प्रचण्ड वेग से आंधी का झोंका आया और बजड़ा घूम गया। साहब ब्रजेश्वर पर घूंसा उठा रहे थे, तभी उन्हें रंगराज ने पीछे से कस कर पकड़ लिया।

रंगराज के साहब को पकड़ने पर एक सशस्त्र सैनिक उन पर झपटा। ब्रजेश्वर ने उसकी बन्दूक उससे छीनकर नदी में फेंक दी।

रंगराज ने साहब की तलाशी लेकर उनका रिवाल्वर छीन लिया और उसे भी नदी के हवाले कर दिया। अब साहब चुपचाप चांदी की चौकी पर बैठ गए।

साहब की फौज, जो बजड़े को घेरे खड़ी थी, बजड़ा उस पर से होकर निकल गया। कुछ ने डुबकी लगाकर प्राण बचाए। पानी अधिक न था, इसलिए कोई मरा नहीं। बजड़ा टूटे तारे के समान उड़ता हुआ आंधी के साथ उड़ चला। सिपाहियों की सेना छिन्न-भिन्न हो गई। लेफ्टिनेण्ट और हरिवल्लभ अब उनके बन्दी थे।

16

बजड़ा पानी को चीरता हुआ, तीर की तरह उड़ा जा रहा था। भयंकर शब्द हो रहा था।

रंगराज बाहर द्वार से पीठ लगाकर बैठ गए। उस समय बाहर से सतर्क रहने की आवश्यकता था, क्योंकि बजड़ा बहुत ही तीव्र गति से भागा जा रहा था।

दिवा देवी के पास चली गई। निशि वहीं बैठी रही।

साहब सोच रहे थे कि अब डाकुओं से छुटकारा कैसे मिले। वह जिन्हें पकड़ने आए थे उन्हीं के हाथों पकड़े गए। अब कलक्टर को क्या मुंह दिखाएंगे ?

हरिवल्लभ निशि के पास बैठे थे। निशि बोली, 'आप थोड़ा लेट लीजिए, थक गये होंगे।'

'आज नींद नहीं आएगी।'

'आज न आएगी तो कब आएगी ?'

'क्यों फिर क्या होगा ?'

'आप देवी चौधरानी को पकड़वाने आए थे न ? देवी पकड़ी जातीं तो क्या होता?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानते हो उन्हें फांसी दी जाती। वही आपके साथ किया जाएगा !'

'ऐं ! फांसी... ।'

'देवी ने तुम्हारा क्या अनिष्ट किया था, जो तुम इस नीच कर्म पर उद्यत हुए। तुम जेल जा रहे थे। देवी ने तुम्हें पचास हजार रुपया देकर तुम्हारी रक्षा की। तुमने भलाई का यह बदला दिया ? तुमने उन्हें फांसी दिलवानी चाही। बोलो, तुम जैसे नीच को क्या दण्ड मिलना चाहिए।'

हरिवल्लभ चुप रहे। उनके मुख से एक शब्द भी न निकला।

निशि बोली, 'इसी से कहती हूं सो लो। फिर सोना न मिलेगा। नौका कहां जा रही है, जानते हो ?'

हरिवल्लभ में बोलने की शक्ति नहीं थी। उन्होंने निराश दृष्टि से निशि की ओर देखा।

निशि बोली, 'हम लोग अब शमशान में जा रहे हैं। वहां जाकर साहब को फांसी दी जाएगी और जानते हो तुम्हारे लिए क्या आज्ञा हुई है देवी की ?

हरिवल्लभ हाथ जोड़कर बोला, 'मुझे बचाओ। मुझे फांसी न देना। मेरी ब्राह्मणी रोएगी।'

'कौन पापी तुम्हें बचाए ? तुम्हें सूली पर चढ़ाया जाएगा।'

हरिवल्लभ फफक-फफककर रोने लगे। आंधी के भीषण नाद में उनके रोने की आवाज किसी ने न सुनी। साहब उनका रोना सुनकर बोला, 'रो मत उल्लू ! मरना तो एक ही बार है। क्या रोज-रोज मरेगा तू ?'

हरिवल्लभ रोकर बोले, 'क्या तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकतीं ?'

'तुम जैसे नीच को बचाकर कौन पाप कमाएगा ? रानी बड़ी दयामयी हैं, परन्तु तुम्हारे लिए उनसे कौन दया की भीख मागे ?'

'कहते लज्जा नहीं आती। पचास हजार रुपए के लिए तो तुमने यह कृतघ्नता बरती। अब लाख रुपए की बात हांकते हो ?'

'मुझसे जो कहोगी वही करूंगा, परन्तु मेरी जान बचाओ।'

निशि सोचकर बोली, 'एक काम निकल सकता है, परन्तु नहीं। मैं तुमसे कोई काम नहीं कराऊंगी।'

तुम्हारे पैर पकड़ता हूं।' यह कहकर हरिवल्लभ ने निशि के पैर पकड़ लिए।

'तुम कृतघ्न, पापी, और मुखबिर हो। तुम्हारी बात का विश्वास कैसे किया जाए?'

'तुम जो कसम कहो, खाने को तैयार हूं।'

'ब्रजेश्वर के माथे की कसम खा सकते हो ?'

हरिवल्लभ को उस समय अपने प्राणों की पड़ी थी। वह हाथ जोड़कर बोले, 'ब्रजेश्वर की कसम तुम जो कहोगी मैं वही करूंगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुम तो हमारी मुट्ठी में हो। सुनो, मैं कुलीन की लड़की हूं। मेरी छोटी बहिन के लिए वर नहीं मिला है। मैं उसके विवाह की चिन्ता में हूं।'

'आयु कितनी है उसकी ?'

'यही तीस वर्ष होगी।'

'कुलीनों में यही सब कुछ होता है।'

'उसका विवाह न होने से मेरे पिता की जान चली जाएगी। तुम मेरे पिता का उद्धार करो। तुम मेरी बहिन से विवाह कर लो। मैं यही कहकर रानी जी से तुम्हारे प्राणों की भिक्षा मांग सकती हूं।'

हरिवल्लभ को अब कुछ सांस आया, परन्तु साथ ही गृहिणी का ध्यान आया तो वह कांप उठे। नई ब्राह्मणी को लेकर घर गए तो वह घर में नहीं घुसने देगी। फिर भी हरिवल्लभ प्राणों के लोभ में बोले, 'यह कौन बड़ी बात है ? कुलीनों की जात बचाना कुलीनों का धर्म है। पर मैं वृद्ध हूं, मेरी आयु क्या विवाह करने की है ? मेरा लड़का विवाह कर ले तो क्या काम न चलेगा ?'

'वह राजी हों तो उनसे भी काम चल सकता है।'

'मैं उससे कहूंगा तो राजी क्यों न होगा ?'

'तब आप उन्हें ही आज्ञा दें। मैं आपको पालकी मंगाकर घर भेज दूंगी। आप घर पहुंचकर बहू-भात का प्रबन्ध करें। हम ब्याह करके बहू को उनके साथ भेज देंगी।'

हरिवल्लभ कहां सूली पर चढ़ रहे थे और कहां बहू-भात की तैयारी का काम उन्हें मिल गया। वह बोले, 'रानी जी से ये सब बातें कर लो। मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है।'

'मैं जा रही हूं।' कहकर निशि कमरे में चली गई। उसके जाने पर साहब हरिवल्लभ से बोले, 'वह स्त्री तुमसे क्या-क्या बातें कर रही थी ?'

'कोई विशेष बात नहीं की उसने।'

'तुम रो क्यों रहे थे ?'

'कहां रो रहा था मैं, मैं तो हंस रहा हूं।' यह कहकर हरिवल्लभ ने हंसने का प्रयास किया।

निशि से देवी ने पूछा, 'ससुरजी से तुम क्या बातें कर रही थीं अभी ?'

'देख रही थी कि मैं तुम्हारी सास बन सकती हूं या नहीं।'

'निशि ! तुमने अपना सर्वस्व श्रीकृष्ण को समर्पण कर दिया है, परन्तु देखती हूं फिर भी उपहास अपने लिए बचा रखा है।'

'देवता को अच्छी चीजें ही देनी चाहिए, खराब चीजें नहीं।'

आंधी रुकने पर नाव किनारे से लगी। देवी ने देखा प्रभात वेला आ गई थी। वह निशि से बोली, 'निशि ! आज का यह प्रभात देख रही हो कितना सुहावना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।'

निशि ने मुस्कुराकर कहा, 'आज तुम्हारा अवसान और मेरा उदय हुआ है।'

'मेरा अवसान ही मेरा सुप्रभात है। आज चौधरानी का सुप्रभात है, क्योंकि आज उसका अवसान है। अवसान में ही जीवन का उत्थान होता है निशि ! आज मेरे जीवन को वास्तविक शान्ति प्राप्त हुई है। आज मेरे हृदय की जलन शान्त हुई।'

निशि मौन रही। फिर कुछ ठहर कर बोली, 'आज देवी मर गई। प्रफुल्ल ससुराल जा रही है।'

'उसमें अभी देर है। तुम नाव बांधने को कहो।'

निशि ने मांझियों को बजड़ा किनारे बांधने की आज्ञा दी।

देवी ने कहा, 'रंगराज से पूछा, हम कहां पहुंचे ? यहां से रंगपुर और भूतनाथ कितनी दूर हैं ?'

रंगराज ने बताया, 'रंगपुर का यहां से कई दिन का रास्ता है। भूतनाथ एक दिन में पहुंचा जा सकता है।'

देवी निशि से बोली, 'ससुर जी को स्नान के बहाने बजड़े से नीचे भेज दो।'

दिवा बोली, 'इतनी क्या शीघ्रता है ?'

निशि रंगराज को बुलाकर हरिवल्लभ को सुनाती हुई बोली, 'साहब को फांसी देनी होगी। ब्राह्मण को अब सूली नहीं दी जाएगी, उसे स्नान के लिए भेज दो।'

हरिवल्लभ ने पूछा, 'मेरे लिए रानीजी की क्या आज्ञा है ?'

निशि बोली, 'मेरी प्रार्थना स्वीकार हो गई है। तुम स्नान करके आओ।'

रंगराज ने प्रबन्ध करके हरिवल्लभ को स्नान करने के लिए बजड़े से नीचे उतार दिया।

देवी निशि से बोली, 'साहब को भी छोड़ देने को कहो। वह रंगपुर लौट जाएं। उन्हें सौ मोहरें दे दो ?'

निशि ने सौ मोहरें रंगराज को देकर आदेश दिया।

रंगराज साहब से बोला, 'साहब ! उठो।'

'मुझे कहां जाना होगा ?'

'तुम हमारे कैदी हो। तुम यह पूछने वाले कौन होते हो ?'

साहब चुपचाप रंगराज के पीछे-पीछे चल दिया। वह चलकर उसी घाट से गुजरे जिस पर हरिवल्लभ स्नान कर रहे थे।

उन्होंने रंगराज से पूछा, 'साहब को कहां ले जा रहे हो ?'

रंगराज बोले, 'इस सामने वाले जंगल में।'

'वहां ले जाकर इनका क्या करोगे ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जंगल में ले जाकर इन्हें फांसी दी जाएगी।'

हरिवल्लभ कांप उठे। वह गायत्री का जाप भूल गए। फिर सन्ध्या भी ठीक से नहीं कर सके।

जंगल में ले जाकर रंगराज साहब से बोला, 'हम लोग किसी को फांसी नहीं देते और न ही हम कहीं डाका डालते हैं। देवी जी ने अब तक अपने जीवन में कभी कोई डाका नहीं डाला। तुम सीधे अपने घर लौट जाओ। हमारे पीछे न लगना। जाओ, तुम्हें मुक्त किया।' फिर पूछा, 'रंगपुर यहां से दूर है। जाओगे कैसे ?'

'जैसे भी होगा, चला जाऊंगा।'

'नाव ले लेना या गांव में जाकर घोड़ा खरीद लेना या पालकी कर लेना। ये लो, रानी ने तुम्हें ये सौ मोहरें मार्ग-व्यय के लिए दी हैं।'

साहब देवी का यह व्यवहार देखकर आश्चर्यचकित रह गया। उसने केवल पांच मोहरें लीं और बोला, 'इनसे मेरा काम चल जाएगा। मैं यह ऋण ले रहा हूं।'

'हम लेने आयें तो अदा कर देना। तुम्हारा कोई सिपाही घायल हुआ या मर गया हो तो सूचना देना।

'क्यों ?'

'रानी उसकी सहायता करेंगी।'

साहब को विश्वास न हुआ। वह कुछ कहे बिना ही वहां से चुपचाप चला गया।

रंगराज निकट के गांव से पालकी लेकर बजड़े की ओर चल पड़े।

ब्रजेश्वर अन्दर जाकर देवी के पास बैठ गए थे। देवी बोलीं, 'तुम्हारी आज्ञा का मैंने पालन किया। तुमने जान बचाने को कहा था, सो मैंने बचा दी। आज देवी चौधरानी मर चुकी अब प्रफुल्ल जीवित रहे या देवी के साथ प्रस्थान करे ?'

ब्रजेश्वर प्रफुल्ल को बाहुओं में भरकर बोला, 'अब मेरी प्रफुल्ल को कोई मुझसे पृथक् नहीं कर सकता। तुम मेरे साथ न चलोगी तो मैं भी न जाऊंगा।'

'मैं घर चलूं ! ससुर जी से पूछ लिया है ? आप तो मुझे तब भी घर से निकालना नहीं चाहते थे।'

तभी रंगराज पालकी लेकर आ गया। हरिवल्लभ भी सन्ध्या-पूजा करके लौट आए थे। उन्होंने ब्रजेश्वर को बुलाया। उन्होंने सोचा, 'मेरे लड़के को देखकर डाकू औरतें भी मुग्ध हो गईं हैं। चलो अच्छा ही हुआ। अपनी जान तो बच गई।'

वह ब्रजेश्वर से बोले, 'ब्रज ! तुम यहां कैसे आए ? खैर, यह बात पीछे होगी। मैंने इन लोगों को एक वचन दिया है। वह तुम्हें पूरा करना होगा। निशि ठकुरानी कुलीन हैं। इनके पिता को अपनी पुत्री के लिए वर नहीं मिल रहा है। इनकी जात जा रही है। कुलीनों की जात बचाना कुलीनों का धर्म है। मेरी इच्छा है कि तुम इनका उद्धार करो। तुम इसकी बहिन से विवाह कर लो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इसकी बहिन से विवाह कर लूं !' कुछ समझ में न आया।

निशि को हंसी आई, परन्तु वह गम्भीर बनी रही।

हरिवल्लभ बोले, 'मेरे लिए पालकी आ गई है। मैं घर जाकर बहू-भात का प्रबंध करूंगा। तुम विवाह करके बहू को लेकर घर आना।'

हरिवल्लभ ने प्रस्थान किया। उन्होंने पालकी पर चढ़कर दीर्घ श्वांस ली। मन में सोचा, 'चलो जान बची।'

हरिवल्लभ के चले जाने पर ब्रजेश्वर ने निशि से पूछा, 'यह सब क्या गोल-माल हुआ ? तुम्हारी बहिन कौन है ?'

'नहीं जानते उसका नाम प्रफुल्ल है।'

ब्रजेश्वर बोले, 'निशि ! मैंने तुम्हारी सब बातें सुनी थीं, परन्तु मैं इस प्रकार का छल नहीं करूंगा। मैं प्रफुल्ल को लेकर घर जाऊंगा और वहां पिताजी से सब बातें खोलकर कहूंगा।'

'क्या तुम्हारे पिता देवी चौधरानी को घर में घुसने देंगे ?'

देवी बोलीं, 'देवी चौधरानी की मृत्यु हो चुकी। अब प्रफुल्ल की बात करो निशि।'

'प्रफुल्ल को ही क्या वह घर में घुसने देंगे ? प्रफुल्ल को तो उन्होंने पहिले ही घर से निकाल दिया था।'

ब्रजेश्वर बोले, 'यह सब मुझे देखना है निशि, अन्य किसी को नहीं। अब प्रफुल्ल को मुझसे पृथक करने वाली कोई शक्ति नहीं है। ब्रजेश्वर वहीं रहेगा, जहां प्रफुल्ल रहेगी।'

ब्रजेश्वर के इन शब्दों को सुनकर देवी, दिवा और निशि को असीम शान्ति हुई।

वहां से वे लोग भूतनाथ के घाट पर पहुंचे। घाट पर बजड़ा लगते ही गांव वाले ब्रजेश्वर की नई बहू को देखने के लिए उतावले हो उठे। गांव की स्त्रियां उसे देखने दौड़ीं। बहू को देखने के लिए भीड़ लग गई। सास ने घूंघट उठाकर बहू का मुंह देखा तो चौंकी, परन्तु बोली, 'बहू बहुत अच्छी है।' उसकी आंखों में पानी भर आया। वह अन्य देखने आने वाली स्त्रियों से बोली, 'मेरे बेटा-बहू बहुत दूर से चलकर भूखे, प्यासे आ रहे हैं। बहू अब यहीं रहेगी। तुम लोग रोज देखोगी। इस समय अपने घर जाओ।'

पड़ौसिनें अपने-अपने घर लौट गईं। 'भीलनी-सी बहू है' कहकर सभी ने घृणा प्रकट की। कोई बोली, 'कुलीनों के यहां यही होता है।'

गृहिणी ब्रजेश्वर से एकान्त में बोली, 'बहू कहां मिली बेटा ?'

'यह नया विवाह नहीं है मां ! क्या अपनी प्रफुल्ल को आप पहिचानती नहीं।'

'मैं यही पूछ रही हूं कि यह खोया धन कहां से प्राप्त हुआ बेटा ?' उसकी आंखों में आंसू आ गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'विधाता की कृपा से प्राप्त हुआ है मां ! पिताजी से कुछ न कहना। मैं उन्हें सब कुछ समझा दूंगा।'

'तुम्हें कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है बेटा ! मैं सब कह दूंगी। बहू-भात हो जाए। तुम चिन्ता मत करो। तुम किसी से कुछ मत कहना।'

गृहिणी हरिवल्लभ से बोली, 'यह नया विवाह नहीं है। भाग्य से हमें अपनी बड़ी बहू मिल गई है।'

यह सुनकर हरिवल्लभ चौंक उठे, माना उन्हें बिच्छू ने काट लिया। वह बोले, 'ऐं ! बड़ी बहू ? किसने कहा ?'

'मैंने पहिचान लिया और ब्रज ने भी कहा है।'

'परन्तु वह तो दस वर्ष हुए मर चुकी।'

'मरा आदमी क्या कभी लौटता है ?'

'परन्तु इतने दिन वह रही कहां ?'

'यह सब मैंने अभी ब्रजेश्वर से नहीं पूछा है, पूछूंगी भी नहीं। जब ब्रज उसे घर लाया है तो समझ-बूझकर ही लाया होगा।'

'मैं पूछता हूं उससे।'

'तुम्हें मेरी कसम जो तुमने उससे कुछ भी कहा। एक बार तुम्हारे कहे से मैं अपना लड़का खो बैठी थी। अब यदि तुम कुछ कहोगे तो मैं नदी में कूदकर प्राण दे दूंगी।'

हरिवल्लभ बोले, 'तो लोगों में नये विवाह की ही बात फैली रहने दो। यह बात न कहना।'

गृहिणी ने यह समाचार ब्रजेश्वर को सुनाया तो वह बोला, 'नहीं, मैं इस तरह की चोरी की कोई बात न करूंगा। मेरी प्रफुल्ल देवी है। उसने हमारे परिवार की प्रतिष्ठा को बचाया है। जो पचास हजार रुपया देकर पिताजी ने अपनी रक्षा की थी वे उसी ने दिए थे।'

यह सुनकर हरिवल्लभ दंग रह गए।

प्रफुल्ल ने ब्रजेश्वर से कहकर सागर को बुलवा भेजा।

जो बुलाने गया था, उसने सागर को बताया कि ब्रजेश्वर एक और विवाह करके लाए हैं। यह सुनकर सागर को बड़ी घृणा हुई।

सागर ससुराल आई। आते ही वह पहिले नयन बहू के पास गई। सागर और नयन एक-दूसरे की आंख का कांटा थीं, परन्तु आज दोनों एक होकर मिलीं। नयन तारा की दशा हांडी में बन्द सांप जैसी थी। प्रफुल्ल के आने के पश्चात् उसकी केवल एक बार ब्रजेश्वर से भेंट हुई थी। उसकी गाली की चोट खाकर ब्रजेश्वर भाग खड़ा हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सागर बोली, 'सुना है एक और विवाह किया है ?'

'क्या जाने विवाह है या निकाह ?'

'ब्राह्मण का क्या निकाह होता है ?'

'ब्राह्मण है या शूद्र, या मुसलमान। मैं क्या देखने गई हूं ?'

'ऐसी बात न कहो। अपनी जात बचाकर बात करनी चाहिए।'

'जिसके घर में इतनी बड़ी लड़की ब्याह कर आए उसकी जात क्या रहती है?'

'कितनी बड़ी है ? हमारी ही आयु की होगी ?'

'तेरी मां के बराबर है।'

'बाल पके हैं क्या ?' सागर ने पूछा।

'बाल न पके होते तो रात-दिन घूंघट निकालकर क्यों रखती वह ?'

'दांत भी टूटे हैं ?'

'बाल पक गए तो क्या दांत न टूटते ? एक भी दांत नहीं है ?'

'ऐसा किया क्यों ?'

'कुलीनों के यहां यही सब होता है ?'

'शक्ल-सूरत से कैसी है ?'

'साक्षात् परी।'

'मैं जरा देख आऊं।'

'जा, जन्म सार्थक कर आ।'

नई सौत को खोजते-खोजते सागर ने उसे तालाब पर पकड़ा। प्रफुल्ल पीठ किए बैठी थी। सागर ने पीछे से पूछा, 'क्या तुम्हीं हमारी नई बहू हो जी ?'

'कौन, सागर ! आ गई तू ?' कहकर प्रफुल्ल ने सागर की ओर मुंह किया। सागर, विस्मित होकर बोली, 'देवी रानी ?'

'चुप, देवी मर चुकी।'

'प्रफुल्ल।'

'प्रफुल्ल भी मर चुकी।'

'तब तुम कौन हो ?'

'नई बहू।'

'यह सब कैसे हुआ, मुझे बताओ।'

'यह सब यहां कहने की बात नहीं है। घर चलो, वहीं सब बातें बताऊंगी।'

दोनों घर चली आईं। प्रफुल्ल ने सागर को सब समझाया। सागर बोली, 'क्या अब गृहस्थी में मन लगेगा ? रानीगिरी करने के बाद बर्तन मांजना, घर बुहारना भला लगेगा ? योग-शास्त्र के बाद ब्रह्म ठकुरानी बन सकोगी ? जिसके इशारे पर दो हजार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी नाचते थे, वह क्यों कर आज्ञा पालन कर सकेगी ?'

'कर सकेगी, तभी तो आई है। स्त्रियों का यही धर्म है। गृहस्थ-धर्म सबसे कठिन है। इससे बढ़कर कोई भी योग नहीं है। इससे कठिन और कौन संन्यास होगा ? मैं यही संन्यास धारण करूंगी अब।'

'तब कुछ दिन तुम्हारे पास रहकर मैं भी तुम्हारी शिष्या बनूंगी बहिन।'

ससुराल में रहकर सागर ने देखा प्रफुल्ल ने जो कहा था, वही किया। घर के सब लोग सुखी हुए। सास प्रफुल्ल से इतनी प्रसन्न थी कि घर का सारा भार उसे सौंपकर सागर के लड़के को लिए फिरती रहती थी। ससुर ने भी प्रफुल्ल का गुण समझा। अब जो काम वह न करती वह उन्हें अच्छा ही न लगता था। सास-ससुर प्रफुल्ल से पूछे बिना कोई काम नहीं करते थे। ब्रह्म ठकुरानी ने भी रसोई का भार प्रफुल्ल पर छोड़ दिया था। अब रसोई तीनों बहुएं बनाती थीं, परन्तु जिस दिन प्रफुल्ल कुछ नहीं बनाती थी, उस दिन किसी को कुछ अच्छा न लगता था। जिसके पास प्रफुल्ल न खड़ी होती थी वही सोचता था कि आज भरपेट भोजन न कर सका। अन्त में नयन बहू भी उसकी प्रशंसक बन गई। अब वह किसी से कलह नहीं करती थी। सागर इस बार बहुत दिन बाप के यहां जाकर नहीं ठहर सकी, लौट आई। अब सब लोगों के लिए बड़े आश्चर्य की बात थी, परन्तु प्रफुल्ल के लिए नहीं। प्रफुल्ल ने निष्काम धर्म का अभ्यास किया था। प्रफुल्ल गृहस्थी में आकर ही यथार्थ संन्यासिनी हुई थी। उसे कोई कामना नहीं थी। वह केवल काम खोजती थी। कामना का अर्थ है अपना सुख खोजना, काम का अर्थ है दूसरे का सुख खोजना। प्रफुल्ल भवानी ठाकुर द्वारा सान पर चढ़ाई हुई तलवार थी जिसने सांसारिक कष्टों को अनायास ही काट डाला था।

प्रफुल्ल का झगड़ा अब ब्रजेश्वर के साथ था। वह कहती थी, मैं अकेली ही तुम्हारी स्त्री नहीं हूं। तुम जैसे मेरे हो, वैसे ही सागर और नयन बहू के भी हो। वे दोनों भी तुम्हारी पूजा क्यों नहीं कर पातीं ? ब्रजेश्वर यह कुछ नहीं सुनता था। उसका हृदय केवल प्रफुल्लमय था। प्रफुल्ल कहती थी, 'मुझ जैसा ही उन्हें भी प्यार करो। अन्यथा मुझ पर तुम्हारा प्रेम पूर्ण न होगा। मैं और वे एक ही हैं।' यह ब्रजेश्वर की समझ में नहीं आता था।

अब घर के आर्थिक काम भी उसके हाथ में आ गए थे। जमींदारी के काम में भी गृहस्वामी कहते, 'नई बहू से पूछो, क्या करना चाहिए ?' प्रफुल्ल के परामर्श से घर की लक्ष्मी बढ़ने लगी। समय आने पर धन जन से पूर्ण घर छोड़कर हरिवल्लभ का प्राणान्त हुआ।

अब ब्रजेश्वर के पास काफी रुपया था। एक दिन प्रफुल्ल बोली, 'अब आप मेरा पचास हजार रुपया चुका दीजिए।'

'ब्रजेश्वर ने पूछा, 'तुम रुपया लेकर क्या करोगी ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रुपया मेरा नहीं, भगवान श्रीकृष्ण का है। मैं उसे उन्हें ही लौटा दूंगी।'

'किस तरह ?'

'पचास हजार रुपए से एक अतिथिशाला बनवा दो।'

'ब्रजेश्वर ने वैसा ही किया। अतिथिशाला में अन्नपूर्णा की मूर्ति स्थापित की। उसका नाम रखा गया 'देवी निवास।'

'रंगराज, दिवा और निशि 'देवी निवास' में श्रीकृष्ण सेवा के लिए आ गए। भवानी ठाकुर का कुछ पता न चला कि कहां चले गए।

कहते हैं भवानी ठाकुर दूसरे किसी द्वीप पर चले गए।

■■■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंकिम ग्रंथावली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

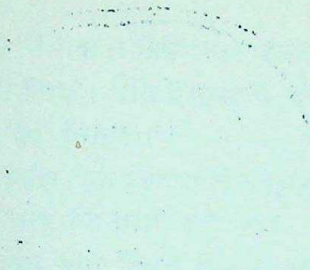

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंदिरा

1

मैं बहुत दिन पश्चात् अपनी ससुराल जा रही थी। उन्नीस वर्ष तक मैं शिक्षा प्राप्त करती रही। ससुराल न जाने का कारण यह था कि जब मेरे ससुर मुझे लेने के लिए आदमी को भेजते थे तो मेरे पिता उनसे कह देते थे, 'समधीजी से कह देना कि पहिले हमारे दामाद महोदय कमाना सीख लें और तब वह बहू को ले जाएं। जब तक वह कमाते नहीं हैं, तब तक मेरी लड़की को ले जाकर क्या खिलायेंगे ?'

यह सुनकर मेरे पति के मन में बेचैनी पैदा हो गई। उस समय उनकी आयु केवल बीस वर्ष की थी। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वह रुपया कमाएंगे और कोई काम करके अपने परिवार का पालन-पोषण करेंगे। यह विचार कर वह पश्चिम-दिशा की ओर चले गए। उस समय रेलें नहीं चलती थीं। पश्चिम जाने का मार्ग बहुत कठिन था। उन्होंने पैदल ही यात्रा की।

उनके पास फूटी कौड़ी भी नहीं थी। वह कठिन मार्ग तय करके पंजाब पहुंचे। उन्होंने वहां जाकर धन कमाया और धन अपने घर भेजने लगे। वह सात-आठ वर्ष तक अपने घर नहीं आए। उन्होंने मेरी भी कोई खबर नहीं ली। मेरा मन बहुत खिन्न रहता था। मुझे कभी-कभी अपने पिता पर क्रोध भी आता था कि उन्होंने धन कमाने की बात क्यों कही। क्या उनके लिए धन मेरे सुख से भी महत्वपूर्ण वस्तु थी ? मेरे पिता के पास बहुत धन था। मैं रुपयों से पत्थरों की तरह खेला करती थी। मैं कभी-कभी मन-ही-मन सोचा करती थी कि एक दिन रुपए बिछाकर उन पर सोकर देखूंगी कि उसमें मुझे कितना सुख मिलता है।

मैंने एक दिन अपनी मां से कहा, 'मां ! मैं रुपये बिछाकर उन पर सोऊंगी।' मां ने कहा, 'पगली कहीं की !' मां ने मेरी बात समझ ली। उन्होंने फिर क्या किया, मैं कह नहीं सकती, परन्तु जिस समय की बात मैं कह रही हूं, उसके कुछ दिन बाद ही मेरे पति हमारे यहां आये। मैंने सुना कि उन्होंने कमसरियट का काम करके अपार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके अपार धन कमाया था। मेरे ससुर ने मेरे पिता को पत्र में लिखा, 'आपके आशीर्वाद से उपेन्द्र ने बहू के पालन-पोषण के योग्य धनोपार्जन कर लिया है। मैं पालकी भेज रहा हूं। आप बहूरानी को भेज दीजिए। यदि आप अब भी न भेजेंगे तो मैं अपने लड़के का दूसरा विवाह कर लूंगा।'

पालकी में खिमखाम लगा था और ऊपर तथा बगल में चांदी के पत्तर जड़े थे। उनकी नौकरानी भी गहने पहिनकर आई थी। सोलह काली दाढ़ी वाले पालकी के कहार थे। मेरे पिता ने हंसकर कहा था, 'इन्दिरा बेटी ! अब मैं तुझे और अधिक नहीं रोक सकता। इस समय तुम जाओ। मैं तुम्हें शीघ्र ही बुलवा लूंगा।'

मेरी छोटी बहिन कामिनी ने पूछा था, 'दीदी ! अब कब आओगी ?'

मैंने उसका गाल दो अंगुलियों से पकड़ लिया था। कामिनी ने पूछा, 'दीदी ! ससुराल कैसी होती है, यह तो तुम कुछ भी नहीं जानती।'

मैंने कहा, 'जानती हूं। वह नन्दन-वन है। वहां कामदेव फूलों के बाण मार कर मनुष्य के जीवन को आनन्दमय कर देते हैं। वहां जाकर स्त्रियां अप्सरा हो जाती है और पुरुष देवता। वहां कोयल सदा कूकती रहती है। वहां अमावस्या को भी पूर्ण चन्द्र निकलता है।'

कामिनी ने हंसकर कहा, 'मौत है, और क्या दीदी! ससुराल तो मृत्यु का घर है। वहां आनन्द कहां से आया ?'

मैं कामिनी का यह आशीर्वाद लेकर अपनी ससुराल जा रही थी। मेरी ससुराल मनोहरपुर में थी और पीहर महेशपुर में। इन दोनों ग्रामों के बीच लगभग बीस कोस का अन्तर था। मैं प्रातःकाल चली थी। वहां पहुंचते पांच-सात घड़ी रात्रि हो जाएगी, यह मैं जानती थी।

मेरी आंखों में कुछ जल भर आया था। मैं सोच रही थी कि रात्रि में भली प्रकार देख भी नहीं पाऊंगी कि कैसे हैं। रात्रि में वह भी मुझे नहीं देख पाएंगे। मां ने मेरे केश सुन्दर बना दिए थे और आभूषण भी लाद दिए थे।

पालकी के अन्दर घुटकर मेरी शोभा मलिन-सी होती जा रही थी। प्यास से मेरा हलक सूख गया था और यात्रा की थकान से देह मुर्झा गई थी। तुम लोग हंस रहे होगे। तुम्हें मेरे सिर की शपथ, हंसना नहीं, मैं अपने पूर्ण विकसित यौवन को लेकर प्रथम बार ससुराल जा रही थी।

मार्ग में कालीदीघी नाम का एक बहुत बड़ा सरोवर था। उस सरोवर का जल लगभग आधे कोस में फैला हुआ था। उसके किनारे पर्वतों के जैसे ऊंचे वृक्ष थे। उस सरोवर के निकट से होकर मार्ग जाता था। सरोवर के चारों और बरगद के विशाल वृक्ष थे। उनकी छाया बड़ी सघन थी। सरोवर का जल बादल जैसा नीला और शीतल था। वहां बहुत कम लोग आते-जाते थे।

सरोवर के घाट के ऊपर केवल एक दुकान थी। उसके निकट जो गांव था, उसका नाम भी कालीदीघी ही था। उस सरोवर पर लोग जाने से डरते हुए भय खाते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। डाकुओं के भय से वहां बहुत से लोग मिलकर जाते थे। लोग उसे 'डाकुओं की कालीदीधी' कहते थे। उस दुकानदार को लोग-बाग डाकुओं का सरदार कहते थे। मुझे वहां कोई भय नहीं लग रहा था। मेरे साथ बहुत से आदमी थे, सोलह कहार, चार सेवक और कुछ अन्य लोग भी थे। जब हम लोग वहां पहुंचे तो ढाई प्रहर दिन ढल चुका था।

कहार बोले, 'हम यहां कुछ खा-पीकर आगे चलेंगे।'

सेवक बोले, 'यह स्थान ठीक नहीं है।'

कहारों ने कहा, 'हम लोगों को क्या भय है ? क्या हम कम हैं ?'

मेरे साथ के लोगों में से भी तब तक किसी ने भोजन नहीं किया था। उन्होंने कहारों की बात मान ली।

सरोवर के किनारे एक बरगद के वृक्ष के नीचे मेरी पालकी रख दी गई। यह देखकर मैं क्रोध से लाल हो उठी। मैंने ठाकुरजी से प्रार्थना की कि मैं शीघ्र ससुराल पहुंच जांऊं, परन्तु कहार पालकी को रखकर हवा खाने लगे थे। स्त्रियां अपने काम को सबसे बढ़कर समझतीं हैं। मैं उनके कन्धों पर रही थी। वे मुझे अपने कन्धों पर ढो रहे थे। अपनी भरी जवानी में मैं पति देव के दर्शनों की अभिलाषा में थी ओर वे मुझे अपने कन्धों पर लादे थे। यह सोचकर मुझे अपने पर ही क्रोध आ गया? मैंने कहा, 'धिक्कार है मेरे यौवन की यह उमंग।' जो दूसरों की ओर देखती।

यही सोचते-सोचते कुछ क्षण पश्चात् मैंने देखा कि वे सब लोग मुझसे पर्याप्त दूर चले गए। मैं पालकी का थोड़ा द्वार खोल कर सरोवर को देखने लगी, मैंने देखा सभी कहार दुकान के सामने वाले बरगद के पेड़ के नीचे बैठकर विश्राम कर रहे थे। वह स्थान मुझसे लगभग एक फर्लांग की दूरी पर था। मैंने देखा वह सरोवर घने बादल के समान फैला हुआ था। उसके चारों ओर पहाड़ी की कतार के समान ऊंचे टीलों और सरोवर के पानी के मध्य लम्बी-चौड़ी भूमि पर बरगद के वृक्षों की पंक्तियां थीं। टीलों पर बहुत से गाए-बछड़े घूम रहे थे। सरोवर के पानी पर जल-पक्षी उड़ रहे थे। लहरों के टकराने से कमल के फूल और सिवार हिल रहे थे। मैंने देखा कि अब दरबान जल में उतर का स्नान इत्यादि में निमग्न थे। उनके साथ ही ससुराल और नैहर की दासियां भी स्नान करने चली गई थीं। मेरे पास कोई नहीं था। मै। कुल-वधु थी, मुंह खोलकर किसी को पुकार भी नहीं सकती थी।

तभी कुछ शब्द हुआ। मुझे लगा कि बरगद के वृक्ष की डाली से कोई वस्तु नीचे गिरी। मैंने उस ओर देखा तो एक काली भयावनी आकृति का व्यक्ति था। मैंने उससे भयभीत होकर पालकी का द्वार बन्द कर लिया, परन्तु मैं समझ गई कि द्वार का खुला रहना ही उचित था।

मेरे द्वारा द्वार खोलने के पूर्व ही एक-दूसरा व्यक्ति वृक्ष से कूद पड़ा। देखते-ही-देखते उसी प्रकार चार व्यक्ति वृक्ष से कूदे और पालकी को कन्धे पर उठाकर भाग चले। मैं भयभीत और चकित-सी रह गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह देखकर मेरे सेवक, 'कौन है ?...कौन है रे...?' चिल्लाते हुए पानी से निकलकर उधर दौड़ पड़े। तब मैंने समझ लिया, कि मैं डाकुओं के हाथों में पड़ गई। अब लज्जा का क्या काम था ? मैंने पालकी के दोनों द्वार खोल दिए और सोचा कि कूद पड़ूं। मेरे साथ के आदमी चिल्लाते हुए पालकी के पीछे दौड़ रहे थे। उसी समय निकट के दूसरे वृक्षों से कूद कर वहां बहुत से डाकू आ गए। बरगदों की पंक्ति के नीचे डाकू पालकी लेकर जा रहे थे। उन सब पेड़ों पर से आदमी कूदने लगे। उनके हाथों में लाठियां थीं। यह देखकर मेरा पालकी से कूदने का साहस न हुआ।

इतने डाकुओं को देखकर मेरे साथ के आदमी ठिठकने लगे। मैंने एक बार निश्चय भी किया कि पालकी से कूदूं, परन्तु पालकी को वे इतनी तीव्र गति से ले जा रहे थे कि कूदना सम्भव नहीं था।

एक डाकू ने मुझे लाठी दिखाकर कहा, 'कूदेगा तो सिर फोड़ दूंगा। पालकी से बाहर न निकलना।' मैं भयभीत हो उठी।

मेरे एक सेवक ने आकर पालकी पकड़ ली, परन्तु उसके पालकी को पकड़ते ही एक डाकू ने उस पर लाठी का प्रहार किया। वह अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ा। मैंने उसे फिर उठते नहीं देखा। संभवतः वह फिर उठ ही नहीं सका होगा। उसके सिर से रक्त बह रहा था।

अन्य सेवक वहीं रुक गये। डाकू मुझे अबाध गति से लिये चले जा रहे थे। एक प्रहर तक वे उसी प्रकार दोड़ते रहे। अन्त में पालकी जंगल में जाकर रख दी। घने जंगल में घोर अंधकार था। डाकुओं ने प्रकाश के लिए मशाल जलाई और मुझसे कहा, 'तुम्हारे पास जो कुछ है वह हमें दे दो, नहीं तो तुम्हें प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे।'

मैंने अपने गहने-कपड़े सब उन्हें दे दिये। केवल देह का कपड़ा भर रह गया मेरे बदन पर। उन्होंने मुझे एक पुराना फटा कपड़ा दिया। उसे पहिनकर मैंने अपने बदन का कपड़ा भी उतार दिया। डाकुओं ने मेरा सब कुछ लेकर पालकी तोड़ी और उसकी चांदी निकाली। अन्त में टूटी हुई पालकी को उन्होंने जला दिया। फिर वे मुझे जंगली जानवरों के खाने के लिए छोड़कर वहां से जाने लगे तो मैं रो पड़ी। मैंने कहा, 'मैं तुम लोगों के पैर पड़ती हूं। तुम मुझे भी अपने साथ ले चलो।'

एक डाकू मुझे अपने साथ ले चलने को उद्यत भी हुआ, परन्तु एक वृद्ध डाकू बोला, 'बेटा ! ऐसी गोरी-चिट्टी लड़की को हम लोग कहां ले जायेंगे ? डकैती की बात फैल जायेगी। ऐसी सुन्दर लड़की हमारे साथ देखते ही पुलिस हमें पकड़ लेगी। हम इसे अपने साथ नहीं ले चलेंगे।'

जवान डाकू बोला, 'मैं इसे लेकर कहीं भाग जाता हूं। ऐसी सुन्दर लड़की के साथ पकड़ा जाना भी ठीक है। मैं इसे यहां न छोडूंगा।' उसने इससे आगे जो कहा, उसे कहा नहीं जा सकता, परन्तु वह वृद्ध डाकू जो उस दल का सरदार था, उसने उस जवान डाकू को लाठी दिखाकर कहा, 'इस लाठी से यहीं तेरा सिर फोड़कर रख दूंगा। क्या हम लोग यह पाप करते हैं ? पराई स्त्री पर बुरी दृष्टि से देखा तो आंखें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकाल लूंगा।'

वे सब चले गए और मैं जंगल में अकेली खड़ी रह गई। मेरे चारों ओर अंधकार था और जंगली जानवरों के भयंकर शब्द मुझे सुनाई दे रहे थे। मैं भय से थर-थर कांप रही थी। मुझे लग रहा था कि अभी कोई जंगली पशु आकर मुझे चीर-फाड़कर समाप्त कर देगा।

मैं स्वामी के दर्शन करने जा रही थी। अपने अंगों में रत्नजड़ित आभूषण पहिन कर, कितनी साध से बालों को बांधकर, पान से होठों को रंगकर मैं पिया-मिलन के लिए निकली थी। क्या कहकर यह अपना अमूल्य रतन उनके चरण-कमलों में भेंट करूंगी, मैं यह सोचती हुई जा रही थी। उस समय मुझ पर सहसा यह बिजली गिरी। मेरे सब आभूषण चले गये। फटा-पुराना गन्दा कपड़ा बदन पर लपेटने को मिला। डाकू बाघ-भालुओं के मुंह में झोंककर मुझे चलते बने। भूख-प्यास से मेरे प्राण निकल रहे थे। मैं सोच रही थी कि यदि अब प्राण न गये तो कहां जाऊंगी ? उनसे तो अब भेंट होगी नहीं। सम्भवतः माता-पिता को भी नहीं देख पाऊंगी। उस समय रोने से रुलाई भी नहीं आ रही थी।

मैंने सोचा, मैं रोऊंगी नहीं, परन्तु आंखों के आंसू किसी प्रकार रुक नहीं पा रहे थे। फिर भी उन्हें रोकने का निरन्तर प्रयत्न कर रही थी। उसी समय कुछ दूरी पर तीव्र गर्जन का स्वर सुनाई दिया। मैंने सोचा सम्भवतः बाघ है। मन में एक प्रकार की प्रसन्नता हुई। बाघ के मुझे खा जाने पर मेरा सब कष्ट जाता रहेगा। वह मुझे चीर-फाड़कर खा जाएगा।

मैं रोना बन्द करके, कुछ प्रसन्न होकर, शान्त हो गई औरे बाघ की प्रतीक्षा करने लगी। पत्तों में जितनी बार खड़-खड़ का शब्द हुआ, मैंने सोचा कि मेरे सब कष्टों का निवारण करने वाला बाघ आ रहा है, परन्तु बहुत रात बीत गई और बाघ नहीं आया। मेरी यह आशा भी टूट गई। फिर सोचा कि यह जंगल हैं, यहां सर्प भी हो सकते हैं। सर्प के ऊपर पैर रखने की आशा से मैं उस घिनके जंगल में घुसी। उसके अन्दर कितनी ही बार सर-सर शब्द सुना, परन्तु सर्प के ऊपर मेरा पैर नहीं पड़ा। मेरे पैरों में बहुत से कांटे अवश्य चुभ गए थे।

मैं हताश होकर वहां से लौट आई। मैं भूख-प्यास से थककर एक स्थान पर बैठ गई। तभी सामने से एक रीछ आया। मैंने सोचा आज इसी के द्वारा प्राण दूंगी। मैं रीछ पर आघात करने के लिए दौड़ी परन्तु उसने मुझसे कुछ नहीं कहा। वह सीधा वृक्ष पर चढ़ गया।

उस घिनके वट-वृक्ष पर मधु-मक्खियों का छत्ता था। रीछ उसे जानता था। उसने शहद पीने के लालच में मुझे छोड़ दिया। रात्रि के अन्तिम प्रहर में मुझे नींद ने दबा लिया। मैं बैठी-बैठी एक वृक्ष से पीठ लगाकर सो गई। कह नहीं सकती उस घोर आपत्ति-काल में मुझे नींद भी कैसे आ गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2

जिस समय मेरी निद्रा टूटी तो पक्षी चहचहा रहे थे। वृक्ष के पत्तों से छनकर धूप नीचे आकर पृथ्वी को मणि-मोतियों से सजा रही थी। मैंने देखा कि मेरे हाथों में एक भी आभूषण नहीं था। डाकुओं ने मेरी कलाइयों के आभूषणों को उतारकर मुझे विधवा-सी बना दिया था। मुझे अपने विषय में ऐसा विचार आना भला नहीं लगा। मैंने रोते-रोते एक वृक्ष-लता तोड़ी और उसे कंगन के रूप में कलाई पर बांध लिया।

मैंने अपने चारों ओर देखा कि जिस स्थान पर मैं बैठी थी, उसके निकट बहुत से वृक्षों की लताएं कटी पड़ी थीं। एक पेड़ जड़ से कटा हुआ था। मैंने सोचा वहां कोई लकड़ी काटने वाला आया होगा। वहीं से एक गांव में जाने का मार्ग था। दिन का प्रकाश देखकर मन में फिर अपने प्राणों को बचाने की इच्छा उत्पन्न हुई। मेरे हृदय में फिर कुछ आशा का उदय हुआ। उन्नीस वर्ष की आयु कुछ अधिक नहीं थी। खोजते-खोजते एक बहुत धुंधली-सी राह दिखाई पड़ी। उसे पकड़कर मैं उस पर चल पड़ी। चलते-चलत वह राह और स्पष्ट हो गई और विश्वास हुआ कि अवश्य मैं किसी गांव में पहुंच जाऊंगी।

अब कठिनाई यह थी कि उस वेश में मैं किसी गांव में जा नहीं सकती थी। जो फटा-पुराना कपड़ा डाकुओं ने मुझे दिया था, वह किसी प्रकार कमर में घुटनों तक के बदन को ढक रहा था। मेरी छाती पर वस्त्र नहीं था। उस अर्धनग्न वेश में मैं गांव में कैसे जा सकती थी ? इसी असमंजस में मैं व्याकुल हो उठी। मेरी बुद्धि उस समय मेरा साथ छोड़ चुकी थी।

पृथ्वी पर सूर्य की किरणों को फैली देखकर, पक्षियों का मधुर कलरव सुनकर, लताओं पर हिलते फूलों को देखकर, प्राण बचाने की इच्छा फिर प्रबल हुई। मैंने पेड़ से बहुत-सी पत्तियां तोड़कर, उन्हें गूंथकर कमर और गले में गांठ देकर बांधा और किसी प्रकार अपनी लज्जा छिपाई। मैं कुछ-कुछ पागलों जैसी दिखाई पड़ने लगी थी। मैं फिर उसी मार्ग पर चली। चलते-चलते गायों का स्वर सुनाई दिया। मैं समझ गई कि निकट ही कोई गांव था।

मैं और आगे नहीं बढ़ सकती थी। मुझे पैदल चलने का अभ्यास नहीं था। रात्रि के उस असह्य शारीरिक और मानसिक कष्ट तथा प्यास-भूख से अवसन्न होकर मैं मार्ग के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठ गई। बैठते ही मुझे फिर नींद आ गई।

मैंने नींद में एक स्वप्न देखा। मैं एक बादल पर बैठकर इन्द्रलोक में अपनी ससुराल चली गई। मेरे पति साक्षात कामदेव जैसे थे और मेरी सौत रति जैसी थी। मैं कमल-पुष्प लेकर उसके साथ झगड़ा कर रही थी। उसी समय किसी के छूने से मेरी निद्रा टूट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गई। मैंने देखा, एक युवक मेरे सामने खड़ा था। मैंने देखकर समझा कि वह शूद्र-जाति का था। वह मेरा हाथ पकड़कर खींचने लगा। सौभाग्य से वहीं एक डंडा पड़ा था। मैंने उसे उठाकर घूमाया और उस पापी के सिर पर दे मारा। उस समय न जाने मुझमें कहां से बल आ गया, मैं समझ न सकी। वह आदमी सिर पर हाथ रखकर, सांस छोड़कर, वहां से भाग गया।

फिर मैंने उस लकड़ी को नहीं फेंका। मैं उसे हाथ में लेकर आगे बढ़ चली। कुछ दूर आगे बढ़ी तो मुझे एक वृद्धा मिली। वह एक गाय को लेकर जा रही थी। मैंने उससे पूछा, 'महेशपुर या मनोहरपुर ग्राम कहां हैं ? क्या तुम इनमें किसी गांव का मार्ग मुझे बता सकती हो ?'

'तुम कौन हो ? ऐसी सुन्दर क्या अकेली राह में घूम रही है ? अहा, क्या रूप है ? तुम मेरे साथे चलो ?'

मैं उसके साथ उसके घर चली गई। उसने मुझे भूखी देखकर गाय को दूहकर दूध पीने को दिया।

वह वृद्धा महेशपुर को जानती थी। मैंने कहा, मैं तुम्हें रुपए दिलाऊंगी। तुम मुझे वहां पहुंचा दो।'

उसने मुझे जो राह बताई मैं उसी को पकड़कर चल पड़ी। संध्या तक मैं उसी राह पर चली। मैंने एक राही से पूछा, 'भाई, महेशपुर यहां से कितनी दूर है ?'

वह मेरी बात सुनकर अवाक् रह गया। वह बोला, 'तुम कहां से आ रही हो ?'

मैंने जिस गांव में वृद्धा ने मुझे राह बताई थी, उस गांव का नाम बता दिया। यह सुनकर उस राही ने कहा, 'तुम भूल रही हो। तुम उलटी राह पर आ गई। महेशपुर का यहां से पूरे एक दिन का मार्ग है।'

यह सुनकर मेरा सिर चकरा गया। मैंने पूछा, 'तुम कहां जाओगे ?' मैं लाचार होकर उसके पीछे-पीछे चल पड़ी।

गांव में पहुंचकर उसने मुझसे पूछा, 'तुम यहां किसके घर जाओगी ? क्या तुम यहां किसी को जानती हो ?'

मैंने कहा, 'मैं यहां किसी को नहीं जानती। किसी पेड़ के नीचे पड़ी रहूंगी। सुबह होने पर महेशपुर के लिए प्रस्थान करूंगी।

'तुम्हारी जाति क्या है ?' उसने मुझसे पूछा।

'मैं कायस्थ हूं।' मैंने उसे उत्तर दिया।

'मैं ब्राह्मण हूं। तुम मेरे साथ आओ। तुम्हारा कपड़ा गन्दा और फटा है, परन्तु तुम बड़े घर की कन्या जान पड़ती हो। छोटे आदमियों के घर ऐसी रूपवती कन्या जन्म नहीं ले सकती।'

'जले यह मेरा रूप' उसकी बात सुनकर मैंने अपने मन में कहा। वह ब्राह्मण वृद्ध था। मैं उसके साथ घर चली गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने उस ब्राह्मण के घर दो दिन बास किया। वृद्ध ब्राह्मण कर्मकाण्डी थे। वह पुरोहिताई करते थे। मेरे वस्त्रों की दशा देखकर उन्होंने पूछा, 'बेटी !' तुम्हारे वस्त्रों की यह दशा क्यों है ? तुम्हारे वस्त्र क्या किसी ने छीन लिए हैं ?'

मैंने कहा, 'जी हां।'

वह अपने यजमानों से वस्त्र प्राप्त करते थे। उन्होंने दो जोड़ी रंगीन किनारी की साड़ियां मुझे पहिनने को दीं। एक सादा-सा कपड़ा भी उनके घर में पड़ा था। वह उन्होंने मुझे बदन में पहिनने का दिया। मैंने वह अपने नंगे तन में पहिन लिया।

ब्राह्मण ने मुझे भात खाने को दिया ओर फिर एक चटाई रात्रि में सोने के लिए दी, परन्तु मैं इतनी थकी होने पर भी सोई नहीं। मैं सोच रही थी कि जीवित न रहती, वह उचित होता। सब लोग सो गए और मैं जगती रही।

प्रातःकाल मुझे थोड़ी नींद आई। मैंने फिर एक स्वप्न देखा। महाभयंकर यमराज अपने बड़े-बड़े दांतो को निकालकर मुझ पर हंस रहे थे। उन्हें देखकर मेरी आंखे खुल गईं। मैंने दूसरे दिन अनुभव किया कि मेरी सारी देह में भयंकर पीड़ा थी। मेरे पैर फूल उठे थे। मुझमें बैठने की भी शक्ति नहीं थी। मेरे पैर कांटों से छिदे हुए थे।

जितने दिन मेरे बदन का दर्द नहीं गया, उतने दिन मैं ब्राह्मण के ही घर पर रही। ब्राह्मण और उनकी गृहिणी ने मुझे बड़े प्यार और आराम से अपने घर पर रखा, परन्तु महेशपुर जाने का कोई उपाय नहीं बना।

कोई औरत वहां का मार्ग नहीं जानती थी। कोई मेरे साथ चलना भी स्वीकार नहीं करती थी। पुरुष कई उद्यत हुए, परन्तु उनके साथ मुझे अकेली जाते बहुत भय लगता था।

ब्राह्मण बोला, 'इन लोगों का चरित्र भ्रष्ट है बेटी। तुम इनके साथ मत जाना। इनके मन में कौन जाने क्या है ? मैं कुलीन कन्या को इनके साथ जाने को नहीं कहूंगा।'

एक दिन मैंने सुना कि उस गांव के कृष्णदास बसु नामक एक सज्जन अपने परिवार के साथ कलकत्ता जा रहे थे। यह सुनकर मैंने सोचा, कलकत्ते से मेरा नैहर और ससुराल दोनों ही निकट हैं। वहां मेरी जाति के एक चचा रहते हैं। मैं कलकत्ता जाने पर अवश्य ही उन चचा को खोज पाऊंगी। वह मुझे मेरे नैहर पहुंचा देंगे। नहीं तो मेरे पिता को सूचना दे देंगे और वह मुझे आकर ले जाएंगे। मैंने यह बात ब्राह्मण से कही।

ब्राह्मण ने कहा, 'यह तुमने ठीक सोचा बेटी ! बाबू कृष्णदास मेरे यजमान हैं। वह तुम्हें अपने साथ ले जायेंगे। मैं उनसे कह दूंगा। वह वृद्ध और भले आदमी हैं।'

वृद्ध ब्राह्मण मुझे कृष्णदास जी के पास ले गये। ब्राह्मण ने उनसे कहा, 'यह किसी अच्छे घराने की कन्या है। मार्ग भूलकर यहां आ पहुंचे है। आप यदि इसे अपने साथ ले जायें तो यह अपने पिता के घर पहुंच सकती है।'

कृष्णदास ने मुझे अपने साथ ले चलने की अनुमति दे दी। मैं दूसरे दिन उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार की स्त्रियों के साथ कलकत्ते को चल दी। पहिले दिन चार-पांच कोस पार करके हम गंगा-किनारे जा पहुंचे।

मैंने गंगा माता प्रथम बार देखी थी। गंगा को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुई। मैं क्षण भर के लिए अपना सब दुःख भूल गई। गंगा माता का विशाल हृदय था। उसमें छोटी-छोटी लहरें उठ रही थीं। उसके किनारों पर वृक्षों की पंक्तियां खड़ी थीं। दूर-दूर तक हरा-भरा जंगल दिखाई दे रहा था। पानी पर बहुत-सी नावें तैर रही थीं। कितने ही प्रकार के लोग गंगा-स्नान कर रहे थे। बालू रेत की वितृत भूमि पर नाना प्रकार के पक्षी भांति-भांति की क्रीड़ायें कर रहे थे। गंगा माता वास्तव में पुण्यमयी थीं। मेरे प्यासी आंखें कितनी ही देर तक उधर देखती रहीं।

हम जिस दिन कलकत्ता पहुंचे, उससे एक दिन पूर्व संध्या को ज्वर आया था। इसलिए नौका आगे नहीं जा सकी। नाविक ने एक घाट के पास नौका लगा दी। वहां बहुत-सी सुन्दर वस्तुएं देखीं। कुछ मांझी डोंगियों पर मछलियां पकड़ रहे थे। कुछ पंडित घाट के ऊपर बैठकर शास्त्रीय उपदेश दे रहे थे। कितनी सुन्दरियां घाट पर पानी भरने आ रही थीं। कोई घड़ा भर रही थी, कोई हंस रही थी और कोई गप्पें लगा रही थी। यह देखकर मुझे एक बहुत पुराना गीत याद आ गया। मैं उसे मन-ही-मन गुनगुनाने लगी।

मैंने उसी दिन वहां दो लड़कियां देखी। मैं उन्हें कभी भूलूंगी नहीं। उन दोनों लड़कियों की आयु लगभग सात-आठ वर्ष की होगी। देखने में अच्छी ही थीं दोनों। उनके कानों में कर्णफूल थे और हाथों तथा गलें में एक-एक आभूषण था। वेणियों में फूल गुंथे थे। काली किनारी की धोती पहिने थीं। उनके सिर पर दो छोटी-छोटी कलसियां थीं। वे घाट के जल में एक गाना गाती हुई उतरीं। वह गाना मुझे बहुत अच्छा लगा था। मैं बड़े ध्यान से उनका गाना सुन रही थी।

वसु महाशय की पत्नी ने मुझसे पूछा, 'तुम यह व्यर्थ गाना इतने ध्यान से क्यों सुन रही हो ?'

मैंने कहा, 'हानि ही क्या है इसमें ?'

'सोलह वर्ष की लड़कियों के मुख से यह गाना भला नहीं लगता।

वसु महाशय की पत्नी ने फिर कुछ नहीं कहा। वह चुप होकर बैठी रहीं। मैं सोचने लगी कि एक ही गाना दो प्रकार का क्यों लगता है ? जो धन गरीब को देने में पुण्य है, उसे बड़े आदमी को देने पर चाटुकारिता क्यों समझा जाता है ? जो सत्य धर्म का मुख्य अंग है, परिस्थिति विशेष में पाप क्यों हो जाता है ? कोई स्त्री को वन में छोड़ दे तो पाप कहा जाता है, परन्तु महाराजा रामचन्द्र ने सीता को वन भेज दिया था, उसे कोई पाप नहीं कहता। मैंने निश्चय किया कि परिस्थिति भेद से पाप-पुण्य का निर्णय होता है। यह बात मेरे मन में सजग हो उठी। मेरी छोटी-सी बुद्धि ने ऐसा ही समझा।

मैं कलकत्ते को देखकर चकित और भयभीत-सी हो गई। अट्टालिकायें, घर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर घर, घर की पीठ पर फिर घर। उनका कहीं अन्त नहीं था, सीमा नहीं थी। जल-पोतों के स्तम्भों का जमाव देखकर ज्ञान और बुद्धि भ्रम में पड़ गई।

निकट जाकर देखा, सड़क पर गाड़ियां और पालकियां चीटियों की पंक्तियों की तरह चली जा रही थीं। तब मैंने सोचा कि उनके अन्दर चचा को खोज निकालना बड़ा कठिन कार्य है। इतने बड़े नगर में बेचारे चचा कहां रहते होंगे, यह कैसे ज्ञात किया जा सकेगा ? उनकी खोज करना मुझे असम्भव-सा प्रतीत हुआ। इस विचार के आने पर मैं निराशा में डूब गई।

3

बाबू कृष्णदास कलकत्ता जाकर भवानीपुर में ठहरे। उन्होंने मुझसे पूछा, 'तुम्हारे चाचा का घर कहां है, कलकत्ते में या भवानीपुर में ?'

मैं चुप रही। क्या उत्तर देती ? यह सब तो मुझे ज्ञात नहीं था ?

उन्होंने फिर पूछा, 'वह कलकत्ते में किस जगह रहते हैं ?'

मैं समझती थी कि जिस प्रकार महेशपुर एक बड़ा गांव है, उसी प्रकार कलकत्ता कुछ उससे और बड़ा होगा। एक भले आदमी का नाम पूछते ही लोग उसका पता बता देंगे, परन्तु कलकत्ता तो अट्टालिकाओं का महासागर था। उसमें महेशपुर जैसे सैकड़ों गांव समा सकते थे। वहां कौन किसी भले आदमी को जानता था। वहां तो सब भले-ही-भले आदमी रहते थे।

मैं समझ गई कि वहां अपनी जाति के चचा को खोज पाना असम्भव था। बाबू कृष्णदास ने उन्हें खोजा, परन्तु उन्हें सफलता न मिली। सफलता मिलनी सम्भव भी नहीं थी।

बाबू कृष्णदास काली की पूजा करने के पश्चात् काशी जाने वाले थे। पूजा हो चुकी थी। वह अपनी यात्रा का प्रबन्ध करने लगे थे। यह देखकर मैं रोने लगी।

कृष्णदास की पत्नी ने कहा, 'तुम मेरी बात सुनो। इस समय किसी घर में नौकरानी का काम कर लो। आज सुबो के आने की बात है। मैं उससे कह दूंगी। वह अपने घर पर तुम्हें रख लेगी।'

यह सुनकर मैं व्याकुल हो उठी। बाबू कृष्णदास को मुझ पर दया आई, इसमें संदेह नहीं, परन्तु उन्होंने कहा, 'मैं क्या कर सकता हूं ?'

बात सच भी थी। वह कर भी क्या सकते थे ? मुझे अपने साथ लेकर तो वह काशी नहीं जा सकते थे। मैं घर के अन्दर जाकर एक कोने में बैठकर रोने लगी। संध्या से कुछ पूर्व बाबू कृष्णदास की पत्नी ने मुझे बुलाया। मैं उनके पास गई। उन्होंने कहा, 'यह सुबो आई है। तुम यदि इसके घर नौकरी करो तो मैं इससे कह दूं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दासी नहीं बनूंगी। बिना भोजन के प्राण जायें, तो जायें, मैंने यह दृढ़ विचार किया हुआ था। 'सुबो' मेरी ही आयु की स्त्री थी। रंग भी मुझसे कुछ साफ हो, यह बात भी नहीं थीं। वेशभूषा भी कोई विशेष नहीं थी। कानों में छोटा-सा कर्णफूल, हाथों में कड़े, गले में हंसली और एक काली किनारी की साड़ी पहिने थी। उसके घुंघराले बालों के मध्य कमल जैसा चेहरा मुझे भला लगा। उसके नेत्र पर्याप्त बड़े-बड़े थे। उनसे हंसी-फूटी पड़ रही थी। उसके होठों लाल पुष्प की पंखुरियों के समान थे। गठन कैसा था, इस पर मैंने ध्यान नहीं दिया। सुबो के साथ एक तीन वर्ष का लड़का था। वह भी वैसा ही सुन्दर था।

मैं अपलक सुबो और उसके पुत्र को देख रही थी। बाबू कृष्णदास की पत्नी ने कहा, 'बात का उत्तर दो। क्या सोच रही हो ? जैसा कहो, वैसा किया जाए।'

'ये कौन हैं , मैंने उनसे पूछा।

ठकुरानी ने मुझे धमकाते हुए कहा, 'क्या यह भी बताना होगा ? यह सुबो है, और कौन है ?'

सुबो ने हंसते हुए कहा, 'हां मौसी, बताना ही होगा। यह यहां के लिए नई है।' यह कहकर सुबो ने मेरी ओर देखते हुए कहा, 'मेरा नाम सुभाषिणी है। यह मेरी मौसी है। यह मुझे बचपन से ही 'सुबो- कहती है।'

ठकुरानी बोलीं, 'ये लोग बहुत बड़े आदमी हैं। यह सुबो बचपन से ही अपनी ससुराल में रहती है। हम लोग इसे कभी देख भी नहीं पाते। मैं कालीघाटे से आई हूं, यह सुनकर यह मुझसे मिलने आई है। इनके घर तुम सुखी रहोगी ?'

'मैं हरमोहनदत्त की पुत्री, जो रुपयों पर सोना चाहती थी, वह इस बड़े आदमी के घर दासी का काम करेगी ?' यह सोचकर मेरी आंखों से आंसू आ गए। मेरे मुख पर हंसी भी आई। उसे अन्य किसी ने नहीं देखा, सुभाषिणी ने देखा।

सुबो ने ठकुरानी से कहा, 'मैं तनिक अकेले में इनसे कुछ बातें करूंगी। यदि इनकी इच्छा होगी तो इन्हें अपने साथ ले जाऊंगी।'

सुभाषिणी मेरा हाथ पकड़कर मुझे घर के अन्दर ले गई। वहां कोई नहीं था। केवल उसका लड़का उसके साथ दौड़ता हुआ अन्दर चला आया था। सुभाषिनी एक तख्त पर बैठ गई और मेरा हाथ खींचकर मुझे भी अपने पास बिठा लिया। वह बोली 'मैंने अपना नाम बिना पूछे ही तुम्हे बता दिया। तुम्हारा नाम क्या है बहिन ?'

सुबो के 'बहिन' सम्बोधन ने मेरे हृदय के तारों को हिलाकर उनमें एक झंकार पैदा कर दी। मेरे मन ने कहा कि यदि मुझे दासीपना ही करना है तो इसके पास कर सकती हूं। मैंने उसकी ओर देखकर कहा, 'मेरे दो नाम हैं, एक प्रचलित है और दूसरा जो प्रचलित नहीं है। जो इन लोगों को बताया है इस समय आपको भी वही नाम बताऊंगी। मेरी नाम कुमुदनी है ?'

सुभाषिनी बोली, 'दूसरा नाम इस समय न बताओ। तुम्हारी जाति शायद कायस्थ है ना ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हां कायस्थ है।' मैंने कहा।

सुभाषिनी ने कहा, 'तुम किसकी लड़की हो, किसकी पत्नी हो, कहां घर है, यह सब अभी नहीं पुछूंगी। अभी जो कहूं, उसे सुनो। तुम बड़े घर की लड़की हो, यह मैं समझ गई हूं। तुम्हारे हाथों में गले में आभूषणों की काली रेखाएं हैं। तुम्हें दासीपना कराने को मैं नहीं कहूंगी। तुम कुछ भोजन बनाना जानती हो कि नहीं ?'

मैंने कहा, 'जानती हूं। भोजन बनाने में मैं अपने नैहर में बहुत प्रसिद्ध थी।'

सुभाषिणी ने कहा, 'मेरी महाराजिन घर जाएगी। इस समय मां से कहकर उसके स्थान पर मैं तुम्हें रखवा दूंगी। तुमको रसोई नहीं बनानी पड़ेगी। मैं सब बनवा लूंगी। तुम भी एक दो-दिन भोजन बना देना ?' बच्चे ने कहा, 'आजी ! आजी !'

मां बोली, 'तू पाजी है।'

बच्चा बोला, 'मैं बाबू हूं, बाबू पाजी हैं।'

'ऐसी बात नहीं कहते हैं बच्चा ! बालक से यह कहकर मेरे मुंह की ओर देखकर सुभाषिनी ने पूछा, 'राजी हो ?'

मैंने कहा, 'आपके पास मैं दासी का काम करने को भी उद्यत हूं।'

'आप क्यों कहती हो बहिन ? आप कहना तो मां को कहना। उन्हीं को लेकर कुछ कठिनाई है। वह कुछ चिड़चिड़े स्वभाव की हैं। उन्हें वश में करना होगा। वह तुम कर लोगी, मुझे विश्वास है।'

मैंने कहा, 'उद्यत न हूं तो क्या करूं ? मेरे पास अन्य कोई उपाय भी तो नहीं है।' मेरी आंखों में फिर आंसू आ गए।

'उपाय क्यों नहीं है ? ठहरो बहिन एक बात तो भूल ही गई थी। मैं अभी आती हूं।' यह कहकर सुभाविनी दौड़ती हुई अपनी मौसी के पास गई और उनसे पूछा, 'मौसी ! यह आप लोगों की कौन होती हैं ?' केवल यही मैं सुन पाई।

उनकी मौसी ने उनसे क्या कहा, वह सब मैं नहीं सुन सकी। वह जितना जानती थीं, उतना उन्होंने बता दिया। वास्तव में वह मेरे विषय में कुछ भी जानतीं। पुरोहित से जो कुछ उन्होंने सुना था, उतना भर उन्होंने कह दिया। सुबो का लड़का उसके साथ नहीं गया । वह मेरा हाथ पकड़कर खेल रहा था। मैं उससे बातें कर रही थी। सुभाषिणी लौटकर आई तो लड़के ने कहा, 'मां ! रंगा हुआ हाथ देखो।'

सुभाषिणी ने हंसते हुए कहा, 'यह मैं देख चुकी हूं बेटा ! मुझसे कहा, चलो गाड़ी तैयार है। यदि नहीं चलोगी तो मैं तुम्हें पकड़कर ले चलूंगी, परन्तु मां को वश में करना होगा।'

सुभाषिनी ने मुझे खींचते हुए ले जाकर गाड़ी पर चढ़ा लिया। पुरोहित महाशय की दी गई रंगीन किनारी को दो धोतियों में से एक मैंने पहिनी हुई थी और दूसरी रस्सी पर सूख रही थी। उसे लाने का भी उसने मुझे समय नहीं दिया। मैं सुभाषिणी के लड़के को अपनी गोद में लेकर उसका मुंह चूमती हुई उनके साथ चल पड़ी।

मां, सुभाषिणी की सास थी। उन्हें वश में करना होगा, इसलिए मैंने वहां जाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही उन्हें प्रणाम करके उनके पैरों की धूल ली। उसके पश्चात् एक दृष्टि से देखा कि वह स्वभाव की कैसी हैं। वह उस समय छत के ऊपर एक चारपाई बिछाकर, सिर के नीचे तकिया दिए, लेटी हुई थीं। एक स्त्री उनके पैर दबा रही थी। उन्हें देखकर मुझे लगा कि लम्बी स्याही की बोतल, कंठ तक स्याही से भरी, चारपाई पर पड़ी थी। सिर के बाल सब पके हुए थे। मुझे देखकर उन्होंने सुभाषिणी से पूछा, 'यह कौन है बहू ?'

'आप एक महाराजिन खोज रही थीं ना ! इसी से इसे ले आई हूं।' सुभाषिणी ने गम्भीरपूर्वक कहा।

'यह कहां पाई तुझे ?' उन्होंने पूछा।

'मौसी ने दी है।' सुभाषिणी ने उत्तर दिया।

'बामन है या कायस्थ ?' उन्होंने प्रश्न किया।

'कायस्थ।' सुभाषिणी बोली।

'तेरी मौसी का जले सिर। कायस्थ की लड़की लेकर क्या होगा ?' वह कुढ़कर बोलीं।

'नित्य तो बामन को भात देना नहीं होगा। जितने दिन चल जाता है, चले। उसके पश्चात् बामनी आने पर बामनी हो जाएगी। बामनी का बड़ा झमेला रहता है। वह हम लोगों के रसोई में चले जाने पर हांड़ी-कूंडी फेंक देती है। क्या हम लोग मोची हैं जो वह हमारे साथ ऐसा व्यवहार करती है ?'

मैंने मन से सुभाषिणी की चतुराई की प्रशंसा की। फिर देखा कि यह सास को अपनी मुट्ठी में लेना जानती थी। ठकुरानी ने कहा, 'सोतो ठीक है बहू ! छोटे लोगों का इतना अभिमान सहा नहीं जाता। तो इस समय कायस्थ की लड़की को ही कुछ दिनों के लिए रख लो। महीना कितना कहती है यह, इससे पूछकर देखो ?'

'उसकी मेरे साथ कोई बात नहीं हुई।' सुभाषिणी बोली।

'हाय रे ! आदमी रखने को पकड़ लाई और उसका महीना पूछा ही नहीं ?' ठकुरानी कुढ़कर बोली। उन्होंने मुझसे पूछा, 'क्या महीना लोगी तुम ?'

मैंने कहा, 'जब आप लोगों का सहारा लेने आई हूं तो जो दे देंगी, वही ले लूंगी, जिद नहीं करूंगी।'

'हां, बामन की लड़की को कुछ अधिक देना होता है। तुम कायस्थ की लड़की हो। तुम्हें तीन रुपया महीना और खाना-कपड़ा दूंगी।'

मुझे तो केवल सहारा मिल जाना ही पर्याप्त था। मैं प्रसन्न हो गई। वैसे ही महीना लेने का नाम सुनते ही मेरा मन रो उठा था। मैंने कहा, 'यही दीजिए। मैं संतुष्ट हूं।'

मैंने मन में सोचा, झंझट मिटा, परन्तु मिटा नहीं था अभी। लम्बी काली बोतल में स्याही और अधिक थी। उन्होंने कहा, 'तुम्हारी आयु क्या है ? अंधेरे में आयु नहीं जान सकी, परन्तु स्वर को लड़की जैसा ज्ञात होता है तुम्हारा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने कहा, 'आयु यही उन्नीस-बीस वर्ष की है।'

'तो बेटी ! कहीं दूसरी जगह काम खोज लो तुम। यहां से लौट जाओ। मैं युवा स्त्री को नहीं रख सकती।'

'सो क्यों मां ! युवा स्त्री क्या बुरी होती है ?' मैंने पूछा।

'ऐसा नहीं होता तो छोटे लोग, जो परिश्रम करके खाते हैं, क्या वे अच्छे होते हैं ?' ठकुरानी बोलीं।

यह सुनकर मैं अपना रोना न रोक सकी। मैं रोती हुई वहां से उठ खड़ी हुई। स्याही की बोतल ने बहू से पूछा, 'वह चली गई क्या ?'

सुभाषिणी ने कहा, 'ज्ञात तो यही होता है।'

'चली गई तो जाने दे।' ठकुरानी बोलीं।

'गृहस्थ के घर में आकर बिना खाए चली जाना तो उचित नहीं है। उसे खाना खिलाकर विदा कर दूंगी।' यह कहकर सुभाषिणी उठकर मेरे पीछे-पीछे चली आई। वह मुझे अपने कमरे में ले गई।

मैंने कहा, 'अब मुझे पकड़कर क्यों रखती हो ? पेट के लिए या प्राणों के लिए मैं इस प्रकार की बातें सुनने को यहां नहीं रह सकती। मैंने आपको वृथा ही कष्ट दिया।'

'रहने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु मेरे कहने से आज रात्रि भर रह जाओ। प्रातःकाल चली जाना।'

आंखें पोंछकर उस रात्रि को मैं वहीं रहने के लिए उद्यत हो गयी। इधर-उधर की बातों के पश्चात् सुभाषिनी न पूछो, 'यदि यहां न रहोगी तो कहां जाओगी ?'

'गंगा माता की गोद में सबको स्थान मिल जाता है।'

यह सुनकर सुभाषिनी रो पड़ी। वह बोली, 'तुम्हें गंगा में नहीं जाना होगा।' यह कहकर सुभाषिनी ने 'हारानी' कहकर एक स्त्री को बुलाया। हारानी सुभाषिनी की दासी थी। हारानी मोटी-काली, चालीस के ऊपर की थी। हंसी उसके मुख पर रुकती ही नहीं थी। उसके सारे शरीर में हंसी-ही-हंसी थी बस। वह बड़ी चंचल थी। सुभाषिनी उससे बोली, 'तनिक उन्हें बुला लाओ।'

हारानी बोली, 'इस समय वह आएंगे क्या ?'

सुभाषिनी ने भौंहें चढ़ाकर कहा, 'जैसे भी हो, उन्हें तुरन्त यहां बुलाकर लाओ। मै उनकी प्रतीक्षा में हूं।'

हारानी हंसती हुई चली गई। मैंने सुभाषिनी से पूछा, 'किसको बुलाने भेजा है? अपने स्वामी को क्या ?'

'नहीं तो क्या मुहल्ले के किसी आदमी को इतनी रात में बुलाऊंगी ?' सुभाषिनी मुस्कुराकर बोली।

'मुझे यहां से उठकर जाना होगा अथवा नहीं, मैं यह पूछ रही थी।' मैंने कहा।

सुभाषिनी के स्वामी आये। सुन्दर पुरुष थे। उन्होंने आते ही पूछा, 'मुझे किस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए बुलाया है ?' उसके पश्चात् मुझे देखकर कहा, 'यह कौन हैं ?'

सुभाषिनी ने कहा, 'इसी के लिए मैंने आपको बुलाया है। हमारी महाराजिन घर जाएगी। उसके स्थान के लिए मैं इसे मौसी के पास से ले आई हूं। मां इसे नहीं रखना चाहतीं ?'

उसके स्वामी ने कहा,'क्यों नहीं रखनी चाहतीं ?'

'युवा आयु है, इसलिए।' सुभाषिनी बोली।

यह सुनकर सुभषिणी के पति तनिक हंसे। फिर बोले, 'इसके लिए मुझे क्या करना होगा ?'

'इसे रख लेना होगा, बस।' सुभाषिनी बोली।

'क्यों ?' सुभाषिन के पति ने पूछा।

सुभाषिनी ने अपने स्वामी के पास जाकर धीमें स्वर में कहा, 'मेरी आज्ञा है, इसलिए।' वह नहीं चाहती थी कि मै सुनूं, परन्तु मैंने सुन लिया। उसके पति ने भी मंद स्वर में कहा, 'जो आज्ञा आपकी देवी जी।'

'कब रखेंगे ?' सुभाषिनी ने पूछा।

'भोजन के समय।' उसके पति ने कहा।

उनके जाने पर मैंने कहा, 'इन्होंने मानो रख भी लिया बहिन, परन्तु मैं ऐसी कडुवी बातें सहकर रह नहीं सकूंगी।;

'बाद की बातें बाद में होगी। गंगा तो एक-दो दिन में सूख नहीं जाएगी।' सुभाषिनी ने मुस्कुराकर कहा।

रात के नौ बजे सुभाषिनी के पति रमन बाबू भोजन करने आए। सुभषिनी ने कहा, 'चलो देखें, क्या होता है ?'

मैंने ओट से देखा, तरह-तरह के व्यंजन बने थे, परन्तु रमन बाबू ने एक कौर मुंह में डालकर दूसरा न डाला। उन्होंने कुछ भी न खाया। उनकी मां ने पूछा, 'कुछ खाया नहीं बच्चा ?'

'यह भोजन तो भूत-प्रेत भी नहीं खा सकते मां ! बामनी का बनाया भोजन खाते-खाते अरुचि हो गई है। कल से फूफी के घर जाकर भोजन कर आया करूंगा।' रमन बाबू बोले।

ठकुरानी ने कहा, 'ऐसा नहीं करना होगा बेटा ! मै। दूसरी महाराजिन बुलवाती हूं। वह अच्छा भोजन बनाएगी।'

बाबू हाथ धोकर उठ गए। सुभाषिनी बोली, 'हम लोगों के लिए आज उन्होंने भोजन नहीं किया बहिन !'

मैं भौंचक्की-सी होकर कुछ कहने ही जा रही थी तभी हारानी ने आकर सुभाषिनी से कहा, 'आपकी सास आपको बुला रही हैं।'

सुभाषिनी मेरी ओर देखकर हंसी। मैं समझी कि हंसी उसका रोग है। सुभाषिनी की सास बोली, 'वह कायस्थ की लड़की चली गई क्या ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नहीं, अभी उसने भोजन नहीं किया है। इसी से मैंने जाने नहीं दिया उसे।'

'वह खाना कैसा बनाती है ?' सास ने पूछा।

'सो तो मैं नहीं जानती, परन्तु मौसी कहती थीं कि वह भोजन बहुत अच्छा बनाती है।' सुभाषिनी बोली।

'वह नहीं गई, सो ठीक ही हुआ। कल उससे भोजन बनवाकर देखना।' ठकुरानी ने कहा, 'अच्छा भोजन बनाएगी तो उसे रख लूंगी।'

'मैं उसे रोक लेती हूं।' सुभाषिनी यह कहकर वहां से मेरे पास चली आई। मुझसे पूछा, 'बहिन ! तुम खाना बनाना जानती हो ना ?'

'जानती हूं। मैंने कहा।

'अच्छा बनाना जानती हो ना !' सुभाषिनी ने पूछा, 'यदि अभ्यास न हो तो तुम्हें मैं पास बिठाकर सिखला दूंगी।'

मैंने हंसकर कहा, 'बाद की बात बाद में होगी।'

4

दूसरे दिन मैंने रसोई बनाई। सुभाषिनी मुझे रसोई बनाते हुए देखने आयी। मैंने जान-बूझकर उसी समय लाल मिर्चो का छोंक लगा दिया। वह खांसती-खांसती लौटकर चली गयी। वह बोली, 'मौत है, नहीं तो क्या ?'

भोजन बन जाने पर लड़के-लड़कियों ने पहिले खाना खाया। सुभाषिनी का लड़का अन्न का भोजन अधिक नहीं करता था। सुभाषिनी की एक पांच साल की लड़की थी। सुभाषिन ने उससे पूछा, 'रसोई कैसी बनी है हेमा ?'

'बहुत अच्छी, बहुत अच्छी बनी है मां !' हेमा ने कहा।

उसके पश्चात् रमन बाबू भोजन करने बैठे। मैं छिपकर देखने लगी। मैंने देखा, उन्होंने थाली का सब कुछ खा डाला। ठकुरानी के मुंह पेर हंसी आ गई। रमन बाबू ने पूछा, 'आज भोजन किसने बनाया है मां ?'

ठकुरानी बोलीं, 'नई महाराजिन आई है।'

'बहुत अच्छा खाना बनाती है मां !' यह कहकर वह हाथ धोकर वहां से चले गए।

उसके पश्चात् घर के मालिक भोजन करने बैठे। मैं वहां न जा सकी। ठकुरानी की आज्ञा के अनुसार बूढ़ी ब्राह्मणी मालिक का भोजन लेकर गई। मैं तब समझी कि ठकुरानी के दिल में पीड़ा कहां थी। क्यों वह जवान स्त्रियों को घर में नहीं रखती थीं।

मैंने प्रतिज्ञा की कि जितने दिन वहां रहूंगी, उधर कभी नहीं जाऊंगी। मैंने उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चात् कई व्यक्तियों से सुना कि मालिक का चरित्र भ्रष्ट नहीं है। सब जानते थे, वह सज्जन हैं, जितेन्द्रिय हैं, परन्तु फिर भी स्याही की बोतल में गले तक स्याही भरी थी। उसे अपने पति के चरित्र के विषय में शंका रहती थी।

ब्राह्मणी के वहां जाने पर ठकुरानी ने पूछा, 'मालिक ने भोजन करने के पश्चात् क्या कहा ?'

यह सुनकर ब्राह्मणी लाल हो गई। वह चिढ़कर बोली, 'अच्छा बना है भोजन, बहुत अच्छा बना है। हम भी बनाना जानती हैं, परन्तु बूढ़ी होने पर हमें कौन पूछता है ? अब भोजन बनाने के लिए भी रूप और यौवन की दरकार है।'

मैंने ब्राह्मणी पर क्रोध करके कहा, 'रूप और यौवन तो चाहिए ही ब्राह्मणी दीदी! बूड्ढी डोकरी को देखकर किसे भोजन भाएगा ?'

यह सुनकर ब्राह्मणी आग हो गई। वह दांत निकालकर कर्कश स्वर में बोली, 'लगता है तुम्हारा रूप और यौवन सदा बने रहेंगे। तुम्हारे गालों पर झुर्रियां कभी नहीं पड़ेगी। यह कहकर क्रोध में चूल्हे पर एक हांडी चढ़ाने जाकर ब्राह्मणी ने वह हांडी ही फोड डाली।

मैंने कहा, 'देखा दीदी ! रूप-यौवन न रहने पर अपने हाथ की हांडी भी फूट जाती है।'

यह सुनकर ब्रह्मणी सनसी लेकर मुझे मारने दौड़ी। उसने मुझे गाली दी। मैंने मुस्कराकर उसे सहन कर लिया। वह मुझ पर गालियों की बौछार कर रही थी।

उसी समय सुभाषिनी वहां आ गई। ब्राह्मणी क्रोध में उसे देख न सकी। उसने मुझसे कहा, 'हरामजादी ! जो मेरे मुंह में आएगा मैं वहीं कहूंगी ? डायन कहीं की?'

सुभाषिनी ने भोंह चढ़ाकर उससे कहा, 'क्यों ब्राह्मणी ! क्या मैं इसे तुमसे हरामजादी कहलवाने के लिए लाई हूं ? तुम इसी समय मेरे घर से बाहर हो जाओ।'

ब्राह्मणी अस्त-व्यस्त भाव से सनसी फेंककर रोती हुई बोली, 'अरी माई ! मैंने इसे हरामजादी कब कहा ? ऐसी बात तो मैं कभी मुंह पर भी नहीं ला सकती। तुमने तो यह बात कहकर अचरज कर दिया बहू !'

यह सुनकर सुभाषिनी हंस पड़ी। ब्राह्मणी ने हू-हू करके रोना आरम्भ कर दिया। वह बोली, मैंने हरामजादी कहा हो तो मैं आपत्ति में पड़ूं बहू ! मैं अभी मर जाऊं। मैं इसी समय यमराज के घर चली जाऊं।'

'यह क्या दीदी! इतने सवेरे-सवेरे ! छिः दीदी ! दो दिन और ठहरो ना। अभी तुम्हारी आयु ही क्या है ?' मैं बोली।

'मुझे नरक में भी ठिकाना न मिले।' ब्राह्मणी ने कहा।

'सो तो कहना मत दीदी ! नरक के लोगों ने यदि तुम्हारा बनाया भोजन न खाया तो फिर नरक ही क्या ?' मैं बोली।

ब्राह्मणी रोकर बोली, 'जो इसके मुंह में आयगा यह मुझे वही कहेगी और तुम कुछ भी नहीं बोलोगी ? मैं अभी ठकुरानीजी के पास जाती हूं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ऐसा करने पर तो मुझे भी कहना पड़ेगा कि तुमने इसे हरामजादी कहा था।' सुभाषिनी बोली।

तब ब्राह्मणी ने बुरी तरह चिल्लाना आरम्भ किया, मैंने कब हरामजादी कहा ? मैंने कब हरामजादी कहा ? मैंने कब हरामजादी कहा ?'

तब मैंने ब्राह्मणी से मीठी बातें कीं। मैंने कहा, 'हां ठकुरानी बहू ! आपने इन्हें हरामजादी कहते हुए कब सुना ? इन्होंने यह बात कब कही ? मैंने तो सुना नहीं इन्हें हरामजादी कहते।'

बुढ़िया बोली, 'सुना बहू दीदी ? मेरे मुंह पर क्या यह बात कभी आ सकती है ? क्या मैं कभी यह कह सकती हूं ?'

सुभाषिनी हंसकर बोली, 'तो होगा, बाहर कोई किसी को कुछ कह रहा होगा। वही मेरे कान में पड़ा होगा। ब्राह्मणी क्या ऐसा कह सकती है ? इनका बनाया खाना खाया है न तुमने ? कलकत्ते में क्या अन्य कोई इतने प्रकार भोजन बना सकती है?'

ब्राह्मणी ने मेरी और देखकर कहा, 'सुना कुछ तुमने ?' 'सो तो सभी कहते है कि उन्हानें ऐसी रसोई कभी नहीं खाई।' मैंने मुस्कराकर ब्राह्मणी की ओर देखकर कहा।

ब्राह्मणी हंसकर बोली, 'सो तो तुम कहोगी ही बेटी ! तुम सब परखती हो। ऐसी लड़की को क्या मैं गाली दे सकती हूं ? तुम किसी बड़े घर की लड़की हो। मैं तुम्हें रसोई बनाना सिखाकर तब जाऊंगी। मैं तुम्हें कोई कठिनाई नहीं होने दूंगी।'

इस प्रकार ब्राह्मणी से मेरा मेल हो गया। मुझे बहुत दिन पश्चात् उस दिन हंसी आई थी। वह हंसी दरिद्र के कोष की भांति मुझे बड़ी अच्छी लगी थी।

मुझे लगा मानो मेरी कोई खोई हुई वस्तु मुझे मिल गई थी।

फिर मैंने ठकुरानी को भोजन कराया। मैंने बड़े यत्न से भोजन परोसा। उन्होंने कहा, 'बनाती तो अच्छा हो बेटी ! यह रसोई तुमने कहां सीखी ?'

'अपने नैहर में।' मैंने ठकुरानी से कहा।

'तुम्हारा नैहर कहाँ है बेटी ?' ठकुरानी ने पूछा।

मैंने झूठी जगह बता दी। वह बोलीं, यह तो बड़े आदमी के घर की तरह की रसोई है। तुम्हारे पिता क्या बड़े आदमी थे ?'

'हां मां ।' मैंने उनसे कहा। 'तो तुम रसोई बनाने क्यों आई ?' ठकुरानी ने पूछा।

'विपत्ति में पड़कर।' मैंने उत्तर दिया।

'मेरे पास तुम आनन्दपूर्वक रहो। तुम बड़े आदमी की लड़की हो तो मेरे घर में भी वैसी ही रहो।' ठकुरानी बोलीं।

उन्होंने सुभाषिनी को बुलाकर कहा, 'बहू रानी ! देखो बेटी ! इसे कोई कड़ी बात न कहे और तुम तो कहोगी ही नहीं। यह किसी बड़े घर की लड़की है। बेचारी किसी विपत्ति में पड़कर यहां आ गई है।

सुभाषिनी का लड़का वहीं बैठा था। उसने कहा, मैं कली बात कहूंगा मां ! मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई नहीं रोक सकता।'

मैंने कहा, 'कह, देखूं तुझे।'

उसने कहा, 'काली छाछ, काली छाछ।'

'तेरी सास।' सुभाषिनी बोली।

'तेली छाछ !' लड़का बोला।

सुभाषिनी की लड़की ने मुझे दिखाकर कहा,'यही तेरी सास है।'

तब लड़का कहने लगा, 'मेली छाछ।'

सुभाषिनी मेरे सम्बन्ध बनाने के लिए भटक रही थी। लड़के-लड़की के मुख से यह बात सुनकर उसने मुझसे कहा, 'तो आज से तुम मेरी बहिन हुई।'

उसके पश्चात् सुभाषिनी भोजन करने बैठी। मैं भी उसके पास भोजन करने बैठ गई। खाते-खाते उसने पूछा, 'तुम्हारे कितने ब्याह हुए हैं बहिन ?'

मैं बात समझ गई। मैंने कहा, 'क्या रसोई द्रोपदी के समान लग रही है आपको?'

'ओ यस् ! मिसेज पाण्डव ! फर्स्ट क्लास बावर्ची। मेरी बात समझ तो गई।' सुभाषिनी बोली।

मैंने कहा, 'अधिक नहीं। कंगाल की और बड़े आदमी की लड़की में सभी कुछ भेद दिखाते हैं।

सुभाषिनी हंस पड़ी। उसने कहा, 'तुम्हारी मौत, नहीं तो क्या है ? समझती हूं, यही समझा है ? तुम्हें बड़े आदमी की लड़की कहकर, मैं समझती हूं, तुम्हारा आदर नहीं किया है ?'

मैंने कहा, 'तब क्या किया है ?'

'उनका लड़का भर पेट खाएगा, इसी से तुम्हारा इतना आदर हुआ है। अब यदि तुम कहो तो तुम्हारा महीना डबल हो जायेगा, समझीं।' सुभाषिनी बोली।

'मैं महीना नहीं चाहती। न लेने से कहीं कोई झंझट हो, इसी से हाथ फैलाकर महीना लूंगी। वह तुम्हारे पास रख दूंगी। तुम किसी कंगाल को दे देना। मैंने आश्रय पा लिया, यही मेरे लिए पर्याप्त है।'

5

मैंने वहां आश्रय पाया और एक अमूल्य रत्न पाया, सुभाषिनी। वह मुझे मन से चाहने लगी थी। बहिन के साथ जैसा व्यवहार होता है, मेरे साथ वैसा ही व्यवहार उसने किया। घर के नौकर भी मेर उपेक्षा नहीं करते थे। इधर रसोई में भी मुझे सुख मिल गया। ब्राह्मणी, सोना की मां भी अपने घर नहीं गई। रसोई में हम दोनों ही रहीं। सुभाषिनी ने सास को समझाया, 'कुमुदनी भले आदमी की लड़की है। उससे सारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसोई नहीं हो सकेगी और सोनार की मां भी वृद्धा है, वह बेचारी कहां जाएगी?'

सास ने कहा, दोनों रखोगी तो इतने रुपये कौन जुटाएगा ?'

बहू बोली, 'एक जने की रखने में सोना को रखना होगा। कुमुदनी इतना कर नहीं पाएगी।'

मालकिन बोलीं, 'नहीं-नहीं, सोना की मां की रसोई मेरा लड़का नहीं खाएगा। दोनों को ही रहने दो।'

मेरा कष्ट दूर करने को सुभाषिनी ने यह चाल चली थी। ठकुरानी उसके हाथ की कठपुतली थीं। वह रमन बाबू की पत्नी थी। रमन की पत्नी की बात टालने की शक्ति किसी में नहीं थी। सुभाषिनी बुद्धि की जैसी तीव्र थी, स्वभाव की भी वैसी ही अच्छी थी। उसे पाकर दुःख के दिनों में भी मुझे कुछ सुख मिला।

मैं मछली-मांस बना देती थी या दो-एक अच्छे व्यंजन बना देती थी। शेष समय सुभाषिनी के साथ बातें करती और उसकी लड़की-लड़के के साथ खेलती रहती थी। ठकुरानी का विश्वास था कि उनकी आयु अभी अधिक नहीं थीं, केवल भाग्य के रोष से उनके कुछ बाल पक गए थे। उन्हें यदि उखाड़ दिया जाए तो वह युवती प्रतीत हो सकती थीं। इसलिए वह किसी आदमी को पाते ही अपने पके बाल उखड़वाने बैठ जाती थीं। एक दिन मुझे भी इस काम के लिए पकड़ा गया। यह देखकर सुभाषिनी ने संकेत से मुझे बुलाया। मैं ठकुरानी के काम से छुट्टी लेकर उसके पास गई।

सुभाषिनी ने हंसकर पूछा, 'यह क्या हो रहा है ? क्या मेरी सास को मुण्डी कर दोगी तुम ?'

'यह कार्य पूरा हो जाए तभी ठीक है ?' मैंने कहा।

'ऐसा करके क्या यहां टिक सकोगी ? जाओगी कहां ?'

'मेरा हाथ रुकता ही नहीं।' मैंने कहा।

'यही तो मरना है। दो-एक नोंचकर चली आओ।' वह बोली।

'तुम्हारी सास तो छोड़ती ही नहीं।' मैं बोली।

'कह देना, पके बाल और नहीं है।' सुभाषिनी ने कहा।

मैं हंसकर बोली, 'क्या इस प्रकार दिन में डाका डाला जाता है ?' लोग क्या कहेगे ? यही कि काली दीधी की डकैती है।'

'काली दीधी की डकैती क्या ?' सुभाषिनी ने पूछा।

सुभाषिनी के साथ बातें करती मैं अपने को भूल गई थी। हठात् काली दीधी की बात असावधानी में मेरे मुख से निकल गई। मैंने बात को दबा दिया। बोली, 'यह बात फिर किसी दिन बताऊंगा।'

सुभाषिनी के पास से उठकर मैं हंसती-हंसती मालिकन के पास जाकर फिर पके बाल नोचने लगी। मैंने दो-चार बाल नोंचकर कहा,'और अधिक पके बाल मैं नहीं देख पा रही। दो-एक रह गए हैं, सो कल निकाल दूंगी।'

'बेटी तो कहती है कि मेरे सारे बाल पक गए हैं।' ठकुरानी बोलीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस दिन से उस घर में मेरा आदर बढ़ गया, परन्तु मैं कोई ऐसा उपाय-सोचने लगी जिससे नित्य बैठकर उनके बाल न नोंचने पड़ें। वेतन के रुपये मैं पा गई थी। उनमें से एक रुपया हारानी के हाथ पर रखकर मैंने कहा, 'एक रुपये की एक शीशी खिजाब की ले आ।'

यह सुनकर हारानी पगली-सी हंसने लगी। हंसी रुकने पर उसने पूछा, 'खिजाब का क्या करोगी ? किसके बालों में लगाना है। ?'

'ब्राह्मणी के वालों में।' मैंने बात बदलकर कहा।

हारानी हंसती-हंसती बैठ गई। तभी ब्राह्मणी वहां आ पहुंची। हारानी हंसी रोकने के लिए मुंह में कपड़ा ठूंसने लगी। किसी प्रकार जब उसकी हंसी नहीं रुकी तो वह वहां से भाग गई। ब्राह्मणी बोली, 'यह इतनी क्यों हंसी ?'

'इसे और कुछ भी आता है ? मैंने कहा कि ब्राह्मणी के बालों में खिजाब लगाना ठीक नहीं है। इसी बात पर इतनी हंस रही थी।'

'तो इतनी हंसी किए लिए ? खिताब लगाने में क्या हानि है ? 'सूखा खेत, सूखा खेत' कहकर बच्चे चिढ़ाते हैं। इस झंझट से छूट जाऊंगी।' ब्राह्मणी बोली।

मैंने समझा, ब्राह्मणी को खिताब की बड़ी लालसा है। मैंने कह दिया, 'मैं तुम्हें खिजाब दे दूंगी।'

ब्राह्मणी बोली, 'तुम जीती रहो बेट ! तुम्हें सोने के गहने मिलें। तुम बहुत अच्छी रसोई बनानी सीख लो।'

हारानी थी बड़े काम की औरत। उसे तुरन्त एक अच्छी खिजाब की शीशी ला दी। मैं उसे हाथ में लेकर ठकुरानी के बालों खिजाब लगाने चली। ठकुरानी ने पूछा, 'यह हाथ में क्या है कुमुद ?'

'एक दवा है। इसे बालों में लगाने से पके बाल निकल जाते हैं और काले बाल रह जाते हैं।' मैंने कहा।

'अच्छा ! ऐसे अचरज की दवा तो मैंने कभी नहीं देखी। ठीक है, लगाओ, देखूं, परन्तु खिजाब न लगाना बेटी !'

मैंने उनके बालों में खिजाब लगा दिया। वह लगाकर कह दिया, 'अब पके बाल नहीं रहे।' यह कहकर मै। वहां से चली आई। उनके सब बाल काले हो गए। दुर्भाग्यवश हारानी ने वह देख लिया। वह झाड़ू फेंक, मुंह में कपड़ा ठूंस, हंसती हुई छत पर चली गई। वहां सोना की मां बालों को सूखा रही थी। उसने पूछा,क्या हुआ ?'

सोना की मां कुछक न समझी। उसने नीचे आकर देखा कि ठकुरारनी के सिर के सारे बाल काले हो गए थे। उसने कहा, 'अरी मेरी मां, यह क्या हो गया ? तुम्हारे सिर के सारे बाल काले हो गए। यह किसने तुम्हारी दवा की है ?'

सुभाषिनी मुझे पकड़कर हंसती हुई बोली, 'कलमुंह ! यह क्या किया तूने ? मां के बालों पर खिजाब लगा दिया ?'

'हां, क्यों ? लगाया तो है। हानि ही क्या है इसमें ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुम्हारे मुंह में आग। क्या तुफान होगा, देखना अब।'

'तुम चिन्ता न करो, मैं सब देख लूंगी।'

ठकुरानी ने स्वयं मुझे बुलाया। उन्होंने कहा, 'कहो, बेटी कुसुम ! तुमने मेरे सिर में खिजाब लगाया है क्या ?'

'यह बात किसने कही मां ?'

'सोना की मां कहती थी।' ठकुरानी बोलीं।

'यह खिताब नहीं हैं मां ! यह दवा है।' मैंने कहा।

'यह तो बहुत अच्छी दवा है बेट ! शीला लाकर तो दिखा।'

मैंने एक शीशी लाकर दिखा दी। उसे देखकर मालकिन ने कहा, 'अरी मां ! सारे बाल काले हो गए। आह, अभागे की बेटी ! लोग देखकर कहने लगेंगे कि खिजाब लगाया है।'

ठकुरानी के मुंह पर हंसी रुक नहीं रही थी उन्होंने उस दिन संध्या को मेरी रसोई की बहुत प्रशंसा की और महीना भी बढ़ा दिया। वह बोलीं, 'बेटी ! तुम कांच की चूड़िया पहिनकर घूमती हो, यह देखकर दुःख होता है। यह कहकर उन्होंने अपने बहुत दिनों के निकालकर रखे हुए सोने के कड़े मुझे पुरस्कार स्वरूप दिए। उन्हें लेते मेरा सिर कट गया। मैं अपनी आंखों के आंसू न रोक सकी। 'नहीं लूंगी यह कहने का अवसर नहीं था। मैंने चुपचाप ले लिए।

एक दिन अवसर पाकर ब्राह्मणी ने मुझसे कहा, 'अब वह दवा नहीं है क्या तुम्हारे पास बेटी ?'

'कौन-सी दवा ? जो तुमने अपने स्वामी को वश में करने के लिए दी थी ?' मैंने हंसकर पूछा।

'दूर हो ! इसी को लड़कबुद्धि कहते हैं। मेरे पास क्या ऐसी कोई दवा रखी है?'

'नहीं, एक भी नहीं।' मैंने कहा।

'लगता है तूने पांच किए हैं ?' ब्राह्मणी बोली।

'ऐसा न होने पर मैं ऐसा भोजन बनाती ? द्रोपदी हुए बिना क्या ऐसा भोजन बनाना जान सकती थी ? तुम भी पांच का हिसाब करो न, जिससे तुम्हारी रसोई खाकर लोग तुम्हारे वश में हो जाएं।'

ब्राह्मणी ने लम्बी सांस ली। वह बोली, एक ही का हिसाब नहीं होता, पांच का क्या होगा ? यह मुसलमानों में होता है बेटी ! हिन्दू लड़की को इसमें बड़ा दोष है। अब रूई की तरह बाल सफेद हो गए। इसी से पूछती हूं कि क्या कोई दवा है जिससे सिर के बाल काले हो जाते हैं ?'

'है क्यों नहीं ?' मैंने कहा और खिजाब की शीशी ब्राह्मणी को दे दी। उसने उसे भोजन के पश्चात् सोते समय, अंधेरे में अपने बालों में रगड़ा। कुछ बालों में लगा, कुछ बालों में नहीं लगा। मुंह आंखों पर भी लग गया। प्रातःकाल जब उसने दर्शन दिए तो उसके बाल पचरंगी बिल्ली के बालों की भांति कुछ रंगे हुए और कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफेद थे। रंगा हुआ मुंह कलमुंहें बन्दर और ऊदबिलाव की तरह का हो गया था। उसे देखते ही सब लोग जोर से हंस पड़े। वह हंसी फिर रुकी नहीं। जो भी ब्राह्मणी को देखता, हंस पड़ता। हारानी हंसती-हंसती बेदम होकर सुभाषिनी के पैरों पर पछाड़ खाकर गिर पड़ी। वह कहने लगी, 'ठकुरानी बहू, मुझे जवाब दे दो। मैं अब इस हंसी के घर में न रह सकूंगी। किसी दिन बेदम होकर मर जाऊंगी।'

सुभाषिनी की लड़की बुढ़िया से बोली, 'बूढ़ी बुआ ! आज किसने सजा दिया है तुम्हें ? तुम तो बहुत सुन्दर लग रही हो। एक दिन एक बिल्ली ने हांडी में से मछली खाई थी। उस दिन उसके मुंह पर ऐसी ही कालिख लगी थी।'

सुभाषिनी का लड़का उसे देखकर बोला, 'मां, बूली पूपी कैसी लगती हैं।'

ब्राह्मणी के सामने किसी ने मेरे संकेत के अनुसार रहस्य स्पष्ट नहीं किया। वह बिना संकोच के ही बन्दर-बिल्ली की मिली-जुली शोभा सबको दिखाने लगी। इसने अपना मुख दर्पण में नहीं देखा था।

सबको हंसते देखकर वह पूछने लगी, 'तुम सब लोग क्यों हंस रहे हो ?'

सबने मेरे संकेत के अनुसार कहा, 'यह लड़का क्या कहता है, सुनती हो ? यह कहता हैं, बूली पूपी तुम अच्छी लग रही हो। ये सब भी यही कह रहे हैं कि सोना की मां आज कितनी सुन्दर लग रही है।'

ब्राह्मणी का चेहरा वैसा ही रहा। वह उसी रूप में रमन बाबू को भोजन देने गई। उसे देखकर रमन बाबू भी हंसी न रोक सके। वह भोजन भी न कर सके। जब वह भोजन परोसने गई तो उन्होंने उसे 'दूर-दूर' कहकर डांट दिया।

अन्त में दया करके सुभाषिनी ने उससे कहा, 'बड़े शीशे में जाकर अपना मुंह देखो।'

बूढ़ी ने जाकर मुंह देखा तो वह जोरों से रोने लगी। मैं यह समझाने का प्रयत्न करने लगी कि मैंने यह दवा बालों में लगाने को दी थी, मुंह पर लगाने के लिए नहीं। बूढ़ी ने उसे समझा नहीं। वह मेरे सिर को खाने लिए यमराज को बार-बार बुलाने लगी।

6

दूसरे दिन सुभाषिनी मुझे एकान्त स्थान पर ले गई। वह बोली, 'कल तुमने मुझसे जो कालीदीघी के डाके का वृत्तान्त सुनाने को कहा था, वह सुनाओ।'

'वह मुझ हतभागिनी की ही कहानी है। मेरे पिता बड़े आदमी हैं, यह बात मैंने कही थी। मेरे पिता ससुर भी बड़े आदमी हैं, परन्तु मेरे पिता की तुलना में कम हैं। मेरे पिता आज भी हैं, उनका वह अतुल ऐश्वर्य भी है, उनके घर पर हाथी बंधा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं जो यहां रसोई बनाकर खा रही हूं, कालीदीधी का डाका ही उसका कारण है।' मैंने संक्षेप में सुभाषिनी को बताया।

सुभाषिनी ने कहा, 'यदि कहने में कष्ट होता है, तो न कहो। वैसे मैं इसे आद्योपान्त सुनना चाहती हूं।'

मैंने कहा,'अब मैं सब-कुछ कहूंगी। तुम मुझे प्यार करती हो। तुमने मेरा हित किया है। इससे मुझे कहने में संकोच नहीं होगा।' मैंने अपने पिता का नाम नहीं बताया। पिता के घर का नाम भी नहीं बताया। पति या ससुर के नाम भी नहीं बताए। ससुराल के गांव का नाम भी नहीं बताया। शेष सब बातें कह सुनाई। सुनते-सुनते सुभाषिनी रोने लगी।

मैंने पिता का नाम बता दिया।

'उनका मकान किस गांव में है, यह भी बताया होगा।' सुभाषिनी बोली।

मैंने वह भी उसे बता दिया। अब मुझे उसे यह सब बताने में संकोच नहीं था।

'डाकखाने का नाम भी बताओ।' सुभाषिनी बोली।

'डाकखाना ! डाकखाने का नाम डाकखाना है।' मैंने कहा।

'दूर हो कलमुंही ! जिस गांव में डाकखाना है, उसे गांव का नाम बता।' सुभाषिनी बोली।

'सो तो मैं नहीं जानती। डाकखाना ही जानती हूं।' मैंने कहा।

'मैं कहती हूं कि जिस गांव में तुम्हारा घर है उस गांव में डाकखाना है या किसी दूसरे गांव में है ? सुभाषिनी ने पूछा।

'यह मैं नहीं जानती।'

यह सुनकर सुभाषिनी को कष्ट हुआ। उसने और कुछ नहीं कहा। दूसरे दिन उसी प्रकार एकान्त में उसने पूछा, 'तुम बड़े घर की लड़की हो। कितने दिन तक इस तरह खाना बनाकर पेट भरोगी। तुम्हारे जाने पर मैं बहुत रोऊंगी, परन्तु अपने सुख के लिए तुम्हारी हानि करूं, ऐसी पापिष्ठा मैं नहीं हूं।' हमने विचार किया है....।'

बात पूरी नहीं हुई थी कि मैंने पूछा, 'हम कौन ?'

'मैं और र-बाबू।' सुभाषिनी बोली।

'र-बाबू या रमन बाबू।' सुभाषिनी मेरे सामने पति का नाम इसी प्रकार लेती थी।

वह कहने लगी, 'हमने विचार किया है कि तुम्हारे पिता को पत्र लिखें कि तुम यहां हो। इसलिए मैं कल तुमसे तुम्हारे गांव का डाकखाना पूछ रही थी।'

'तो क्या तुमने उनसे सारी बातें कह दीं ?' मैंने पूछा।

'कह दीं। इसमें हानि ही क्या है ?' सुभाषिनी बोली।

'हानि तो कुछ नहीं, तब भी ?' मैं संकोचवश बोली।

'महेशपुर ही डाकखाना है, यह विचार कर पत्र लिखा गया है।' सुभाषिनी बोली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पत्र लिखा गया है या अभी नहीं ?' मैंने पूछा।

'लिखा गया।' सुभाषिनी ने सूचना दी।

मैं प्रसन्नता से फूली न समाई। मैं प्रतीक्षा करने लगी कि कब पत्र का उत्तर आयेगा, परन्तु उत्तर नहीं आया। मेरा भाग्य ही दुर्बल था। महेशपुर का डाकखाना कहीं अन्यत्र था। उस समय गांव-गांव में डाकखाने नहीं थे। मैं इतनी बात नहीं जानती थी। डाकखाने का ठिकाना न पाकर कलकत्ते के बड़े डाकखाने में रमन बाबू को पत्र खोलकर लौटा दिया गया।

यह होने पर भी रमन बाबू ने आशा नहीं छोड़ी। सुभाषिनी ने दूसरे दिन आकर मुझसे कहा, 'अब तुम्हें अपने पति का नाम बतलाना होगा।'

मैंने लिखना सीखा था। मैंने पति का नाम लिख दिया। फिर सुभाषिनी ने पूछा, 'ससुर का नाम भी लिख दो।'

वह भी मैंने लिख दिया। अब मुझे वह सब सुभाषिनी से बताने में संकोच नहीं था।

'गांव का नाम ?' सुभाषिनी ने पूछा।

मैंने गांव का नाम भी लिख दिया।

रमन बाबू ने वहां भी पत्र लिखा। वहां से से भी पत्र का कोई उत्तर नहीं आया। यह जानकर मैं बहुत दुःखी हुई।

एक बात मन में आई। मैंने आशा में विह्वल होकर पत्र लिखने को मना नहीं किया था, परन्तु अब मुझे याद आया कि डाकू मुझे उठाकर ले गये थे। अब मेरी जाति क्या है ? यह सोचकर ससुर, स्वामी सब मेरा बहिष्कार करेंगे। मैंने सोचा, वहां पत्र लिखना उचित नहीं हुआ।

एक दिन प्रातःकाल उठकर मैंने घर पर कुछ विशेष आयोजन देखा। रमन बाबू वकील थे। एक बहुत बड़े आदमी उनके मुवक्किल थे। मैं दो दिन से सुन रही थी कि वह कलकत्ता आये हैं। रमन बाबू और उनके पिता उनके घर बराबर आ रहे थे। मैंने आज सुना कि उन्हें दोपहर के भोजन का निमन्त्रण दिया गया है। इसीलिए रसोई की विशेष रूप से तैयारी हो रही थी। भांति-भांति के भोजन तैयार कराये जा रहे थे।

रसोई का भार मेरे ऊपर था। मैंने बड़े यत्न से रसोई बनाई। भोजन करने का स्थान अन्दर के कमरे में रखा गया था। रामराय बाबू, रमन बाबू और निमन्त्रित व्यक्ति, तीनों भोजन पर बैठे। परोसने का भार ब्राह्मणी पर था। मैं कभी बाहर के लोगों को खाना नहीं परोसती थी।

वृद्धा भोजन परस रही थी। मैं रसोई-घर में थी। उसी समय एक गड़बड़ पैदा हो गई। रमन बाबू वृद्धा को डांट रहे थे। एक दासी ने आकर कहा, 'दूसरों को मूर्ख बनाते हैं।'

मैंने पूछा, 'क्या हुआ ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दासी बोली, 'ब्राह्मणी दादा बाबू की थाली में दाल परस रही थी। उन्होंने 'उहूं-उहूं' कहकर हाथ बढ़ा दिया। सारी दाल उनके हाथ पर पड़ गई।'

रमनबाबू ब्राह्मणी से बिगड़कर कह रहे थे, 'जब तुम्हें परोसना नहीं आता तो आती क्यों हो ? यह काम अन्य किसी को नहीं दे सकतीं ?'

रामराय बाबू बोले, ' यह तुम्हारा काम नहीं है। जाकर कुमुद को भेज दो। वह भोजन परोसेगी।'

ठकुरानी वहां नहीं थीं तो मना कौन करता ? मालिक की आज्ञा टालती भी तो कैसे ? जाने पर मालकिन क्रोध करेंगी, यह भी मैं जानती थी। दो-चार ब्राह्मणी को समझाया, 'सावधानी से परोसना' परन्तु वह वास्तव में ठीक से परोसना जानती ही नहीं थी। उसका हाथ बार-बार कांप जाता था।

लाचार होकर मुझे ही परोसने को जाना पड़ा। मैं घूंघट में थी, परन्तु घूंघट में भी स्त्रियों का स्वभाव छिप नहीं पाता। मैंने घूंघट के भीतर से एक बार उस निमन्त्रित बाबू को कौतूहलवश देखा।

उसकी आयु लगभग तीस वर्ष की थी। गोर वर्ण का बहुत सुन्दर युवक था। वह रमणी-मनोहर प्रतीत होते थे। मैं बिजली चमक के समान तुरन्त अनमनी-सी हो उठी। शाक बर्तन लेकर तनिक देर खड़ी रही। मैं घूंघट के अन्दर से उन्हें देख रही थी। उसी समय उन्होंने मुंह ऊपर किया। उन्होंने देखा कि मैं घूंघट के अन्दर से उन्हें देख रही थी। मैंने जान-बूझकर अपनी इच्छा से उनके प्रति आंखों का कुटिल कटाक्ष नहीं मारा। ऐसा पाप इस हृदय में नहीं था। मैं तो समझती हूं कि सांप भी जान-बूझकर स्वेच्छा से फण नहीं फैलाता। ऐसा लगता था कि वह कुटिल कटाक्ष से देख रहे थे। उन्होंने जरा हंसकर मुंह झुका लिया। उस हंसी को केवल मैं ही देख सकी। मैं सारा शाक उनकी थाली में डालकर चली आई।

मैं कुछ लज्जित और दुखी हुई। मैं सधवा होकर भी जन्म से ही विधवा हो गई थी। ब्याह के समय केवल एक बार स्वामी का दर्शन हुआ था। आज ऐसे गहरे पानी में कंकड़ी फेंकने से मुझे लगा कि लहरें उठीं। वह सोचकर मैं बहुत खिन्न हो उठी। मैंने मन-ही-मन नारी-जीवन को सैकड़ों बार धिक्कारा। मैंने स्वयं को भी हजार बार धिक्कारा।

रसोई में लौट आने पर मेरे मन में हुआ कि उन्हें मैंने पहिले कहीं देखा है। सन्देह मिटाने के लिए मैं फिर आड़ में उन्हें देखने गई। विशेष ध्यान से देखकर मैं अपने आपसे बोल उठी, 'पहिचानती हूं।'

उसी समय रामराय बाबू ने और दूसरी खाने की वस्तुएं लाने के लिए पुकारा। कई तरह का भोजन बनाया था। मैं लेकर गई। देखा उन्होंने उसी कटाक्ष को आंखों में स्थान दे रखा था। उन्होंने रामराय से कहा, 'रामराय बाबू ! अपनी महाराजिन से कहिए कि उसकी रसोई बहुत उत्तम बनी है।'

रामराय ने उनके भीतर की बात तो समझी नहीं, बोले, 'हां यह बनाती ही बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छा है।'

मैंने मन में कहा, 'तुम्हारा सिर बनाती हूं।'

निमन्त्रित बाबू ने कहा, 'किन्तु यह बड़े आश्चर्य की बात है कि आपके घर में एक-दो चीज मेरे देश के ही समान बनती हैं।'

मैंने सोचा, 'सचमुच दो एक प्रकार की रसोई मैंने अपने देश की प्रथा के अनुसार बनाई थीं।'

रामराय ने कहा, 'वह होगा। इसका घर इस देश में नहीं हैं।'

उन्होंने इस बार मार्ग पा लिया। एक बारगी मेरे मुंह की ओर देखकर पूछ बैठे, 'तुम्हारा घर कहां है महाराजिन ?'

मेरी पहिली उलझन यह थी कि उत्तर दूं या नहीं। मैंन निश्चय किया कि मैं उन्हें उत्तर दूंगी।

मेरी दूसरी उलझन यह थी कि मैं सच बोलूं या झूठ ? इस विषय में मैंने स्थिर किया कि मैं झूठ बोलूंगी क्यों ऐसा निश्चय किया, यह तो वही जानता है जिसने स्त्री के हृदय को वक्र गति से चलने वाला बनाया है। मैंने सोचा, 'आवश्यक हुआ तो सच बात कहना मेरे हाथ में रहेगा। अभी झूठ ही कहकर देखूं।' यही सोचकर मैंने उत्तर दिया 'मेरा घर काली दीधी में हैं।'

कालीदीधी का नाम सुनकर वह चौंक उठे। क्षण भर पश्चात् उन्होंने कोमल स्वर में कहा, 'कौन-सी कालदीधी ? क्या डाकुओं की कालीदीधी ?'

मैंने कहा, 'जी हां वही कालीदीधी।'

उन्होंने और कुछ नहीं कहा। वह जड़ से हो गए।

मैं शाक का बर्तन हाथ में लेकर खड़ी थी। अब खड़ी रहना उचित नहीं था, यह मैं भूल ही गई। मैंने देखा कि वह फिर अच्छी तरह भोजन नहीं कर पाए। यह देखकर रामराय ने कहा, 'उपेन्द्र बाबू ! आप तो कुछ खा ही नहीं रहे। क्या भोजन रुचिकर नहीं लग रहा आपको ?'

'नहीं, खा रहा हूं। भोजन बहुत रुचिकर है।' उन्होंने अनमने से भाव से कहा। मैंने देखा उनके हाथ का टुकड़ा हाथ में ही रुक गया था।

मैंने नाम सुनने के पहिले ही पहिचान लिया था कि वही मेरे पति देव थे।

मैं रसोईघर में जाकर बर्तन फेंककर बहुत दिन पश्चात् एक बार प्रसन्नमना बैठी। रामराय दत्त ने कहा, 'क्या गिरा ?'

मैंने शाक का बर्तन उठाकर एक ओर फेंक दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7

यहां से इस वर्णन में मुझे पति देव का नाम लेना आवश्यक होगा। अब तुम रसिक पांच लड़कियां मिलकर कमेटी करके मुझे बता दो कि मैं किस शब्द का उच्चारण करके उनका नाम लूं ? पांच सौ बार स्वामी-स्वामी कहकर कानों को जला दूं या फोड़ दूं।

शाक के बर्तन को हटाकर मैंने मन में निश्चय किया, 'यदि विधाता ने खोए हुए धन को लौटाया है, तो अब इसे छोड़ा नहीं जा सकेगा। बच्चों की तरह लज्जा करके सब-कुछ नष्ट न करूंगी।'

यह सोचकर मैं ऐसे स्थान पर जा खड़ी हुई, जहां से भोजन करने के लिए स्थान से बाहर जाते समय जो इधर-उधर देखता जाए तो वह मुझे देख सके। मैंने अपने मन में कहा, 'यदि वह इधर-उधर देखते न जाएं, तो मैंने इस बीस वर्षो में पुरुष का चरित्र कुछ भी नहीं समझा ?' मैं सिर पर थोड़ा-सा कपड़ा डालकर खड़ी थी।

सबसे पहिले रमन बाबू गए। वह चारों ओर देखते हुए गए। उनके बाद रामराय दत्त गए। उन्होंने भी किसी ओर नहीं देखा। उनके पश्चात् मेरे पति आए। उनकी आंखे चारों ओर मानो किसी को खोज रही थीं। मैं उनके दृष्टि-पथ में पड़ी। उनकी आंखें मुझे ही खोज रही थीं। उन्होंने ज्यों ही मुझे देखा तो मैं सिकुड़कर रह गई। बाद में मुझे ज्ञात हुआ कि 'प्राणनाथ' घायल हो गए थे।

मैंने महारानी की शरण लेने की सोची। मैने उसे एकांत में बुलाया। उसने जोर से हंसकर कहा, 'भोजन परोसते समय बामनी की सूरत देखी थी ?' उत्तर की राह देखे बिना ही वह जोर से हंस पड़ी।

मैं बोली, 'सो तो देखी थी, परन्तु मैंने तुझे उसके लिए नहीं बुलाया है। क्या तू मेरा काम कर सकेगी ? यह बाबू कब जाएंगे, मुझे यह सूचना ला दे।'

हारानी की हंसी मेरी यह बात सुनते ही एक दकदम बन्द हो गई। उसने गम्भीर भाव से कहा, 'दीदी महारानी ! तुम्हें यह भी रोग है, यह मैं नहीं जानती थी। मैं इस काम के बीच में नहीं पड़ूंगी।'

मैंने हंसकर कहा, 'आदमी के सब दिन समान नहीं होते हारानी ! इस समय तुम अपनी यह गम्भीरता रहने दो। मेरा यह काम करोगी कि नहीं, यह बताओ ? मैं तुझसे विनती करती हूं।'

हारानी ने कहा, 'मुझसे यह काम किसी भी दशा में नहीं हो सकता। मैंने ऐसा काम कभी नहीं किया।'

मैं हारानी के पास खाली हाथ नहीं गई थी। वेतन के रुपए मेरे पास थे। मैंने पांच रुपए उसके हाथ में दिए और कहा, 'तू मेरा सिर खा। यह काम तुझे करना ही होगा हारानी !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हारानी उन रुपयों को फेंकने जा रही थी, परन्तु वैसा न करके वे उसने चूल्हा पोतने की मिट्टी के ढेर पर रख दिए। वह गम्भीर भाव से बोली, 'तुम्हारे रुपए फेंक रही थी, परन्तु शब्द होने पर कोलाहल हो जाता, इसलिए धीरे से यहां रख दिए हैं। इन्हें उठा लो और फिर कभी यह बात मुंह पर ल लाना।'

मैं रो उठी। हारानी विश्वासिनी थी। मेरे रोने का अर्थ वह नहीं समझ सकी। फिर उसे कुछ दया आई। उसने कहा, 'तुम रोती क्यों हो ? यह तुम्हारे आदमी हैं क्या ?'

मैंने एक बार सोचा, हारानी को सब खोलकर बता दूं। फिर सोचा यह मेरा विश्वास नहीं करेगी। व्यर्थ यह कोई झंझट पैदा कर देगी। मैंने सोच-समझकर निश्चय किया कि सुभाषिनी को छोड़कर और कहीं मेरी गति नहीं है। वही मेरी बुद्धि है, वही मुझे बचाने वाली है। उसी से सब कहकर राय लूं। मैंने हारानी से कहा, 'जाने हुए आदमी हैं, बहुत जाने हुए। सब बात सुनकर तुम विश्वास नहीं करोगी, इसलिए तुझसे सब बातें खोलकर नहीं कहीं। इस काम में कोई दोष नहीं है।'

'कुछ दोष नहीं है,' कहकर मैंने कुछ सोचा। मेरे ही लिए कुछ दोष नहीं, किन्तु हारानी के लिए है ? मैं फिर उसे कलंक क्यों दूं ? मैंने कुतर्क से मन को समझाया। जो दुर्दशा में पड़ता है, वह अपने उद्धार के लिए कुतर्क का सहारा लेता है। मैंने हारानी को फिर समझाया, 'इसने कुछ दोष नहीं है।'

'क्या तुम्हें उनसे मिलना होगा ?' उसने पूछा।

'हां मिलना होगा।' मैंने दृढ़तापूर्वक कहा।

'कब मिलना होगा ?' उसने पूछा।

'रात्रि में, जब सब लोग सो जाएंगे ?' मैंने कहा।

''तुम अकेली ही मिलने जाओगी।' उसने पूछा।

'हां, मैं अकेली ही जाऊंगी।' मैंने कहा।

'तब तो यह काम मेरे बाप से भी नहीं हो सकता। मैं यह काम कभी नहीं कर सकती।' हारानी ने दृढ़तापूर्वक कहा।

'ठकुरानी बहू यदि आज्ञा दें तब ?' मैंने कहा।

'क्या तुम पगली हो गई हो ? वह कुल-वधु हैं, सती हैं, लक्ष्मी हैं। वह क्या इन सब कामों में हाथ डाल सकती है ?'

'यदि वह मना न करें तो जाओगी ?' मैंने कहा।

'जाऊंगी, परन्तु तुम्हारे रुपये नहीं लूंगी। अपने रुपये ले लो।'

'अच्छा।'

मैंने वे रुपये उठा लिये और अपनी आंखों के आंसू पोंछकर सुभाषिनी की खोज में गई। मैंने उसे अकेले में पाया। वह मुझे देखकर प्रातःकाल के कमल के समान हर्ष से खिल उठी। उसके सारे अंग खिल उठे। सुभाषिनी ने हंसकर, मेरे कान के पास अपना मुंह लाकर, पूछा। पहिचाना ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं आसमान से गिर पड़ी। मैंने कहा, 'वह कौन हैं, तुमने कैसे जाना ?'

सुभाषिनी ने मुंह घुमाकर कहा, 'अहा, तुम्हारा चांद तुम समझती हो अपने आप ही आकर पकड़ा गया है ? हम आकाश में भी छलांग लगाना जानते हैं। इसी से हमने तुम्हारे चांद को पकड़कर ला दिया।'

मैंने कहा, 'हम कौन ? क्या तुम और र-बाबू ?'

'नहीं तो अन्य कौन ? तुमने मुझे अपने 'पति, ससुर और उनके गांव का नाम बता दिया था, याद है ? वह सुनकर ही र'बाबू पहिचान गये थे। तुम्हारे पति का र-बाबू के हाथ में एक बड़ा मुकदमा है। उसी के बहाने तुम्हारे बाबू को कलकत्ता आने को लिखा गया था। उसके पश्चात् उन्हें भोजन का निमन्त्रण दिया गया।'

'उसके पश्चात् हाथ फेलाकर वृद्धा से दाल ली गई।' मैंने कहा।

'हां, वह भी हम लोगों की चाल थी।' सुभाषिनी बोली।

'तो क्या मेरा कुछ परिचय दिया गया है उन्हें ?' मैंने पूछा।

'सर्वनाश ! वह क्या ऐसे दिया जाता है ? तुमको डाकू उठाकर ले गये थे। उसके पश्चात् कहां गई, क्या हुआ, यह कौन जानता है ? तुम्हारा परिचय जानकर क्या वह तुम्हें घर में लेंगे ? कहेंगे, हम चाल चल रहे हैं। र-बाबू कहते हैं, अब तुम अपने आप जो करना हो सो करो।'

'मैं एक बार अपने भाग्य को लड़ाकर देखूंगी, न लड़ा तो गंगा में डूब मरूंगी, परन्तु बिना उनसे मिले कैसे बनेगा ?'

'कब मिलोगी ?' सुभाषिनी ने पूछा।

'तुम लोगों ने यदि इतना किया है तो थोड़ी सहायता और करो। उनके बासे पर जाने पर भेंट नहीं होगी क्या ? वहां मुझे कौन ले जायेगा ? मुझे उनसे कौन मिलायेगा ? वहीं पर भेंट करनी होगी।' मैंने कहा।

'कब भेंट करना चाहती हो ?' सुभाषिनी ने पूछा।

'रात्रि में, सबके सो जाने पर।' मैंने कहा।

'अभिसारिका बनकर भेंट करना चाहती हो ?' सुभाषिनी मुस्कराकर बोली।

'अन्य उपाय ही क्या है ? इसमें दोष भी क्या हैं ? हैं तो वह मेरे पति ही।' मैंने दृढ़तापूर्वक कहा।

'नहीं, कोई दोष नहीं है। ऐसा करने के लिए उन्हें रात्रि में रोकना होगा। उनका बासा निकट ही है। यह बात कैसे हो सकेगी, यह मैं र-बाबू से राय लेकर देख लूं।' सुभाषिनी बोली।

सुभाषिनी ने रमन बाबू को बुलाया। उसके साथ बातें हुई। फिर मुझे आकर बताया, 'र-बाबू जो कर सकेंगे वह यह है कि वह इस समय मुकदमे के कागज नहीं देखेंगे। कुछ बहाना करके उन्हें रात्रि में रोकें। कागज देखने के लिए संध्या का समय निश्चित होगा। शाम को तुम्हारे स्वामी के आने पर कागज-पत्र देखेंगे। कागज-पत्र देखते-देखते रात कर देंगे। रात हो जाने पर भोजन के लिये अनुरोध करेंगे। उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चात् जो तुम्हारी बुद्धि कहे, वह करना। रात्रि में रोकने के लिए हम लोग क्या कहकर अनुरोध करेंगे ?

मैंने कहा, 'वह अनुरोध तुम नहीं, मैं करूंगी। मेरा अनुरोध जैसे भी सुनेंगे, मैं वही करके उन्हें रोकूंगी। मैंने जो दो-एक कटाक्ष उन पर मारे हैं, उन्होंने उन्हें लौटा दिया है। एक पत्र लिखकर दूंगी। उस कागज को उनके पास पहुंचा देना होगा बस।'

'नौकर के हाथ भेज देना।' सुभाषिनी बोली।

'यदि जन्म-जन्मान्तर में भी पति को न पा सकूं तो भी किसी पुरुष से यह बात नहीं कह सकूंगी।' मैंने कहा।

'सो तो ठीक है, फिर दासी से भेज देना।' सुभाषिनी ने कहा।

'दासी विश्वासिनी है क्या ? गड़बड़ हो गई तो मेरा सर्वस्व लूट जायेगा।' मैंने दीनभाव से कहा।

'हारानी से कहा था।'

'कहा था वह मेरे यह बात कहने से नाराज हो गई। तुम्हारा संकेत पाकर वह जा सकेगी, किन्तु तुम्हें ऐसा करने के लिए कहूं कैसे ?' मेरी आंखों में पानी भर आया।

'हारानी ने क्या कहा ?' सुभाषिनी ने पूछा।

'तुम यदि कहो तो वह जा सकती है ?' मैं बोली।

सुभाषिनी बोली, 'संध्या को उसे इस काम के लिए जाने को कहना। मैं उससे कह दूंगी। वह अवश्य जायेगी। हारानी पूरी तरह विश्वासिनी है।'

8

संध्या समय मेरे पति कागज लेकर रमन बाबू के पास आये। मैंने हारानी से अपने काम के लिए कहा। हारानी बोली, 'बहू दीदी कहें तो कर सकती हूं। तब मैं समझूंगी कि उसमें कोई दोष नहीं है।'

मैंने कहा, 'तो चल, उन्हीं से कहला देती हूं।'

यह संकेत पाकर वह हंसती-हंसती बहुरानी के पास गई। मैं उसकी राह देखने लगी। मैंने देखा वह हंसी का फव्वारा छोड़ती हुई हंसती हुई मेरे पास लौटी। मैंने पूछा, 'क्यों इतनी हंसी क्यों ?'

'दीदी, ऐसी जगह भी किसी अन्य आदमी को भेजते हैं क्या ? प्राण चले गऐ और क्या ?' हारानी हंसती हुई बोली।

'क्या कहा ?' मैंने पूछा।

'मैं जानती हूं, बहू दीदी के घर झाड़ू नहीं है, जरूरत पड़ने पर झाड़ू लेकर हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग झाड़ू दे आते है। आज देखा कि बहू दीदी के पास ही किसी ने झाड़ू रख दी थी। मैंने ज्यों ही कहा, 'मैं जाऊं क्या ?' तो बहू दीदी झाड़ू लेकर मुझे मारने दौड़ीं। भाग्य से दौड़ना जानती हूं, इसी से भाग आई, नहीं तो झाड़ूं खाकर प्राण चले जाते। तो भी एक चोट पीठ पर पड़ गई। देखो तो पीठ पर दाग लगा है क्या ?' हारानी ने हंसते-हंसते मुझे पीठ दिखाई।

'झूठ बात, कोई दाग नहीं है।' मैंने कहा।

'मुझे क्या करना होगा, कहो, कर आऊं।' हारानी बोली।

'क्या सचमुच झाड़ू खाकर जायेगी !' मैंने पूछा।

'झाड़ू मारी है, मना नहीं किया। मैंने कहा था कि मना नहीं करेंगी तो जाऊंगी।' हारानी बोली।

'झाड़ू मारना, मना करना नहीं है ?' मैंने पूछा।

'हां, देखो दीदी रानी ! बहू दीदी ने जब झाड़ू उठाई तो देखा कि उनके होठों के कोने पर थोड़ी हंसी थी। मुझे क्या करना होगा, कहो ?'

तुम्हारा काम मैं कर आती हूं।'

मैंने एक कागज पर लिखा, 'मैंने आपको अपना हृदय और प्राण दे दिये। स्वीकार करेंगे क्या ? यदि करें तो आज रात्रि में इसी घर में सोइये। वही, आपकी महाराजिन।'

पत्र लिखकर, मन में होने लगा कि पोखर में डूब मरूं, अथवा अंधेरे में छिप जाऊं ? विधाता ने कैसा भाग्य दिया ? शायद कभी किसी कुलीन स्त्री के भाग्य में ऐसी दुर्घटना न घटी हो।

मैंने कागज को मोड़कर हारानी के हाथ में दिया और बोली, 'ठहर जरा।' मैंने अन्दर जाकर सुभाषिनी से कहा, 'तुम जरा र-बाबू को यहां बुला लो।'

सुभाषिनी ने वैसा ही किया।

रमन बाबू के आने पर मैंने हारानी से कहा,'अब जा।'

हारानी चली गई। कुछ देर पश्चात् वह कागज लौटाकर लाई। उसके कोने पर लिखा था, 'अच्छा !'

मैंने हारानी से कहा, 'इतना किया है तो एक काम और करना। आधी रात को मुझे उनके सोने का कमरा दिखा आना।'

'कोई दोष तो नहीं है इसमें ?' हारानी ने पूछा।

'कुछ भी नहीं। यह पहिले जन्म में मेरे स्वामी थे। मैंने कहा।

'पहिले जन्म में या इस जन्म में, यह मैं ठीक से समझ नहीं पा रही हूं ?' हारानी हंसकर बोली।

मैंने हंसकर कहा, 'चुप नहीं रहेगी पगली !'

हारानी हंसकर बोली, 'यदि इस जन्म के हैं तो मैं पांच सौ रुपये उपहार लूंगी, समझी।'

मैंने सुभाषिनी के पास जाकर सारी बात कही। सुभाषिनी अपनी सास से आकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलीं, 'आज कुमुदनी का जी अच्छा नहीं है। वह रसोई नहीं करेगी, सोना की मां खाना बनाये।'

सोना की मां रसोई करने गई। सुभाषिनी ने मुझे घर में ले जाकर किवाड़ बन्द कर लिये। मैंने पूछा, 'यह क्या ? मुझे कैद क्यों कर रही हो तुम ?'

सुभाषिनी बोली, 'तुम्हें सजाऊंगी जरा।'

सुभाषिनी ने मेरे बालों में तेल डालकर यत्न से जूड़ा बांध दिया। फिर कहा, 'इस जूड़े का दाम एक हजार रुपये हैं। समय आने पर मुझे भेज देना।' उसके पश्चात् अपनी एक सुन्दर-सी साड़ी मुझे पहिनाने लगी। उसकी खींचातानी में नंगी हो जाने के भय से मैं पहिनने को बाध्य हो गई। फिर वह अपने गहने पहिनाने लगी। मैंने कहा, 'ये सब मैं नहीं पहनूंगी।'

इस पर बहुत वाद-विवाद हुआ। मैंने जब किसी प्रकार भी स्वीकार न किया तो वह बोली, 'मैने एक सेट रखा है, वह पहिनो। बिलकुल नया है।'

वह उसने मुझे पहिना दिया। उसके पश्चात् एक जोड़ा नई सोने की ईयररिंग निकालकर बोली 'यह मैंने अपने रुपये र-बाबू को देकर मंगवाया है, तुम्हें देने के लिए। तुम जहां भी रहो, इन्हें पहिनकर मुझे याद कर लिया करना। क्या जानूं, सम्भवतः आज के पश्चात् तुमसे भेंट ही न हो। भगवान ऐसा ही करें। इसलिए तुमको आज ये ईयररिंग दे रही हूं।' इसमें 'ना' न करना।'

यह कहती हुई सुभाषिनी रो पड़ी। मेरी आंखें में भी आंसू आ गये। मैं 'नां' नहीं कर सकी। सुभाषिनी ने मेरे कानों में ईयररिंग पहिना दिये।

साज-सज्जा के पश्चात् दासी सुभाषिनी के लड़के को दे गई। मैंने लड़के को गोद में लेकर उससे बातें कीं। वह एक कहानी सुनकर सो गया। मैं वहीं बैठी रही।

मन में उस समय एक दुःख की बात पैदा हुई। उसे भी मैं सुभाषिनी से कहे बिना न रह सकी। मैंने कहा, 'मैं प्रसन्न हूं, पर मन से उनकी निन्दा भी करती हूं। मैंने उन्हें पहिचान लिया कि वह मेरे पति हैं। इससे मैंने जो किया है, उसमें मेरे विचार से कोई दोष नहीं है, परन्तु उनका मुझे पहिचानना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है। मैंने उन्हें युवावस्था में देखा था। इसलिए मुझे पहिले ही संदेह हुआ था। उन्होंने मुझे ग्यारह वर्ष की लड़की के रूप में देखा था। उन्होंने मुझे पहिचाना है, इसका लक्षण दिखाई नही पडता। इसलिये वह मुझे पर स्त्री समझकर मेरे प्रेम में लिप्त हुए हैं। यह जान कर मैंने मन-ही-मन उनकी निन्दा की है, परन्तु वह मेरे पति हैं और मैं उनकी पत्नी। उनके विषय में बुरा विचार करना मेरा कर्तव्य नहीं है। इसलिए मैं इस बात की बुराई नहीं करूंगी। मैंने मन में संकल्प कर लिया कि यदि कभी अवसर पाऊंगी, तो उनकी यह आदत छुड़ा दूंगी।'

सुभाषिनी ने मेरी बात सुनकर कहा, 'तुम्हारे समान बन्दरी वृक्ष पर भी नहीं मिलेगी। पगली ! पुरुष और स्त्री क्या बराबर होते हैं ? तू कमसरियट में काम करके रुपये ले आ तो जानूं ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वह पेट से बच्चा पैदा करें तो मैं भी कमसरियट जाऊं। जो जो, कर सकता है, वह वही करता है। पुरुष क्या इन्द्रियों को इतना वश में कर सकते है। जितना स्त्री ?' मैंन स्त्री-गौरव की रक्षा करते हुए कहा।

'पहिले तेरा घर हो जाये, उसके पश्चात तू घर में आग लगा लेना। इस समय इन बातों को रहने दे, देख। ऐसा सोचने से तेरा काम न चलेगा।' सुभाषिनी गम्भीर वाणी से बोली।

मैं बोली, 'यह विद्या तो कभी सीखी नहीं।'

'तो मुझ से सीख। मैं इस शास्त्र की पण्डिता हूं। क्या यह नहीं जानती तू ?' सुभाषिनी ने मुस्कुराकर कहा।

'सो तो देखती हूं, नित्य ही देखती हूं।' मैं बोली।

'तो सीख। तू मानो पुरुष है। मैं किस प्रकार तेरा मन लुभाती हूं, देखा।' यह कहकर सुभाषिनी ने अपने मुंह पर कुछ घूंघट कर लिया। अपने हाथ से सुगन्धित पान लाकर मुझे खाने को दिया। वह पान वह केवल रमन बाबू के लिए रखती थी। स्वयं वह कभी पान नहीं खाती थी। रमनबाबू का दीपक वहीं था। उसमें तेल था। सुभाषिनी ने उसकी बत्ती खींचकर उसे जलाया। उसके पश्चात् फूल कढ़े ताड़ के पंखे से मेरी हवा करने लगी। हाथ के कड़े और चूड़ियों से बड़ी मीठी झंकार उसने पैदा की।

मैं बोली, 'यह तो तुम्हारा दासीपना है। दासीपने से मेरी विद्या कितनी दूर है, क्या इसी का परिचय पाने के लिए उन्हें आज रोका है तुमने ?'

सुभाषिनी बोली, ' हम लोग दासी नहीं तो और क्या है ?'

मैंने कहा, 'जब उनमें प्रेम उत्पन्न होगा, तभी दासीपना चलेगा। तब पंखा झलूंगी, पैर पलोटूंगी, पान ले जाकर दूंगी, तम्बाकू सजा और जलाकर दूंगी। वह सब इस समय के लिए नहीं है।'

सुभाषिनी हंसती हुई आकर मेरे पास बैठ गई। मेरे हाथ को अपने हाथों में लेकर मीठी बातें करने लगी। पहिले हंसकर कर्णफूलों को हिलाकर उसने जो रंग सजाया था, उसी के अनुरूप बातें की। बातों-बातों में वह दासी भाव को भूलकर सखी-भाव से बातें करने लगी। मैं चली जाउंगी, यह बात भी आ गई। उसकी आंखों में आंसू झिलमिलाने लगे। उसे प्रसन्न करने को मैंने कहा, 'जो तुमने सिखाया, वह स्त्रियों का अस्त्र है, परन्तु इस समय उ-बाबू पर वह काम न करेगा। इस समय मुझे दूसरे अस्त्र का प्रयोग करना होगा।'

सुभाषिनी हंसकर बोली, 'तो मेरा ब्रह्मास्त्र ले तू ?' यह कहकर उसने मेरे गले में हाथ डालकर मेरे मुंह को उठाकर चूम लिया। उसका एक आंसू मेरे गाल पर चिपक कर रह गया।

अपनी आंखों के आंसू रोककर मैं बोली, यह तो बिना संकल्प के ही दक्षिणा देना सिखा रही हो तुम।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुभाषिनी बोली, 'तब तू सीखेगी नहीं। तू क्या प्राण देकर सीखना चाहती है?' यह कहकर वह सोफे पर बैठकर हंसी न रोक सकने के कारण मुंह में कपड़ा ठूंसने लगी। उसने हंसी रुकने पर मेरे मुंह की ओर देखा और फिर वहीं लेट गई।

मैंने कुछ कहा नहीं, केवल हंसती रही।

सुभाषिनी मुझे सोफे से ढकेलकर बोली, 'दूर हो पापिष्ठा ! तू तो जादूगरानी है ?'

मैंने कहा, 'क्यों ? मैंने क्या किया है ? मैंने तो एक शब्द भी नहीं कहा।'

'इस हंसी पर पुरुष क्या टिकेगा ? मरकर मृत हो जाएगा।'

'तो प्रमाण ठीक रहा।' मैं बोली।

'कमसरियट के पुरुषों ने भला ऐसी हंसती दृष्टि जीवन में कहां देखी होगी ? पुरुष का सिर यदि घूम जाये तो जरा तेल दे देना उसमें। बस यही करना।'

'बोल-चाल से ज्ञात होता है कि बाबू लोगों का भोजन हो गया। मैं अब विदा होती हूं। जो सिखाया है, उनमें एक बात बड़ी ही मीठी लगी। वह था मुंह का चुम्बन। आओ एक बार और सीखूं।'

सुभाषिनी ने मेरा गला पकड़ लिया और मैंने उसका गला पकड़ लिया। प्रगाढ़ आलिंगन के साथ एक-दूसरे का मुंह चूमकर, गले पकड़कर, दोनों देर तक रोती रहीं। ऐसा प्रेम क्या फिर कही मिलेगा ? सुभाषिनी के समान क्या कोई प्रेम करना जानती है ? मर जाऊंगी पर सुभाषिनी को नहीं भूलूंगी।

9

मैं हारानी को सावधान करके अपने सोने के कमरे में चली गई। बाबू लोगों का भोजन हो चुका था। कोई पंखा मांग रहा था, कोई पानी, कोई डाक्टर को बुला रहा था।

हारानी हंसती हुई आई। मैंने पूछा, 'यह गड़बड़ कैसी है ?'

'वही बाबू मूर्छित हो गए।' हारानी बोली।

'उसके पश्चात् ? मैंने पूछा।

'अब संभल गए हैं।' हारानी ने उत्तर दिया।

'फिर क्या हुआ ?' मैंने पूछा।

'अवसन्न से हैं। वह घर नहीं जा सके। यहीं बड़ी बैठ के पास वाले कमरे में सो गए हैं।' हारानी ने कहा।

मैं समझ गई कि यह सब चालाकी है। मैं बोली, 'सब बत्तियां बुझ जाने और सबके सो जाने पर जाऊंगी।'

'परन्तु तबियत जो ठीक नहीं है उनकी।' हारानी ने कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तेरा सिर।' यह कहकर मैं हंस पड़ी।

हारानी हंसती हुई चली गई। सब बत्तियों के बुझ जाने पर हारानी मुझे साथ ले जाकर वहां पहुंचा आई। मैंने कमरे में प्रवेश किया तो देखा वह अकेले ही थे। कष्ट तनिक भी नहीं था उन्हें। कमरे में दो दिए जल रहे थे। उनका प्रकाश फैला हुआ था। वहां पहुंचकर मेरा बदन आनन्द में डूब गया।

यौवन पाने के पश्चात् मेरी पति से यह प्रथम भेंट थी। मैं बड़ी बोलने वाली थी, परन्तु जब उनसे बातें करने लगी तो मुंह से बात नहीं निकली। मेरा गला रुंधने लगा। मेरे सारे अंग कांपने लगे। मेरा हृदय धड़कने लगा। मेरा हलक सूखने लगा। मेरे मुख से बात बाहर नहीं आई, मैं रो पड़ी।

मेरे आंसुओं को वह समझ न सके। वह बोले, 'तुम रोती क्यों हो ? मैंने तो तुम्हें बुलाया नहीं। तुम स्वयं आई हो। फिर तुम रोने क्यों लगीं ?'

इस कठोर वाक्य से मेरे हृदय पर आघात हुआ। उन्होंने मुझे कुल्टा समझा। इससे आंखों की जलन और बढ़ गई। मैंने सोचा, अब अपना परिचय दूं। यह व्यथा अब सही नहीं जाती, परन्तु मन में आया कि परिचय देने पर यदि यह विश्वास न कर सके तब ? यदि मन में सोचा कि इसका घर कालीदीधी में है, अवश्य ही मेरी स्त्री के चुराये जाने का समाचार इसने सुना होगा। कहीं यह न सोचने लगें कि यह ऐश्वर्य पाने के लालच से मेरी स्त्री बन, झूठा परिचय दे रही है। ऐसा होने पर किस प्रकार इन्हें विश्वास दिलाऊंगी ? इसलिए परिचय नहीं दिया। मैं लम्बी सांस छोड़कर, आंखों के आंसू पौंछकर, उनके साथ कुछ बातें करने में लगी। अन्य बातों के पश्चात् उन्होंने कहा, 'कालीदीधी में ऐसी सुन्दरी भी पैदा हो सकती है, यह मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकता।'

मैंने उनकी आंखों को लक्ष्य किया। वह बड़े आश्चर्य के साथ मुझे देख रहे थे। उनक नेत्र मुझ पर गड़े थे।

उनकी बात के उत्तर में मैंने अच्छाई जोड़कर कहा, 'मैं सुन्दरी नहीं, बन्दरी हूं। हमारे देश के बीच आपकी स्त्री ही सौन्दर्य की गौरव थीं।' इस बहाने से उनकी स्त्री की बात लाकर मैंने पूछा, 'उनका कुछ पता चला क्या ?'

'नहीं। तुम कितने दिन से अपने देश से आई हो ?'

'मैं उस घटना के पश्चात् ही देश से आई थी। मालूम देता है, आपने दूसरा विवाह कर लिया है।' मैंने कहा।

'नहीं, मैंने अभी विवाह नहीं किया है।' वह बोले।

बड़ी-बड़ी बातें कीं। मैंने देखा कि उनके पास उत्तर देने का अवकाश नहीं था। मैं एक अभिसारिका बनकर गई थी। मेरा आदर करने का ही उनके पास समय था। वह विस्मय के साथ मेरी ओर देखते रहे। उन्होंने मुझसे कहा, 'ऐसा रूप तो मैंने मनुष्यों में नहीं देखा। तुम वास्तव में बहुत रूपवती हो। तुम मेरे हृदय में आकर बस गई हो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी सौत नहीं है, यह सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई थी। मैंने कहा, 'आप जैसे बड़े आदमी हैं, यह वैसे ही विचार का काम हुआ है। नहीं तो यदि आपकी स्त्री मिल जाती तो दोनों सौतों में ठेलापेली होने लगती।'

उन्होंने मधुर हंसी के साथ कहा, 'उसका भय नहीं है। उस स्त्री को पाने पर भी मैं अपनाऊंगा, ऐसा मालूम नहीं पड़ता। उसकी अब कोई जाति भी है, यह विचार करना होगा।'

ये शब्द सुनकर मेरे सिर पर बिजली-सी गिर पड़ी। मेरी यह आशा नष्ट हो गयी कि वह मेरा परिचय पाकर मुझे अपनी स्त्री के रूप में पहिचानने पर भी ग्रहण करेंगे। मेरा नारी-जीवन व्यर्थ हो गया।

मैंने साहस करके पूछा, 'यदि आप उन्हें पा जाएं तो क्या करें ?'

उन्होंने निस्संकोच भाव से कहा, 'मैं उसे छोड़ दूंगा।'

'इतनी निर्दयता !' मैंने अपने मन में कहा। मैं ठगी-सी रह गई। धरती मेरी आंखों के सामने घूमने लगी। मेरा सिर चकरा गया। मेरी आंखें बरस पड़ीं।

उस दिन मैंने मन में प्रतिज्ञा की कि यदि वह मुझे स्त्री रूप में ग्रहण नहीं करेंगे तो मैं प्राण त्याग दूंगी।

मुझे अब कोई चिन्ता नहीं थी। मैं जान गई थी कि वह मेरे वश में हो गए हैं। मैंने मन में कहा, 'यदि हाथी के दांत काटने में पाप नहीं है, यदि भैंसे के सींग तोड़ने में पाप नहीं है, तो मुझे भी पाप नहीं लगेगा। परमात्मा ने हम लोगों को जो हथियार दिये हैं, उनका दोनों की भलाई के लिए प्रयोग करूंगी। यदि कुछ हो सकता है तो वह अभी। मैं उनके पास से हटकर दूर बैठ गई। मैं उनके साथ प्रसन्न होकर बातें करने लगी। वह पास आए तो मैंने कहा, 'मेरे पास मत आइये। मैं देखती हूं कि आपको कुछ भ्रम हो गया है शायद।' हंसते-हंसते मैंने यह बात कही और कहते-कहते चोटी खोलती हुई फिर उसे बांधने लगी। मैं फिर बोली, 'आपको यह भ्रम हो गया है कि मैं कुल्टा हूं। मैं तो आपके पास केवल अपने देश का समाचार सुनने आई हूं। मेरा कुछ बुरा अर्थ नहीं है।'

मुझे लगा जैसे उन्हें मेरी इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। वह आगे बढ़कर बैठ गये। मैंने हंसते हुए कहा, 'मेरी बात नहीं सुनी तो मैं चली। तुम्हारे साथ यहीं भेंट समाप्त।' कहकर मैं जैसे देखना चाहिए, वैसे ही देखती हुई, अपनी घुंघराली सुवासित अलकावलि का एक छोर उनसे छुआती हुई संध्या की वायु में वासन्ती लता की भांति तनिक हिलकर उठ खड़ी हुई।

मैं सचमुच उठकर चल पड़ी। यह देखकर वह कुछ मुर्झा से गए। मेरा हाथ पकड़ लिया। वह हाथ को पकड़े रखकर आश्चर्य में पड़े हुए मेरे हाथ की ओर देखते रह गए। मैंने कहा, 'क्या देख रहे हैं आप ?'

'यह क्या फूल है ? यह फूल तो लगता नहीं। फूल से आदमी सुन्दर है। मल्लिका के फूल से मनुष्य सुन्दर है, यह पहिली बार मैंने देखा है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने क्रोधपूर्वक हाथ को झटकाकर छुड़ा लिया और फिर हंसकर बोली, 'तुम अच्छे आदमी नहीं हो जी ! मुझे छूना नहीं। तुम मुझे दुश्चरित्रा मत समझना। तुम इस भ्रम में न फंसना कि मैं कुल्टा हूं।' यह कहकर मैं दरवाजे की ओर बढ़ी।

पतिदेव ने, आज भी बात याद आने पर दुःख होता है, मुझे हाथ जोड़कर बुलाया। वह बोले, 'मेरी बात सुनो, जाना नहीं। मैं तुम्हारा रूप देखकर मैं पागल हो गया हूं। ऐसा रूप मैंने कभी नहीं देखा। तनिक और देख लूं।'

मैं फिर लौट पड़ी, परन्तु बैठी नहीं। मैं बोली, 'मैं तो एक तुच्छ स्त्री हूं। मैं तुम्हारे जैसे रत्न को छोड़कर जा रही हूं, इसी से मेरे हृदय की व्यथा समझना, परन्तु क्या करूं ? धर्म ही हम लोगों का एकमात्र धन है। एक दिन के सुख के लिए मैं धर्म को नहीं छोडूंगी। मैं बिना सोचे-समझे आपके पास आ गई हूं और बिना समझे-बूझे आपको पत्र लिख दिया था, परन्तु मैं इस तरह गड्ढे में नहीं गिरूंगी। अब भी मेरी रक्षा का पथ खुला हुआ है। मेरा भाग्य है कि यह बात मुझे सुनाई पड़ गई। मैं अब जाती हूं।'

वह बोले, 'अपना धर्म तुम जानो। तुमने मुझे ऐसी दशा में डाल दिया है कि मुझे अब धर्म और अधर्म का ज्ञान नहीं रहा। मैं शपथ से कहता हूं कि तुम सर्वदा मेरी हृदयेश्वरी होकर रहोगी। कभी यह बात मत सोचना कि तुम मुझसे पृथक् होगी।'

मैं हंसकर बोली, 'पुरुषों की शपथ का कोई विश्वास नहीं। एक क्षण के देखने में क्या कहीं ऐसा होता है ?'

मैं चलकर द्वार तक आई तो उन्होंने दौड़कर मेरा मार्ग रोक लिया। वह बोले, 'मैंने ऐसा रूप कभी नहीं देखा।' उनकी मर्मभेदी लम्बी सांस निकल पड़ी। उनकी दशा देखकर मुझे दुःख हुआ। मैंने कहा, 'तो अपने निवास-स्थान पर चलो। यहां रहने पर मैं आपसे ठीक से बातें न कर सकूंगी।'

वह तुरन्त तैयार हो गये। उनका निवास-स्थान थोड़ी ही दूर पर था। उनकी गाड़ी नीचे खड़ी थी और साईस सो रहा था। हम चुपचाप जाकर गाड़ी पर बैठ गए और साईस को जगा दिया। उनके स्थान पर जाकर मैंने देखा, दो मंजिल का मकान था। मैं कमरे में गई और जाते ही अन्दर से जंजीर बंद कर दी। स्वामी बाहर ही रह गये।

वह बाहर से गिड़गिड़ाने लगे। मैंने हंसकर कहा, 'मैं अब तुम्हारी दासी हो गई, परन्तु देखती हूं तुम्हारे प्रेम का ज्वर कल सवेरे तक रहता है या नहीं। यदि कल भी ऐसा ही प्रेम देख पाऊंगी, तो तुम्हारे साथ बातें करूंगी। आज बस इतना ही।'

मैंने द्वार नहीं खोला। विवश होकर वह दूसरी जगह सोये।

बहुत देर होने पर प्रातःकाल द्वार खोला। स्वामी द्वार पर खड़े थे। मैंने अपने हाथ से उनका हाथ पकड़कर कहा, 'मेरे प्राणनाथ बनना चाहोगे तो आठ दिन परीक्षा देनी होगी।

उन्होंने आठ दिन की परीक्षा देनी स्वीकार कर ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष को जलाने के लिए जितने उपाय विधाता ने स्त्री को दिए हैं, उन सारे उपायों से मैंने आठ दिन तक स्वामी को जलाया। मैं स्त्री ठहरी, किस प्रकार मुंह खोलकर वे सब बातें कहूं ? यदि मैं अग्नि प्रज्ज्वलित करना जानती, तो बीती हुई रात्रि में वह इतने नहीं जलते, परन्तु मैंने किस प्रकार अग्नि जलाई, किस प्रकार उसे फूंका, किस प्रकार स्वामी के हृदय को सन्तप्त किया, लज्जा से मैं वह सब कह भी नहीं सकती। यदि मेरी कहानी को पढ़ने वाली किसी स्त्री ने पुरुष-हत्या का व्रत लिया हो और उसमें सफल हुई हो, तो वह इसे समझ सकेगी। यदि इस कहानी को पढ़ने वाला कोई पुरुष कभी इस प्रकार पुरुष-घातिनी स्त्री के हाथ में पड़ा हो तो वह भी समझ सकेगा। स्त्रियां पृथ्वी की कंटक हैं। हमारी जाति से पृथ्वी पर जितने अनिष्ट होते हैं, पुरुषों से उतने नहीं होते। सौभाग्य की बात यह है कि पुरुष-घातिनी विद्या सभी स्त्रियां नहीं जानतीं। यदि सभी जानतीं तो इतने दिनों में पृथ्वी पर एक भी पुरुष न बचता।

इन आठ दिनों में मैं चौबीस घंटे स्वामी के साथ रही। मैं आदरपूर्वक बातें करती, एक भी बात नीरस न करती। हंसना, कटाक्ष करना, अंग-भंगिमा ये सब ही तो स्त्रियों के अस्त्र हैं। मैंने पहिले दिन आदर के साथ बातें कीं, दूसरे दिन प्रेम के लक्षण प्रकट किये, तीसरे दिन उनके घर का काम देखने लगी, जिससे उनके भोजन का नियम, सोने का नियम, स्नान का नियम पूर्ण रूप में से निभे। वह भली तरह रहें, वैसा कुछ करना शुरू किया। अपने हाथों रसोई बनाकर उन्हें खिलाई। उन्हें तनिक-सा भी कष्ट देखकर सारी रात जागकर उनकी सेवा की।

यह सब बनावटी था। इंदिरा के मन में इतना गर्व था कि केवल पेट पालने के लोभ से अथवा पति के धन से धनेश्वरी होगी, इस लोभ से वह यह सब-कुछ नहीं कर सकती थी। पति को पाएगी, इस लोभ से भी वह दिखावटी प्रेम नहीं कर सकती। इन्द्र की इन्द्राणी होगी, इस लोभ से भी नहीं। पति को मोहित करेगी, इसीलिए कटाक्ष-पात की घटा छा सकती थी, परन्तु स्वामी को मोहित करने के लिए दिखावटी प्रेम नहीं कर सकती थी। भगवान ने इंदिरा को उस मिट्टी से नहीं गढ़ा था, जो अभागिन इस बात को समझ न सके, जो नरक में जाने वाली उसे कहे कि वह हंसी और कटाक्ष का फंदा फैला सकती है, जूड़ा खोलकर फिर बांध सकती है, बालों के बहाने से सुगन्धिपूर्ण घुंघराले बालों को अभागे मनुष्य के गाल पर डालकर उसे रोमांचित कर सकती है और कुछ नहीं कर सकती, उसके पंख तोड़कर फेंक देने का काम नहीं कर सकती, उस मुंहजली ने मेरी कहानी पढ़ी ही नहीं।

वह मेरे पति थे। पति-सेवा में ही मेरा आनन्द था। वह दिखावटी नहीं था, मैं हृदय से वह सब कर रही थी। मैं मन में सोच रही थी कि उन्होंने यदि मुझे स्वीकार न किया तो मेरे लिए पृथ्वी का जो सारा सुख है उसे इन्हीं दिनों के लिए प्राणों में भरकर भोग लूं। इसी से मैं इतनी संलग्नता से पति की सेवा कर रही थी। इस सबसे मैं कितनी सुखी थी, उसे समझना हर व्यक्ति के लिए कठिन था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं हंसना जानती थी, परन्तु हंसी का क्या कोई उत्तर नहीं था ? मैं देखना जानती थी, किन्तु उसके बदले में क्या देखना नहीं मिलता ? मेरे होंठ दूर से ही चुम्बन की इच्छा से फड़कते रहते थे। उस हंसी और होंठों के फड़कने में मेरा मौन प्रेम था। सहज ही मैं हार गई। हारकर मैंने मान लिया कि उसी में पृथ्वी का सुख था। परीक्षा के दिन पूरे होने को आ गए। अब मैं उनके प्रेम में इतनी वशीभूत हो चुकी थी कि मैंने स्थिर किया कि परीक्षा का समय बीत जाने पर यदि वह मुझे मार कर बासे से बाहर निकाल देंगे तो भी मैं नहीं जाऊंगी। अन्त में वह यदि मेरा परिचय पाकर भी मुझे पत्नी के रूप में ग्रहण नहीं करेंगे, उपपत्नी की भांति ही यदि मुझे उनके पास रहना पड़ेगा, तो भी मैं रहूंगी। स्वामी को पाने पर लोक-लज्जा का भय नहीं करूंगी। यदि भाग्य में वह भी न हुआ तो ? इसी भय से मैं अवसर पाकर रोने बैठ जाती थी, परन्तु अब मैंने यह समझ लिया था कि उनके पंख कट चुके थे। अब उनमें उड़ने की शक्ति शेष नहीं थी। उनके प्रेम की अग्नि में अपार घृताहुति पड़ चुकी थी। अब वह सब काम छोड़कर केवल मेरे मुंह की ओर देखते रहते थे। मैं घर का काम करती और वह बच्चे की तरह मेरे पीछे-पीछे फिरते रहते थे। मैं उनके मन का वेग हर पग पर देख पाती थी। वह मेरे संकेत मात्र पर स्थिर हो उठते थे।

'कभी-कभी वह मेरे पैर छूकर रोने लगते थे। वह कहते थे, 'मैं आठ दिन तुम्हारी बात मानूंगा। उसके पश्चात् तुम मुझे छोड़कर न जाना। तुमने छोड़ दिया तो मेरी दशा बहुत बुरी हो जायेगी।'

मैं भी उनकी परीक्षा में फंसकर रह गई थी। आठ दिन व्यतीत हुए बिना ही दोनों अधीर हो उठे। उन्होंने मुझे कुल्टा समझ लिया था। उसे मैंने सहन कर लिया, परन्तु यह भी मैं भली प्रकार समझ चुकी थी कि मैंने उन्हें पूरी तरह से अपने बंधन में जकड़ लिया था। अब वह मुझसे मुक्त होकर कहीं भाग नहीं सकते थे। मेरा रूप उनके हृदय में घर कर चुका था।

10

कितने ही दिनों तक मैं कलकत्ते में सुख और स्वच्छन्दता से रही। उससे पश्चात् एक दिन देखा कि पतिदेव एक पत्र हाथ में लिए अत्यन्त चिन्तित मुद्रा में बैठे थे। मैंने पूछा, 'आप इतने चिन्तित क्यों हैं ?'

'घर से पत्र आया है। मुझे घर जाना होगा।' वह बोले।

'और मैं ?' तभी जमीन पर बैठ गई। मेरी आंखों में अश्रुओं की धारा बह चली।

उन्होंने स्नेह से मेरा हाथ पकड़कर, मुझे उठाकर, मेरा मुंह चूमकर, आंसू पौंछ दिए। वह बोले, 'यही बात तो मैं सोच रहा हूं। मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जा सकूंगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वहां मेरा क्या कहकर लोगों को परिचय दोगे ? किस तरह और कहां रखोगे मुझे ?' मैंने पूछा।

'मैं यही सोच रहा हूं। वह शहर नहीं है जो किसी दूसरी जगह रखूं और कोई जान भी न सके। माता-पिता की आंखों के सामने तुम्हें कहां रखूंगा ? काम कुछ ऐसा आवश्यक है कि नहीं जाने से भी काम न चलेगा ? मेरा जाना आवश्यक है।'

'कितने दिन में लौटेंगे ? यदि शीघ्र लौटें तो मुझे यहीं छोड़ जाएं।' मैंने अधीर होकर कहा।

'शीघ्र ही लौट सकूंगा, ऐसी आशा नहीं है। कलकत्ते में हम लोग कभी-कभी ही आते हैं। यहां हमारा कोई कार्य विशेष नहीं है।'

'तब आप जाएं, मैं आपका जंजाल नहीं बनूंगी।' रोते हुए मैंने कहा, 'मेरे भाग्य में जो बदा है, वही होगा। आप कहां-कहां मेरे भाग्य को संवारते फिरेंगे ?'

'मैं तुम्हें बिना देखे पागल हो जाऊंगा कुमुद ! मैं रह नहीं सकूंगा तुम्हारे बिना।' वह व्याकुल होकर बोले।

'मैं आपकी विवाहिता पत्नी तो हूं नहीं। आपके ऊपर मेरा कोई अधिकार भी नहीं है। आप मुझे विदा कर दें।'

यह सुनकर वह कांप उठे। उन्होंने मुझे आगे अन्य कोई बात न कहने दी। उन्होंने कहा, 'अब इस बात की आवश्यकता नहीं है। आज इस विषय में सोचकर जो स्थिर करूंगा, वह कल तुम्हें बताऊंगा।'

दिन ढलते समय उन्होंने रमन बाबू को बुलाया। पत्र में लिखा, 'गुप्त बात है। यहां आने से ही काम चलेगा।'

रमन बाबू आये। मैं किवाड़ की आड़ में उनकी बातें सुनने को लगी रही।

मेरे पति ने पूछा, 'आप लोगों की महाराजिन का क्या नाम है रमन बाबू ?'

'कुमुदिनी।' रमन बाबू ने कहा।

'उसका घर कहां है ?' मेरे पति ने पूछा।

'इस समय नहीं बता सकता।' रमन बाबू बोले।

'वह सधवा है या विधवा ?' मेरे पति ने पूछा।

'सधवा।' रमन बाबू ने कहा।

'उसके पति कौन हैं, क्या जानते हैं आप ?'

'जानता हूं।' रमन बाबू ने कहा।

'कौन हैं ?' मेरे पति ने पूछा।

'अभी कहने का मेरा अधिकार नहीं है।' रमन बाबू बोले।

'कोई गुप्त रहस्य है क्या ?' मेरे पति ने पूछा।

'हां ! गुप्त ही है अभी।' रमन बाबू ने कहा।

'आप लोगों ने उसे कहां पाया ?' मेरे पति ने पूछा।

'मेरी पत्नी उन्हें अपनी मौसी के पास से लाई थीं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इन सब बातों को छोड़ो। उसका चरित्र कैसा है ?'

'परम पवित्र। मेरी बूढ़ी महाराजिन की वह बहुत हंसी करती थी। इसे छोड़कर और कोई दोष नहीं था।' रमन बाबू बोले।

'मैं उस स्त्री के चरित्र के विषय में पूछ रहा हूं।'

'ऐसा उत्तम चरित्र देखा नहीं जाता।' रमन बाबू बोले।

'उसका घर कहां है यह क्यों नहीं बताते ?' मेरे पति ने पूछा।

'कहने का अधिकार नहीं है मुझे।' रमन बाबू बोले।

'उसके पति का घर कहां है ?' मेरे पति ने पूछा।

'वही उत्तर है जो पहिले दिया।' रमन बाबू ने कहा।

'उसके पति जीवित हैं ?' मेरे पति ने पूछा।

'हां जीवित हैं।' रमन बाबू ने उत्तर दिया।

'आप उन्हें पहिचानते हैं ?' मेरे पति ने पूछा।

'पहिचानता हूं।' रमन बाबू बोले।

'वह स्त्री अब कहां है ?' मेरे पति ने पूछा।

'आपके इस मकान में।' रमन बाबू बोले।

यह सुनकर मेरे पति चौंक पड़े। उन्होंने विस्मित होकर पूछा, 'यह आपने कैसे जाना ? आपसे किसने कहा ?'

'मुझे कुछ कहने का अधिकार नहीं है, परन्तु आपका इससे क्या अर्थ सिद्ध हुआ, क्या मैं जान सकता हूं ?' रमन बाबू ने पूछा।

'कुछ हुआ, परन्तु आपने तो पूछा नहीं कि मैंने क्यों आपसे ये सब बातें पूछी?' मेरे पति गम्भीर वाणी में बोले।

'मैंने दो कारणों से नहीं पूछा। एक तो यह कि पूछने पर आप बताएंगे नहीं कि सच है या झूठ ?' रमन बाबू बोले।

'दूसरा कारण क्या है ?' मेरे पति ने पूछा।

'मैं जानता हूं कि आप क्यों पूछ रहे हैं।' रमन बाबू बोले।

'आप जानते हैं ? क्या है कहिए, सुनूं ?' मेरे पति बोले।

'मैं कुछ नहीं बताऊंगा।' रमन बाबू ने कहा।

'अच्छा, लगता है कि आप सब-कुछ जानते हैं। तो कहिए, मेरा कार्य पूर्ण हो जाएगा क्या ?' मेरे पति ने पूछा।

'अवश्य हो जाएगा। आप कुमुदिनी से पूछिए।'

'एक और बात है। आप कुमुदिनी के विषय में जो कुछ जानते हैं, वह सब एक कागज पर लिखकर हस्ताक्षर कर सकते हैं क्या ?' मेरे पति ने कहा।

'कर सकता हूं, परन्तु एक शर्त पर। मैं लिखकर उसे बन्द करके कुमुदिनी को दे जाऊंगा। आप अभी उसे पढ़ नहीं सकेंगे। अपने देश में जाकर पढ़िएगा ?' रमन बाबू बोले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यही होगा। वह मेरे अभिप्रायः को सिद्ध करने वाला होगा ना ?'

अन्य बातों के पश्चात् रमन बाबू उठकर चले गये। उ-बाबू उठकर मेरे पास आये।

मैंने पूछा, 'ये सब बातें किस उद्देश्य से हो रही थीं ?'

उन्होंने कहा, 'क्या सब कुछ सुन लिया है तुमने ?'

'हां, सब सुन लिया है। मैं सोच रही थी कि मैं आपकी हत्या करके फांसी पर चढ़ गई हूं। फांसी के पश्चात् अब फिर ये सब बातें क्यों हुईं ?'

'इस समय के कानून में यह हो सकता है।' मेरे पति बोले।

फिर बहुत देर तक हम दोनों के बीच कोई बात नहीं हुई। हम दोनों एक कमरे में चुपचाप बैठे रहे।

उस दिन मेरे पति उदास होकर कुछ सोचते रहे। मुझे देखते ही वह मेरे मुंह की ओर देखते रह जाते थे। उसकी अपेक्षा मेरी चिन्ता अधिक थी, परन्तु उन्हें चिन्तित देखकर मेरे प्राणों को अत्यन्त व्यथा होने लगी। मैं अपने दुःख को दबाये रखकर उन्हें समझाने की चेष्टा करने लगी। मेरे पति सबसे अधिक मेरे रूप को चाहते थे, यही विचार कर मैंने रूप की चर्चा छेड़ दी। मैंने देखा वह निरन्तर मेरी ओर एकटक देखते रहे।

दूसरे दिन स्नान और सन्ध्या के पश्चात् जलपान करके उन्होंने मुझे पास बिठाकर कहा, 'मैं समझता हूं कि जो-जो मैं पूछूंगा उसका तुम मुझे ठीक-ठीक उत्तर दोगी ?'

मुझे रमन बाबू की बात याद आ गई। मैंने कहा, 'जो कहूंगी, सच कहूंगी, परन्तु सब बातों का उत्तर न दे सकूंगी।'

'मैंने सुना है कि तुम्हारे पति अभी जीवित हैं। उनका नाम-धाम बताओगी क्या?' मेरे पति ने पूछा।

'इस समय नहीं, कुछ दिन और व्यतीत हो जाने पर मैं सब-कुछ बता दूंगी।' मैंने कहा।

'वह इस समय कहां हैं, बता सकोगी ?' मेरे पति ने पूछा।

'कलकत्ते में।' मैंने उत्तर दिया।

'तुम भी कलकत्ते में हो और वह भी कलकत्ते में हैं। फिर तुम उसके साथ क्यों नहीं रहती ?' मेरे पति ने पूछा।

'हम दोनों अपरिचित अवस्था में रह रहे हैं।'

यह सुनकर चकित होकर मेरे पति ने कहा, 'स्त्री और पुरुष का परिचय नहीं है, यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।'

'क्या सबका परिचय होता है ? आपका है ?' मैंने पूछा।

उन्होंने तनिक झेंपकर कहा, 'वह तो दुर्भाग्य से हो गया था।'

'दुर्भाग्य से ही बहुत कुछ होता है।' मैंने कहा।

'जाने दो इस बात को। भविष्य में उनका तुम्हारे ऊपर कोई अधिकार प्राप्त करने की सम्भावना है क्या ?' मेरे पति ने पूछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वह मेरे हाथ में नहीं है। मैं यदि उनके पास अपना परिचय दूं तो क्या होगा, कहा नहीं जा सकता।' मैंने कहा।

'मैं सब बातें छोड़कर कहता हूं कि तुम बहुत ही बुद्धिमती स्त्री हो। तुम इस विषय में क्या राय रखती हो, कहो ?' मेरे पति ने कहा।

'आपका क्या विचार है ?' मैंने पूछा।

'मुझे घर जाना होगा।' मेरे पति ने कहा।

'यह मैं भली प्रकार समझ चुकी हूं।' मैं बोली।

'मैं घर जाकर शीघ्र लौट आऊंगा।' मेरे पति बोले।

'यह भी मैं सुन चुकी हूं।' मैंने उनकी ओर देखते हुए कहा।

'मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जा सकता। ऐसा करने पर मैं जीवित नहीं रहूंगा।' मेरे पति बोले।

यह सुनकर मेरे प्राण गले में आ गये। फिर भी मैंने बलपूर्वक हंसकर कहा, 'भात डालने पर कव्वों की क्या कमी ?'

'कोयल का दुःख कौए से नहीं जाता। मैं तुम्हें अपने साथ ले जाऊंगा।' मेरे पति ने दृढ़तापूर्वक कहा।

'तुम मुझे कहां रखोगे और क्या कहकर रखोगे ?' मैंने पूछा।

'एक भारी जुआ खेलूंगा। यही कल दिन भर सोचता रहा हूं। तुम्हारे साथ बातें नहीं की अभी इस विषय में।' वह बोले।

'आप कहेंगे कि यह इन्दिरा है। रामदत्त के घर से खोज निकाला है इसे मैंने?' मैं मुस्कराकर बोली।

'सर्वनाश ! तुम कौन हो ?' मेरे पति उछलकर बोले।

पति महाशय बिना हिले-डुले दोनों आंखों की पुतलियों को ऊपर उठाकर मेरे मुंह की ओर ताकते रह गये। मैंने कहा, 'क्यों, क्या हुआ ? इस प्रकार आप मेरे मुख पर क्या देख रहे हैं ?'

'तुमने इन्दिरा का नाम कैसे जाना ? मेरे मन की गुप्त बात किस प्रकार जान ली तुमने ? तुम मानवी हो या मायाविनी ?' वह आश्चर्यचकित होकर बोले।

'मैं अपना परिचय बाद में दूंगी। इस समय मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूं। ठीक-ठीक उत्तर दीजियेगा।'

'पूछो।' वह भयभीत होकर बोलें।

'उस दिन आपने कहा था कि यदि आपकी स्त्री मिल जायेगी तो आप उसे ग्रहण नहीं करेंगे। उसे डाकू चुराकर ले गये थे। उसे ग्रहण करने से आपकी जात चली जायेगी। मुझे इन्दिरा कहकर अपने घर ले जाने से क्या अब आपकी जाति नहीं जायेगी? क्या वह समस्या अब आपके सामने उपस्थित न होगी ?'

'उस समय मेरे प्राणों पर नहीं आ बनी थी। इस समय मेरे प्राण जा रहे हैं। जाति बड़ी है या प्राण ? फिर इन्दिरा जाति से गिर चुकी है, यह बात तो कोई नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहता। कालीदीधी में जिन्होंने डाका डाला था, वे सब लोग पकड़े गये हैं। उन्होंने स्वीकार किया है कि इन्दिरा के केवल गहने-कपड़े लेकर उन्होंने उसे छोड़ दिया था। अब वह कहां है, क्या हुआ, यह कोई नहीं जानता। उनके पा जाने पर एक निष्कलंक वृत्तान्त तैयार किया जा सकता है। मैं आशा करता हूं कि रमन बाबू जो कुछ लिख देंगे, उससे उसकी पुष्टि हो जायेगी। तब भी यदि कोई बात उठती है तो गांव में कुछ ब्राह्मणों को जिमाने से झंझट दूर हो जायेगा। हम लोगों के पास रुपया है। रुपये से सबको वश में किया जा सकता है।

'यदि यह झंझट मिट जाता है तो फिर क्या झंझट है ?'

'झंझट तुम्हें लेकर है। यदि यह मालूम पड़ गया कि तुम इन्दिरा नहीं हो, तो फिर सब झंझट-ही-झंझट है।'

'आप लोगों के घर पर तो मुझे कोई पहिचानता नहीं है। वास्तविक इन्दिरा को भी कोई नहीं पहिचानता। केवल बारह-तेरह वर्ष की अवस्था में ही आप लोगों ने उसे देखा था। फिर कैसे पकड़ी जाऊंगा ? मेरे विचार से तो कोई पकड़ नहीं पायेगा।'

'इधर-उधर के जानने वाले लोगों के आने पर सहज ही बात खुल जायेगी।'

'आप मुझे सब कुछ सिखा-पड़ा कर रखना।' मैं बोली।

'वह तो सोचा है, परन्तु सारी बातें तो नहीं सिखाई जा सकतीं। सोचो, यदि कोई बात सिखाते समय न आये और फिर वह पकड़ी जाये, तो सहज ही पकड़ी जाओगी। कठिनाई यह भी है कि यदि कभी असली इन्दिरा आ गई तो दोनों के बीच निर्णय के समय पहिली की बात पूछने पर भी तुम पकड़ी जा सकती हो। उस समय तुम क्या कहोगी ? तुम्हारे आने की बात सुनकर इन्दिरा के मैके के कुछ लोग आ गये या उसके माता-पिता ही आ गये तो फिर क्या होगा ? तब तो बहुत बड़ी कठिनाई पैदा हो जायेगी।'

तब मैं तनिक हंसी। ऐसी दशा में हंसी आ ही जाती, किन्तु उस समय भी मेरा सच्चा परिचय देने का समय नहीं आया था। मैंने हंसकर कहा, 'मुझे कोई ठग नहीं सकता। तुम मुझसे केवल यही पूछ रहे थे कि मैं मानवी हूं या मायाविनी। मैं मानवी नहीं हूं, मायाविनी हूं। मैं कौन हूं, इसे बाद में बताऊंगी। अभी यही कहूंगी कि मुझे कोई ठग नहीं सकता। मैं इस रहस्य को नहीं खुलने दूंगी।'

मेरे पति स्तम्भित हो उठे। वह बुद्धिमान और कर्मठ व्यक्ति थे। वह ठाकुर जी को मानते थे। भूत, प्रेत, डाकिन, योगिनी, मायाविनी आदि की कहानियां उन्होंने सुनी थीं। वह उन सब पर विश्वास करते थे। वह मुझ पर किस तरह मुग्ध हुए थे, वह भी उन्हें स्मरण आया। जिसे वह मेरी असाधारण बुद्धि कहते थे, वह भी स्मरण किया। जो नहीं समझ सके थे, वह भी याद पड़ा। इसलिये मैंने ज्यों ही कहा कि मैं मानवी नहीं हूं, इसमें उन्हें विश्वास हो गया। वह कुछ देर तक जड़ की भांति रह गये, परन्तु उसके पश्चात् अपने बुद्धि-बल से उस विश्वास को दूर करके कहा, 'अच्छा तुम कैसे मायाविनी हो ? जो मैं पूछूंगा वह तुम बताओगी ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पूछो।' मैंने कहा। 'मैं आपकी बात का उत्तर दूंगी।'

'मेरी स्त्री का नाम इन्दिरा है, यह तुम जानती हो। उसके पिता का क्या नाम है ? क्या तुम मुझे बता सकोगी ?'

'उनका नाम हरमोहनदत्त है।' मैंने गम्भीरतापूर्वक कहा।

'उनका घर कहां है ?' मेरे पति ने पूछा।

'उनका घर महेशपुर में है।' मैंने उत्तर दिया।

'तुम कौन हो ?' मेरे पति ने पूछा।

'यह तो मैंने कह दिया कि मैं अभी नहीं बताऊंगी।' मैंने कहा।

'कालीदीघी के लोग सब जान भी सकते हैं। बताओ, हरमोहनदत्त के घर का सदर द्वार किस ओर को है ?' मेरे पति ने प्रश्न किया।

'दक्षिण की ओर। एक बड़े फाटक के दोनों ओर दो सिंहनियों की मूर्तियां हैं।' मैंने कहा।

'उनके कितने लड़के हैं ?' मेरे पति ने पूछा।

'एक लड़का है।' मैंने उत्तर दिया।

'उसका नाम क्या है ?' मेरे पति ने पूछा।

'उसका नाम वसन्तकुमार है।' मैंने उत्तर दिया।

'उसकी कितनी बहिनें हैं ?' मेरे पति ने पूछा।

'आपके विवाह के समय दो बहिनें थीं।' मैंने कहा।

'उनके नाम क्या हैं ?' उन्होंने पूछा।

'इन्दिरा और कामिनी।' मैंने उत्तर दिया।

'उनके घर के पास कोई पोखर है ?' उन्होंने पूछा।

'हां, उसका नाम है देदीदीघी। उसमें बहुत से कमल खिलते हैं।'

'हां, सो तो देखा था। तुम महेशपुर गई हो सम्भवतः। इसी से यह सब जानती हो। अन्य कुछ विशेष बातें बताओ तो देखूं। इन्दिरा के विवाह में कन्या-दान कहां हुआ था ?'

'पूजा के दालान के उत्तर-पश्चिम के कोने में।' मैंने कहा।

'किस ने कन्या-दान किया था ?' मेरे पति ने पूछा।

'इन्दिरा के चाचा कृष्णमोहनदत्त ने।' मैंने कहा।

'स्त्री-आचार के समय किसी ने मेरे कान को जोर से मल दिया था। उसका नाम मुझे याद है। उसका नाम बताओ तो देखूं।'

'उनका नाम बिन्दु ठकुरानी है। बड़ी-बड़ी आंखें, लाल होंठ और नाक में बड़ी सी नथ थी।' मैंने उत्तर दिया।

'मालूम होता है कि तुम विवाह के दिन भी वहीं थीं। तुम उनके परिवार को जानती हो ?' मेरे पति बोले।

'कुटुम्ब की नौकरानी या रसोईदारिन की लड़की को जानना सम्भव नहीं है, ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात न पूछें ?' मैंने कहा।

'इन्दिरा का विवाह कब हुआ था ?'

'बैसाख माह की 27 तिथि को, शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी को।' मैंने कहा।

उन्होंने चुप रहकर सोचा। उसके पश्चात् बोले, 'मुझे अभय करो तो मैं दो-एक अन्य बातें पूछूं ?'

'अभय करती हूं, पूछो।' मैंने कहा।

'शयन-गृह में सबके उठकर चले जाने के पश्चात्, मैंने इन्दिरा से एक बात एकान्त में कही थी। उसने उसका उत्तर दिया था। वह क्या बात थी, बताओ तो देखूं ?'

कहने में मुझे कुछ देर लगी। कारण यह था कि उस बात को याद करने पर मेरी आंखों में आंसू आ गये थे। मैं उन्हें संभाल रही थी।

उन्होंने कहा, 'लगता है कि इस बार ठगी गईं। मैं बच गया। तुम मायाविनी नहीं हो।'

मैंने आंखों का जल आंखों में ही लौटते हुए कहा, 'आपने इन्दिरा से पूछा था, बताओ तो आज तुम्हारे साथ मेरा क्या सम्बन्ध हुआ ?' इन्दिरा ने उत्तर दिया, 'आज से तुम मेरे देवता हुए, मैं तुम्हारी दासी हो गई।'

'और पूछते हुए डरता हूं। समझता हूं कि मैंने बुद्धि खो दी है। अच्छा बताओ, फूल-शय्या के दिन इन्दिरा ने खिलवाड़ करते हुए मुझे गाली दी तो मैंने उसे कुछ दण्ड दिया था। बताओ वे कौन-सी बातें थीं ?' मेरे पति ने पूछा।

'आपने इन्दिरा का एक हाथ पकड़कर ओर दूसरा हाथ कंधे पर रखकर पूछा था, 'इन्दिरा ! बताओ तो मैं तुम्हारा कौन हूं ?' इस पर इन्दिरा ने उत्तर दिया था, 'सुनती हूं कि तुम मेरी ननद के पति हो।' तुमने इसके दण्ड-स्वरूप उसके गाल पर एक चपत लगाई थी। फिर उसे रुंआसी देखकर अन्त में उसके मुख का चुम्बन लिया था।' कहते-कहते मेरा बदन एक अपूर्व आनन्द में डूब गया। वही मेरे जीवन का प्रथम चुम्बन था। उसके पश्चात् सुभाषिनी द्वारा की गई वह अमृत-वर्षा थी। इसके बीच घोर सूखा पड़ गई थी। हृदय सूखकर धरती की तरह फट गया था। जीवन नितान्त नीरस हो गया था। रस ही कहां से आता, जब बगिया ही सूख गई थी, उसके विटप ही मुर्झा गये थे और उन पर पुष्प खिलने बन्द हो गये थे।

मेरे पति ने तकिये पर सिर रखकर धीरे-धीरे आंखें मूंद लीं। मैंने कहा, 'और कुछ पूछेंगे क्या ?'

'नहीं। या तो तुम इन्दिरा हो, नहीं तो कोई मायाविनी।' वह बोले।

मैं मौन होकर दूसरे कमरे में चली गई। मैं अन्दर जाकर पलंग पर लेट गई और सोचती रही कि अब मुझे क्या करना चाहिये। तभी मेरे पति अन्दर चले आये और पलंग के पास पड़ी कुर्सी पर बैठ गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11

मैंने अपने मन में दृढ़ किया कि अब मैं अपना परिचय दे सकती हूं। मेरे पति के मुंह से सब कुछ व्यक्त हो गया था, परन्तु तनिक भी संशय रहने पर परिचय न देने का मैंने निश्चय किया था। मैं बोली, 'अब मैं अपना परिचय आपको दूंगी। कामरूप में मेरा स्थान है। मैं मायाशक्ति के महामन्दिर में उनके पास रहती हूं। लोग हमें डाकिन कहते हैं, परन्तु हम डाकिन नहीं हैं। हम लोग विद्याधरी हैं। मैंने महामाया के निकट कोई अपराध किया था, इसी से शाप-ग्रस्त होकर यह स्त्री का रूप पाया। रसोई बनाना और कुल्टा-वृत्ति भी उन्हीं के शाप से अपनानी पड़ी। यह सब इस भाग्य में बदा था। आज मेरा शाप मुक्त होने का समय आ पहुंचा है। मैंने जब स्तुति से जग-माता को प्रसन्न कर लिया तो उन्होंने आज्ञा दी कि महाभैरवी के दर्शन से मैं मुक्ति पा जाऊंगी।'

'वह कहां है ?' उन्होंने पूछा।

'महाभैरवी का मन्दिर महेशपुर में है। तुम्हारे ससुर के घर के उत्तर में। वह उन्हीं लोगों की ठाकुरबाड़ी में है। बाड़ी के बाहर खिड़की के मार्ग से लोग वहां आते-जाते हैं। चलो, महेशपुर चलें।' मैं बोली।

'मैं समझता हूं कि तुम मेरी इन्दिरा ही हो। कुमुदिनी यदि इन्दिरा है, तो ऐसा होने में कितना सुख है ? ऐसा होने पर इस संसार में मेरे समान सुखी अन्य कौन होगा ?' मेरे पति ने कहा।

'जो हो, महेशपुर जाने पर सब झंझट मिट जायेंगे।' मैंने कहा।

'तो चलो, कल यहां से चल दें। मैं यही हाथ जोड़कर तुमसे भीख मांगता हूं कि तुम चाहे इन्दिरा हो, चाहे कुमुदिनी या विद्याधरी हो, परन्तु मुझे छोड़कर न जाना।'

'शाप मिट जाने पर मैं देवी की कृपा से आपको पा सकूंगी। आप मेरे प्राणों से भी प्रिय हैं।' मैंने कहा।

'ये बातें तो डाकिनी जैसी नहीं हैं।' यह कहकर वह बैठक में चले गये। वहां उस समय रमन बाबू आ गये थे। रमन बाबू ने मेरे स्वामी के साथ अन्दर आकर मुझे एक लिफाफा दिया। उन्होंने मुझसे पूछा, 'सुभाषिनी से क्या कहूं ?'

'मैंने कहा, 'कहियेगा कि कल मैं महेशपुर जाऊंगी। वहां जाते ही मैं शाप-मुक्त हो जाऊंगी।'

'आप लोग यह सब जानते हैं या नहीं ?' मेरे पति ने पूछा।

रमन बाबू बोले, 'मैं सब कुछ नहीं जानता, परन्तु मेरी पत्नी सुभाषिनी सब कुछ जानती हैं।'

मेरे पति ने रमन बाबू से पूछा, 'आप डाकिनी, योगिनी, विद्याधरी आदमी में विश्वास करते हैं क्या ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रमन बाबू ने सब भेद समझ लिया था। वह बोले, 'करता तो हूं। सुभाषिनी कहती हैं कि कुमुदिनी शाप-ग्रस्त विद्याधरी है।'

मेरे पति ने कहा, 'कुमुदिनी या इन्दिरा, जरा अपनी पत्नी से अच्छी तरह पूछियेगा।'

रमन बाबू और न रुके। वह हंसते हुए वहां से चले गये। मेरे पति ने उन्हें रोकने का बहुत प्रयास किया, परन्तु वह सफल न हुए।

इस प्रकार बातचीत होने पर हम दोनों निश्चित समय कलकत्ता से महेशपुर के लिये चल दिये। वह मुझे कालीदीधी पार कराकर अपने घर की ओर चल पड़े। यही बात हमने कलकत्ते से चलते समय निश्चित की थी।

मेरे साथ के लोग मुझे महेशपुर ले गये। गांव के बाहर ही मैंने सिपाहियों और कहारों के रुक जाने को कहकर पैदल ही गांव में प्रवेश किया। पिता का घर सामने देखकर एक निर्जन स्थान पर बैठकर मैं बहुत रोई। उसके पश्चात् मैं घर में गई। सामने ही पिताजी को देखकर मैंने उन्हें प्रणाम किया। मुझे पहिचानकर वह हर्ष से फूले नहीं समाये।

मैं इतने दिन तक कहां रही, किस प्रकार रही, यह पूछने पर मैंने कहा, 'यह सब बाद में बताऊंगी।'

मैंने मोटी-मोटी बातें बताईं, सब नहीं। इतना समझा दिया कि अन्त में मैं स्वामी के पास ही रही थी। उन्हीं के पास से आ रही हूं और वह एक-दो दिन में वहां आयेंगे। सब बातें मैंने कामिनी से कहीं। कामिनी मुझसे दो वर्ष छोटी थी। उपहास करना उसे अच्छा आता था। उसने कहा, 'दीदी ! अब जीजाजी इतने बड़े गोबर-गणेश हैं, तो उनके साथ एक तमाशा क्यों न किया जाये ?'

मैंने कहा, 'करो, क्या करना चाहती हो।'

कामिनी ने सब बात बनाली। अन्य सबको भी सिखाकर ठीक कर लिया। माता-पिता को भी सिखाना पड़ा कि मैं वहां आ गई हूं, यह बात वह मेरे पति के आने पर उनके सामने प्रकट न करें।

दूसरे दिन मेरे पतिदेव पधारे। मेरे माता-पिता ने उनका आदर सत्कार किया। मैं आ गई थी, यह बात बाहर उन्होंने किसी के मुख से नहीं सुनी। किसी से पूछ भी न सके। जब वह घर में जलपान करने गये, तो बहुत उदास थे। उनका चेहरा उतरा हुआ था।

मैं जलपान के समय सामने नहीं गई। कामिनी उनके सामने बैठी थी। संध्या बीत चुकी थी। कामिनी उनसे बहुत-सी बातें पूछने लगी। वह यन्त्र की भांति उत्तर दे रहे थे। मैं आड़ में छिपकर सुनती रही। अन्त में उन्होंने कामिनी से पूछा, 'तुम्हारी दीदी कहां है ?'

कामिनी ने एक लम्बी सांस लेकर कहा, 'क्या जानूं कहां हैं ? कालीदीधी में वह जो सर्वनाश हुआ, उसके पश्चात तो कोई सूचना ही नहीं मिली उनकी। कितनी दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटी थी वह ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामिनी की यह बात सुनकर उनके मुख पर हवाइयां उड़ने लगीं। वह अन्य कोई बात नहीं कर सके। उनकी आंखों से अश्रुओं की धारा बह चली।

उन्होंने कुछ संभलकर पूछा, क्या कुमुदिनी नाम की कोई स्त्री यहां आई थी ?'

कामिनी बोली, 'कुमुदिनी कौन ? यह तो मैं नहीं कह सकती, परन्तु एक स्त्री पालकी पर आई अवश्य थी। उसने बिना कहीं रुके महाभैरवी के मन्दिर में जाकर देवी को प्रणाम किया। तभी एक बड़े आश्चर्य की बात हुई। सहसा बादलों का अंधेरा हो गया और वर्षा की झड़ी लग गई। वह स्त्री त्रिशूल हाथ में लेकर आकाश में उड़ती हुई चली गई।'

मेरे पति ने जलपान छोड़ दिया। वह हाथ धोकर माथे पर हाथ रखकर बड़ी दूर तक बैठे रहे। फिर बोले, 'जहां से कुमुदिनी अन्तर्ध्यान हुई, क्या वह स्थान मैं देख सकता हूं ?'

कामिनी ने मुझे संकेत किया, 'आप वहां जाओ जीजी ! फिर मैं दीपक लेकर इन्हें वहां लाऊंगी।'

मैं मन्दिर में जाकर बैठ गई और पतिदेव के आने की प्रतीक्षा करने लगी।

कामिनी दीपक लेकर मेरे पति के साथ मन्दिर की ओर बढ़ी। उन्होंने मन्दिर में आकर देखा, मैं वहां विराजमान थी। वह मेरे पैरों पर गिर पड़े। वह बोले, 'कुमुदिनी! यदि आई हो तो अब मुझे मत छोड़ना। मैं तुम्हारे पैर पड़ता हूं।'

उनके दो-चार बार यह कहने पर कामिनी बोली, 'आओ दीदी ! चली आओ। यह कुमुदिनी को पहिचानते हैं, तुम्हें नहीं पहिचानते।'

उन्होंने आतुरता से पूछा, 'दीदी कौन ?'

कामिनी क्रोध से बोली, 'मेरी दीदी इन्दिरा। क्या कभी यह नाम नहीं सुना आपने? कहिए, सुना है या नहीं ?'

यह कहकर दुष्टा कामिनी लालटेन बुझाकर मुझे हाथ पकड़कर वहां से खींच लाई। हम दौड़कर वहां से घर आईं। वह अब कुछ स्वस्थ होकर हमारे पीछे-पीछे दौड़े तो बेचारे गिर पड़े। हम दोनों पास ही थीं। हमने उन्हें उठाया।

कामिनी बोली, 'हम विद्याधरी हैं, आपको बचाने के लिए आपके साथ-साथ घूमती हैं। समझे जीजाजी !'

कामिनी मेरे पति को खींचती हुई अपने सोने के कमरे में ले गई। वहां प्रकाश फैला था। उन्होंने हम दोनों को देखकर कहा, 'यह क्या ? यह तो कामिनी है और यह कुमुदिनी।'

कामिनी क्रोध से बोली, 'हमारा भाग्य ही फूट गया बस ! इसी बुद्धि से रुपयों का व्यापार करते हो ? कुदाल क्यों नहीं चलाते ? यह कुमुदिनी नहीं इन्दिरा है, इन्दिरा है, इन्दिरा है ! आपकी धर्मपत्नी इन्दिरा। अपनी धर्मपत्नी को भी नहीं पहिचानते!'

मेरे पति ने हर्ष में उन्मत्त होकर मुझे गोद में उठाने के बदले कामिनी को गोद में उठा लिया। वह उनके गाल पर एक हलकी-सी चपत जमाकर हंसती हुई वहां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से भाग गई।

उस दिन की प्रसन्नता की बात कह नहीं सकती। घर पर अपूर्व उत्सव हुआ। उस रात्रि को कामिनी और उनका प्रायः सौ बार वाद-विवाद हुआ और सभी बार प्राणनाथ हारे, परन्तु वह बहुत प्रसन्न थे। उनके मन की सब व्याकुलता समाप्त हो गई थी।

कालीदीधी की डकैती के पश्चात् मेरे भाग्य ने जो खेल खिलाया, उसका वर्णन मेरे पति ने मुझसे आद्योपान्त सुना। रमन बाबू और सुभाषिनी ने जो जाल रचकर उन्हें कलकत्ता बुलाया, उन्होंने वह भी सुना। वह बोले, 'मुझे इतना घुमाने-फिराने की क्या आवश्यकता थी ?'

क्या आवश्यकता थी, मैंने वह भी उन्हें बताया। वह सन्तुष्ट हो गए, परन्तु कामिनी सन्तुष्ट नहीं हुई। कामिनी ने कहा, 'आपको कोल्हू के किनारे-किनारे नहीं घुमाया, वैसे ही छोड़ दिया, यह दीदी का दोष है। पुरुष की जब हम लोगों के चरण-कमलों से पृथक् कोई गति ही नहीं है, तो फिर वह स्वयं को इतनी महत्ता क्यों देता है ?'

मेरे पति बोले, 'मैं इन्हें तब पहिचान नहीं सका था। तुम लोगों को पहिचाना नहीं जा सकता ? तुम्हारा मायावी स्वरूप जो ठहरा।'

कामिनी ने कहा, 'तुम पहिचानोगे यह तो विधाता ने माथे पर लिखा ही नहीं, रथ-यात्रा में सुना नहीं ? गाय ने कहा, कृष्ण ! तुम्हें पहिचाने कौन ? हम तो केवल यमुना किनारे की घास को पहिचानती हैं। तुम्हारी बांसुरी सुनकर तुम्हारे चरण-चिह्न खोजती हैं।'

अब मैं अपनी हंसी को न रोक सकी। उ-बाबू कामिनी से बोले, 'देखो भाई ! अब अधिक जलाओ नहीं। देवता का उत्सव किया है, तो उसके बदले यह पान का बीड़ा ले आओ।'

कामिनी बोली, 'दीदी ! जीजाजी के पास बुद्धि भी है, यह मैं भली प्रकार देख रही हूं।'

'क्या बुद्धि देखी तमने ?' मैंने पूछा।

कामिनी बोली, 'बाबू ने पानदान रखकर पान दिया है। यह बुद्धि नहीं तो और क्या है ? आप एक काम करना। बीच-बीच में अपने पैर पर हाथ रखने देना। ऐसा करने से हाथ बढ़ जाएंगे।'

'मैं क्या इन्हें पैर पर हाथ रखने दे सकती हूं ? यह मेरे पतिदेव हैं कामिनी?' मैंने कहा।

'यह देवता कब रहे ? पति यदि देवता हैं तो इतने दिन तक तो यह तुम्हारे पास उपदेवता ही बने रहे।' कामिनी बोली।

'जब इनकी विद्याधरी चली गई तो अब यह देवता हो गए।'

'विद्याधरी पाकर भी उसे नहीं धर सके। देखो अब अपनी विद्या के साध धर-पकड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न करना। वही विद्या बड़ी है जो पकड़ में न आए।' कामिनी मुस्कराकर बोली।

'कामिनी, तू बड़ी बड़-बड़ करने लगी है। चोरी-चमोरी तक के अपराध इनके ऊपर फेंक रही है।' मैंने कहा।

'दोष मेरा ही है। जब आप कमसरियट में काम करते थे, तो चोरी की थी और जब रसद जुटाते हैं तो चमारी करते हैं।'

उ-बाबू बोले, 'कह डालो जो कहना चाहो। तुम बच्ची हो, तुम्हें सब कुछ कहने की आज्ञा है।'

मां ने कामिनी को बुलाया। वह चली गई, परन्तु शीघ्र ही लौटकर बोली, 'जानते हो, वह कह रही हैं कि आपको यहां दो दिन और ठहरना होगा। यदि आप न रुकेंगे तो आपको बलपूर्वक रोका जाएगा।'

मैंने और मेरे पति ने एक-दूसरे की ओर देखा।

कामिनी बोली, 'क्यों, एक-दूसरे को क्या ताकते हो ?'

उ-बाबू बोले, 'मैं कुछ सोच में पड़ रहा हूं।'

'यह सब अपने घर जाकर सोचना। दो दिन यहां रुकना है। यहां सोचने की आवश्यकता नहीं है।' कामिनी मुस्कराकर बोली।

उ-बाबू ने पूछा, 'कामिनी ! तू नाचेगी ?'

'मैंने घुंघरू खरीद रखे हैं। आप नाचेंगे मेरे साथ ?' कामिनी बोली।

'मैं तो यहां आने से पूर्व तक नाचता रहा हूं। अब और कितना नाचूंगा ? आज तो तुम्हीं नाचो ?' मेरे पति बोले।

'दो दिन रहोगे ना !' कामिनी ने पूछा।

'रहूंगा, अवश्य रहूंगा। बोलो और क्या कहती हो ?'

12

कामिनी का नाच देखने की आशा से नहीं, मेरे माता-पिता के अनुरोध से उ-बाबू एक दिन और रुक गए। वह दिन बड़े आनन्द का व्यतीत हुआ। बहुत-सी गांव की लड़कियां मेरे पति को देखने आईं। वे उन्हें घेरकर बैठीं। एक कोने के कमरे में लड़कियों की बैठक हुई।

यमुना आज जमकर बैठी थीं। उनकी आयु पेंतालीस वर्ष की हो चुकी थी। उनका रंग बहुत काला था। आंखें छोटी-छोटी, पर चमकदार थीं। उनके होंठ मोटे थे, परन्तु रस भरे थे। कपड़े और गहनों की उनके बदन पर बहार थी। उनके बदन की लम्बाई-चौड़ाई असाधारण देखकर मेरे पति ने उन्हें महिषी कहकर व्यंग्य किया। उन्होंने रसिकता में महिषी का अर्थ केवल भैंस लगाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमुना भैंस के साथ अपने बदन की तुलना करके क्रोध से कांप उठीं। उन्होंने बदला लेने के लिए मेरे स्वामी के सामने बात को घुमा-फिराकर मुझे कुछ कहा।

मैंने द्वार के अन्दर से मुंह बढ़ा कर पूछा, 'यमुना दीदी ! क्या हुआ ?'

यमुना दीदी बोलीं, 'एक गाय बहिन ?'

'गाय क्यों बहिन !' मैं बोली।

कामिनी बोली, 'पुकारते-पुकारते यमुना दीदी का गला सूख गया है। दूध पीओगी क्या बहिन ?'

हंसी की चोट से यमुना चुप हो गईं। उन्होंने कामिनी पर गरम होकर कहा, 'जरा-सी छोकरी, तू बड़ों के बीच में न बोला कर।'

'मैं कैसे न बोलूं ? यहां और तो कोई आपकी दवा जानता नहीं।' यह कहकर कामिनी भागी।

कामिनी ने फिर लौटकर देखा प्यारी ठान दीदी, आयु पचास वर्ष। पच्चीस वर्ष विधवापन में काटे। सब अंगों पर गहने पहिनकर राधिका जी बनकर आ गईं। वह मेरे स्वामी को लक्ष्य करके बोलीं, 'कृष्ण कहां है ?' यह कहकर वह आंगन में घूमने लगीं।

मैंने पूछा, 'क्या खोज कर रही हैं ठान दीदी ?'

'मैं कृष्ण को खोज रही हूं।' ठानी दीदी बोलीं।

'ग्वालों के घर जाओ, यह तो कायस्थ का घर है ठान दीदी !'

कामिनी बोली, 'कृष्ण वहीं मिलेंगे।'

'मेरे कृष्ण कायस्थ के घर में ही मिलेंगे।' वह बोली।

'ठान दीदी, सभी जातियों को जात दे दी है क्या तुमने ?' कामिनी हंसकर बोली।

उनका, एक समय, एक तेली प्रेमी बना था। कामिनी की इस बात से रुष्ट होकर उन्होंने व्यंग्य के बहाने गालियां देनी आरम्भ कीं। मैंने उन्हें रोकने के लिए यमुना दीदी को दिखाकर कहा, 'क्रोध क्यों करती हो ?'

'तुम्हारे कृष्ण इस यमुना में कूद पड़े हैं। तुम और मैं यमुना 'पुलिन' पर बैठकर रोएं। अन्य चारा ही क्या है अब ?'

यमुना ठकुरानी ने जिस प्रकार महिषी का अर्थ भैंस लगाया था उसी प्रकार 'पुलिन' शब्द का अर्थ समझने में भी उन्होंने अपनी तीव्र बुद्धि का प्रयोग किया। उन्होंने क्रोध करके पूछा, इसमें पुलिन कौन है री ?'

मेरी भी कुछ उपहास करने की इच्छा हुई। मैं बोली, 'जिनके बदन पर यमुना तरंगे मारती रहती हैं, वृन्दावन में उसे पुलिन कहते हैं। समझीं दीदी !'

फिर 'तरंग' शब्द ने भ्रम पैदा किया। यमुना दीदी रुष्ट होकर बोलीं, 'मैं मरे 'तरंग-फरंग' को भी नहीं जानती और तेरे 'पुलिन' को भी नहीं पहिचानती। समझती हूं कि तू ये सब रंग-रास के नाम डाकुओं के पास से सीखकर आई है। वहीं से तूने ये सब नाम पाए हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वहां रंगमयी नाम की एक सहेली थी।' वह बोली, 'ऐसा ताना क्यों मारती हो यमुना दीदी ! पुलिन कहते हैं नदी के किनारे को। तुम्हारी धारा के दोनों ओर क्या नहीं है ?'

यमुना दीदी की चंचला भौजाई घूंघट काढ़े उनके पीछे बैठी थीं। उन्होंने घूंघट के अन्दर से कहा, 'किनारा होता तो मैं बच जाती। मुझे भी कुछ आशा होती। इस समय तो काले जल की कालिन्दी ही कल-कल कर रही है। वह किनारे की क्या चिन्ता करती है ?'

कामिनी बोलीं, 'मेरी यमुना दीदी को तुम लोग ऐसे ताने क्यों मार रही हो भाभी?'

चंचला बोली, 'चुप रह ! मैं दीदी को ताना क्यों मारूंगी ? मैं तो इनके भाई के पैर पकड़कर उनसे कहूंगी कि इन्हें सुन्दर श्मशान में ले जाएं जिससे इनकी आत्मा को शान्ति मिले।'

'श्मशान में सियार और कुत्तों का भला होगा। यमुना किनारे तो गायें-भैंसें चरती हैं, उनका क्या भला होगा ?'

भैंस की बात कहकर बहू ने घूंघट उठाया और ननद पर हंसकर कटाक्ष किया।

यमुना बोलीं, 'यह बात बार-बार अच्छी नहीं लगती। जिन्हें भैंस अच्छी लगे, वे ही बार-बार कहें ?'

ठान दीदी इन बातों पर बहुत ध्यान नहीं देती थीं। उन्होंने पूछा, 'भैंस की क्या बात है री ?'

कामिनी बोली, 'किसी देश में तेलियों की एक भैंस कोल्हू खींचती थी। वही बात हो रही है दीदी !' यह कहकर कामिनी वहां से भागी। कामिनी दुश्चरित्र लोगों को देख नहीं सकती थी। ठान दीदी क्रोध करना व्यर्थ समझकर उ-बाबू के पास जाकर बैठ गईं। वह उनसे गप्पें लगाने लगी।

मैं कामिनी से बोली, 'कामिनी, देख तो इस बार प्यार ने कृष्ण को पा लिया।'

कामिनी बोली, 'बहुत देर से समय मिला है।'

उसके पश्चात् मैंने अपने स्वामी का स्वर सुना। वह किसी को डांट रहे थे। हम लोगों ने देखा एक दाढ़ी वाला मुगल घर के अन्दर आ गया था। उ-बाबू उसे बाहर जाने के लिए डांट रहे थे और मुगल जा नहीं रहा था।

कामिनी बोली, 'जीजा जी ! क्या शरीर में बल नहीं है ?'

'है क्यों नहीं ?' वह बोले।

'तो मुगल को धकेल क्यों नहीं देते ?' कामिनी बोली।

यह सुनकर मुगल सांस छोड़कर भागा। भागते समय मैंने उसकी दाढ़ी पकड़ ली। दाढ़ी मेरे हाथ में आ गई। मुगल बोला, 'यह तो मौत हुई। इस मूर्ख के साथ घर कैसे बसायेगी ?'

मैंने दाढ़ी यमुना दीदी को उपहार में दे दी। उ-बाबू ने पूछा, 'बात क्या है ?'

कामिनी बोली, 'बात क्या है ? आप दाढ़ी को पहिनकर चार पैरों से बन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घास चरना आरम्भ करें।'

उ-बाबू ने पूछा, 'क्या मुगल बनावटी था ?'

कामिनी बोली, 'किसे बूता है कि ऐसी बात कहे ? श्रीमती अनंगमोहिनी क्या बनावटी हो सकती हैं ? यह दिल्ली से आई हैं ?'

इस पर बहुत जोरों की हंसी हुई। उसी समय गांव की ब्रजसुन्दरी दासी एक फटा कपड़ा पहिन कर एक लड़के को गोद में लेकर उ-बाबू के पास जा दुःख से रोने लगीं। 'मैं बहुत दीन हूं बाबू ! खाने को भी नहीं पाती। बच्चे का भी पालन-पोषण नहीं कर पाती।'

उ-बाबू ने उसे कुछ दिया। हम दोनों द्वार की ओर थीं। द्वार पर कामिनी ने उससे कहा, 'माई भिखारिन ! जानती हो न कि बड़े आदमी के पास से उपहार पाने पर दरबानों को भी कुछ देना होता है।'

ब्रजसुन्दरी ने कहा, 'दरबान कौन है ?'

कामिनी बोली, 'हम दोनों दरबान ही तो हैं।'

'कितना दाम चाहती हो ?' ब्रजसुन्दरी ने पूछा।

'क्या पाया है तुमने ?' कामिनी ने प्रश्न किया।

'दस रुपये।' ब्रजसुन्दरी ने बताया।

'तो हम दोनों को आठ-आठ रुपये दे जाओ, कुल सोलह रुपये।'

'लाभ क्या होगा मुझे ?' वह बोली।

'बड़े आदमी के घर भीख मांगने जाकर लाभ-हानि का विचार करने से काम नहीं चलता ? कभी-कभी घर से भी कुछ देना पड़ता है।' कामिनी ने मुस्कराकर कहा।

ब्रजसुन्दरी बड़े आदमी की स्त्री थीं। उन्होंने सोलह रुपये निकाल कर दे दिये। हमने वे ही सोलह रुपये यमुना ठकुराइन को देकर कहा, 'लो, तुम इन रुपयों से सन्देश खाना।'

'बात क्या है ?' मेरे स्वामी ने पूछा।

ब्रजसुन्दरी तभी बच्चों को भेजकर बनारसी रेशम की साड़ी पहिनकर वहां आ बैठीं। फिर एक हंसी की धारा बह चली।

'यह क्या देवोत्सव है आज ?' ब्रजसुन्दरी बोलीं।

यमुना बोली, 'है क्यों नहीं ? देखते नहीं, किसी का काली-दमन स्वांग है, किसी का कलंक-भंजन, किसी का मधुर-मिलन और किसी को भागना ही आता है।'

'भागना किसे आता है ?' यमुना ने पूछा।

'क्या कामिनी को केवल भागना ही आता है ?'

कामिनी बातों से सबको जलाने लगी। वह पान बांटती हुई सबको प्रसन्न कर रही थी। सबने मिलकर उसे पकड़कर कहा, 'तू बहुत धमा-चौकड़ी मचा रही है ? अब तुझे छोड़ा नहीं जायेगा।'

कामिनी बोली, 'मचाऊंगी क्यों नहीं ? तुम लोगों से डरती हूं क्या मैं ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कामिनी बोलो, तुम्हारे साथ क्या बात हुई थी ?' मेरे पति ने मुस्कराकर कहा।

'क्या बात हुई थी महाशय जी ?' कामिनी ने पूछा।

'यही कि तुम आज नाचोगी।' मेरे पति बोले।

'नाचा तो था मैंने ? क्या आपने देखा नहीं ?'

'कब नाचा था ?' मेरे पति ने पूछा।

'आज दोपहर को।' कामिनी बोली।

'कहां नाचा था ?' मेरे पति ने पूछा।

'अपने कमरे के द्वार बन्द करके कमरे के अन्दर।'

'वह किसने देखा ?' मेरे पति ने पूछा।

'अन्य किसी ने नहीं, मैंने देख लिया था।'

'ऐसी बात तो निश्चित नहीं हुई थी।' वह बोले।

'ऐसी बात भी तो नहीं हुई थी कि मैं तुम लोगों के सामने आकर नाचूंगी। नाचूंगी, यह स्वीकार किया था, तो नाच ली। मैंने अपनी बात रख ली। तुम लोगों ने नहीं देख पाया, तो यह तुम्हारा भाग्य।'

कामिनी अगर नाचने के लिये पकड़ी गई, तो मेरे पति महाशय गाने के लिए पकड़े गए। सबने कहा, 'तुम्हें गाना होगा।' उन्हें गाना गाना पड़ा।

इसी प्रकार आमोद-प्रमोद में दो प्रहर रात बीत गई। वह दिन जीवन का अत्यन्त आनन्दपूर्ण वातावरण में व्यतीत हुआ।

मैं दूसरे दिन पालकी में बैठकर अपने पति के साथ ससुराल आई। मैं पति के साथ जा रही थी, यह एक सुख था, परन्तु मैं सेवा के लिये जा रही थी, यह एक और प्रकार का सुख था, जिसे कभी पाया नहीं, उसे पाने की आशा से जा रही थी।

इस बार मैं ससुराल निर्विघ्न पहुंच गई। पति महाशय ने अपने माता-पिता के सामने सारी बातें विस्तार के साथ कहीं। रमन बाबू का पत्र खोला गया। उसकी बातों के साथ मेरी सब बातें मिल गईं। मेरे सास-ससुर संतुष्ट हो गए। समाज के लोगों ने भी पूरा वृत्तान्त जानकर कोई बात नहीं उठाई। सभी लोग प्रसन्न हुए।

मैंने सुभाषिनी को पत्र लिखा। उसमें सब बातें खोलकर लिखीं। मेरे अनुरोध पर मेरे स्वामी ने हारानी के पांच सौ रुपये भेज दिए। शीघ्र ही मैंने सुभाषिनी का आनन्द से भरा हुआ उत्तर प्राप्त किया। सुभाषिनी ने पत्र रमन बाबू के हस्ताक्षर से लिखा था, परन्तु बातें सब सुभाषिनी की अपनी थीं। उसने लिखा, 'पहिले तो हारानी ने किसी प्रकार भी रुपये नहीं लिए। उसने कहा, 'यदि रुपये लेकर मेरा लालच बढ़ गया तो मैं भविष्य में लालच में पड़कर बुरे काम करने लगूंगी ?' मैंने उस मुंहजली को समझाया, 'यदि मेरी झाड़ू न खाती तो क्या तू यह काम करती ? क्या हर बार तू मेरी झाड़ू खा सकती है ? बुरे काम के समय क्या मैं तेरे मुंह पर वैसे ही झाड़ू मारूंगी ? दो-चार गालियां क्या नहीं खाएगी तू ? तूने अच्छा काम किया था, उसका पुरस्कार ले।' इस प्रकार बहुत समझाने-बुझाने पर उसने रुपये लिये। अब उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
भांति-भांति के व्रत-नियम करने का निश्चय किया है। जितने दिन तक तुम्हारा समाचार नहीं पाया, वह हंसती भी नहीं थी। अब उसकी हंसी से घर भर परेशान है।'

ब्राह्मणी का समाचार सुभाषिनी ने लिखा, 'जब तुम अपने स्वामी के साथ छिपकर चली गई थीं तो ब्राह्मणी तुम्हें बहुत बुरा-भला कहती थी। वह कहती थी, 'मैं जानती थी कि वह अच्छी स्त्री नहीं है। उसका चरित्र ठीक नहीं है। मैंने कितनी बार तुमसे नहीं कहा कि तुम लोग ऐसी चरित्रहीना को अपने गृहस्थ के घर में मत रखो, परन्तु कंगाल की बात कौन सुनता है ? सभी लोग मूर्ख जैसे उसके पीछे कुमुदिनी-कुमुदिनी करते फिरते थे।' फिर जब उसे ज्ञात हुआ कि तुम अन्य किसी के साथ नहीं, अपने पति के साथ ही गई हो और तुम बड़े आदमी की लड़की तथा बड़े आदमी की पत्नी हो तथा अपना घर पा गयी हो, तो बोली, 'मैं तो पहिले ही कहती थी कि यह बड़े घर की लड़की है। क्या छोटे घर में ऐसा स्वभाव और चरित्र कहीं होता है ? जैसा रूप था वैसे ही उस लक्ष्मी में गुण थे। वह सकुशल रहे, भगवान् उसका सुहाग बनाए रखें।'

उसके पश्चात् मेरी सुभाषिनी से केवल एक बार भेंट हुई। उसकी लड़की के विवाह पर पतिदेव मुझे वहां लेकर गये थे। फिर मेरा वहां जाना नहीं हो सका। मैं सुभाषिनी को भूली नहीं हूं, इस जन्म में भूलूंगी भी नहीं।

■■■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राधारानी

1

राधारानी बड़े घर की बेटी थी, परन्तु उसके पिता की मृत्यु हो चुकी थी। उसकी माताजी का एक पट्टीदार से मुकदमा चल रहा था। वह हाईकोर्ट से मुकदमा हार गई थीं। पट्टीदार ने उन पर डिग्री लेकर उन्हें घर से बेदखल करा दिया था। दस लाख रुपये की सम्पत्ति डिग्री में चली गई। मुकदमे के खर्च और हर्जाने में घर की पूंजी भी समाप्त हो गयी। राधारानी की मां ने अपने गहने बेचकर प्रीवीकौंसिल में अपील की। सब कुछ समाप्त हो गया। कुछ भी शेष नहीं बचा। विधवा बेचारी एक झोंपड़ी में रहकर अपना कठिन समय व्यतीत करने लगी। निर्धनता के कारण राधारानी का विवाह भी न हो सका। वैसे अभी वह बच्ची ही थी।

रथ-यात्रा के उत्सव से पूर्व राधारानी की मां बहुत बीमार हो गई। बीमारी के कारण वह जो मेहनत-मजदूरी करके अपना और अपनी बच्ची का निर्वाह करती थीं, वह साधन भी समाप्त हो गया। रथ-यात्रा के दिन उनका स्वास्थ्य कुछ ठीक था। उस दिन वह पथ्य ले सकती थीं, परन्तु पथ्य की कोई व्यवस्था नहीं थी। उनके पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं थी, अपने पथ्य का प्रबन्ध करने के लिए।

राधारानी ने कुछ जंगली पुष्प बीनकर एक माला बनाई। उसने सोचा कि रथ-यात्रा के मेले में वह उसे बेचकर जो पैसे प्राप्त करेगी उनसे अपनी मां के पथ्य का प्रबन्ध कर सकेगी। इसी विचार से वह माला लेकर मेले में गई। मेला लगा, परन्तु उसी समय भयंकर आंधी पानी आ गए। वर्षा और आंधी के कारण लोग-बाग भाग खड़े हुए। वहां माला खरीदने वाला कोई न रहा। राधारानी ने सोचा, पानी रुकने पर सम्भवतः लोग एकत्रित होंगे और उसकी माला बिक जाएगी, परन्तु न तो पानी ही रुका और न भीड़ ही फिर एकत्रित हुई। प्रतीक्षा में उसे रात हो गई। चारों ओर अंधेरा छा गया। निराश होकर राधारानी अपने घर की दिशा में लौट पड़ी।

मार्ग में घोर अंधकार था। वर्षा के कारण रास्ते में फिसलन हो गई थी। कहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। मूसलाधार पानी गिर रहा था। माता के पथ्य का ध्यान करके राधारानी की आंखों से भी आंसुओं की वर्षा होने लगी। वह रोती-रोती कई बार फिसलकर गिरी, परन्तु उसने माला अपनी छाती से चिपकाये रखी। माता के पथ्य का वही उसके पास एक सहारा थी।

अचानक उस अंधकार में राधारानी किसी से टकरा गई। उससे टक्कर खाकर वह फिर गिर पड़ी। जिससे टक्कर लगी, उसने पूछा, 'तुम कौन हो ? रो क्यों रही हो तुम ?' यह किसी पुरुष की आवाज थी।

उसे सुनकर राधारानी का रोना बन्द हो गया। वह एक अपरिचित व्यक्ति का स्वर था। राधारानी ने धीरे से उत्तर दिया, 'मैं एक दुखिया लड़की हूं। मां के अतिरिक्त मेरा संसार में अन्य कोई नहीं है।'

'इस आंधी-पानी में तुम कहा गई थीं ?' उसने पूछा।

'मैं रथ-यात्रा में गई थी। इस समय घर जा रही हूं। अंधेरे में मार्ग दिखाई नहीं दे रहा है।' राधारानी ने उत्तर दिया।

'तुम्हारा घर कहां है ?' उसने पूछा।

'श्रीरामपुर में।' राधारानी ने बताया।

'मेरे साथ चलो, मैं भी वहीं जा रहा हूं। तुम्हारा मकान किस मुहल्ले में है ? बड़ी फिसलन है। मेरा हाथ पकड़ लो, वरना गिर जाओगी।' उस व्यक्ति ने कहा।

राधारानी उसके साथ-साथ चली। वह अंधेरे में राधारानी की आयु का अनुमान न लगा सका। उसके कण्ठ-स्वर से वह समझा कि कोई छोटी-सी बच्ची है। उसने पूछा, 'तुम्हारी आयु कितनी होगी ?'

'दस-ग्यारह वर्ष की होगी। राधारानी ने उत्तर दिया।

'तुम्हारा नाम क्या है ?' उस व्यक्ति ने पूछा।

'राधारानी।' राधारानी ने उत्तर दिया।

'तुम मेला देखने क्यों गयी थीं ?' वह बोला।

राधारानी ने उसे सब कुछ बता दिया। वह जान गया कि वह रथ-यात्रा देखने नहीं, अपने माता के लिए पथ्य का प्रबन्ध करने गयी थी।

'मैं एक माला लेना चाहता था। मेरे घर पर ठाकुरजी हैं, उन्हें पहिनानी है। मेला शीघ्र ही समाप्त हो गया और मैं माला नहीं ले सका। तुम यह माला बेचो तो मैं इसे ले लूं।' उसने कहा।

राधारानी प्रसन्न तो हुई, परन्तु सोचने लगी कि जो उसे इतने दया-भाव से घर तक पहुंचा रहा है, उससे वह माला का मूल्य कैसे ले ? परन्तु मूल्य न ले तो माता के लिए पथ्य का प्रबन्ध कैसे होगा ? वह असमंजस में पड़ गई। अन्त में उसने उस व्यक्ति से एक सिक्का लेकर वह माला उसे दे दी। उस व्यक्ति ने राधारानी को एक रुपया दे दिया। राधारानी सिक्का हाथ में लेकर बोली, 'यह तो पैसा नहीं है, बड़ा सिक्का है बाबू ! आप भूल से दे गए हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बड़ा पैसा है।' उसने कहा।

'आपने भूल से रुपया तो नहीं दे दिया मुझे ?'

'नहीं, मैंले भूल से कुछ नहीं किया है।'

'अच्छा, घर जाकर देख लूंगी। पैसा न होगा तो लौटा दूंगी। आप तनिक ठहर जाना।' राधारानी बोली।

कुछ देर पश्चात् वे राधारानी की झोंपड़ी के द्वार पर पहुंच गए। राधारानी बोली, 'आप अन्दर आकर खड़े हों। मैं दीपक जलाकर देखती हूं यह पैसा है या रुपया?'

'मैं यहीं खड़ा हूं। तुम अपने भीगे वस्त्र बदल लो, तब दीपक जलाना।' वह बोला।

'मेरे पास दूसरे वस्त्र नहीं हैं। मैं भीगी ही धोती पहिने रहूंगी। मुझे कुछ नहीं होगा। इसे निचोड़कर फिर पहिन लूंगी। आप ठहरें तनिक, मैं अभी प्रकाश करती हूं।' राधारानी बोली।

'अच्छा।' कहकर वह खड़ा हो गया।

दीपक में तेल नहीं था। उसने छप्पर के अन्दर से थोड़ा फूंस निकालकर जलाया। उसने देखा, वह रुपया था, पैसा नहीं। राधारानी ने झोंपड़ी से बाहर आकर इधर-उधर देखा, परन्तु रुपया देने वाले का कहीं पता नहीं था। वह जा चुका था। उसने अन्दर जाकर सब बात अपनी मां से कही और पूछा, 'मां अब क्या करें ?'

'करें क्या बेटी ! उसने रुपया अनजाने में नहीं दिया था। वह कोई दयावान व्यक्ति था। हमारा कष्ट सुनकर वह दान दे गया है। हम भी भिखारी हैं अब। यह दान ग्रहण कर इसे खर्च करेंगे।' मां नेत्रों में आंसू भरकर बोलीं।

उसी समय किसी ने झोंपड़ी का द्वार खटखटाया। राधारानी ने द्वार खोल दिया। उसने सोचा कि सम्भवतः वही व्यक्ति आया होगा, परन्तु वह नहीं था। उनकी झोंपड़ी से थोड़ी ही दूर पर पद्मलोचन साह की कपड़े की दुकान थी। पद्मलोचन साह एक जोड़ा धोती लेकर आया था। द्वार खुलते ही बोला, 'लो, यह राधारानी के लिए एक धोती-जोड़ा लाया हूं ?'

'यह कैसा धोती जोड़ा है ?' राधारानी ने पूछा।

पद्मलोचन बोला, 'अभी-अभी एक बाबू मुझे दाम देकर कह गए हैं कि यह धोती-जोड़ा राधारानी को जाकर दे आओ।'

'वहीं होंगे मां ! उन्होंने ही धोती खरीदकर भेजी है। मैंने उनसे कहा था कि मेरे पास भीगा वस्त्र बदलने के लिए सूखा वस्त्र नहीं है।' राधारानी ने कहा।

पद्मलोचन इन लोगों का पूर्व परिचित था। अच्छे दिनों में उनके यहां वह कपड़ा ले जाकर बेचा करता था। राधारानी की मां ने उससे पूछा, 'पद्मलोचन ! तुम उस बाबू को पहिचानते हो ?'

'तुम लोग नहीं पहिचानती क्या ?' पद्मलोचन बोला।

'नहीं, हमने उन्हें कभी नहीं देखा।'

'मैंने सोचा वह तुम्हारे कोई परिचित हैं। मैं भी उन्हें नहीं पहिचानता। मैंने उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहिले कभी नहीं देखा।' यह कहकर पद्मलोचन धोती-जोड़ा राधारानी को देकर अपनी दुकान को लौट गया।

राधारानी ने रुपया भुनाकर मां के पथ्य का प्रबन्ध किया। बाजार से तेल लाकर दीपक जलाया। मां को पथ्य देने बैठी तो एक कागज पड़ा मिला। उसे देखकर राधारानी बोली, 'यह क्या है मां ?'

'यह तो नोट है।' मां उसे देखकर बोली।

'यह भी वही डाल गए होंगे।' राधारानी ने कहा।

'हां, तुम्हें दे गये हैं। इस पर तुम्हारा नाम लिखा है।'

राधारानी कुछ पढ़ी-लिखी थी। उसने पढ़कर देखा, नोट पर उसका नाम लिखा था। वह बोली, 'उनका नाम भी लिखा है मां ! कोई चोरी का न कहे, इसलिए अपना नाम भी लिख गये हैं। उनका नाम रुक्मणीकुमार राय है।'

दूसरे दिन उन्होंने रुक्मणीकुमार राय का बहुत पता लगाना चाहा, परन्तु श्रीरामपुर या आसपास में उनका पता न लगा। उन्होंने वह नोट भुनाया नहीं, सुरक्षित अपने पास रख लिया।

2

राधारानी की मां को पथ्य तो मिला, परन्तु रोग से मुक्ति न मिली। जो मानसिक और शारीरिक कष्ट उन्हें सहन करना पड़ रहा था, उसे वह सहन न कर सकीं। रोग बढ़ता ही गया और उनका अन्त समय निकट आ गया। उनका बदन अत्यन्त क्षीण हो गया था। उनके सांस उस समय ज्ञात नहीं कहां अटके हुए थे।

प्रीवीकौंसिल से मुकदमा उनके पक्ष में हुआ। उन्हें अपनी सम्पत्ति और हर्जाने का रुपया मिलने की आशा हो गई। बाबू कामाख्यानाथ उनके वकील थे। वह स्वयं यह समाचार लेकर उनके पास आये। यह समाचार प्राप्त कर राधारानी की मां के नेत्रों से अश्रु-धारा बह चली।

आंसू रोककर वह कामाख्यानाथ से बोलीं, 'यह दीपक तो अब बुझना ही चाहता है वकील साहब ! अब यह जीवन चल नहीं सकता। आपके इस शुभ समाचार से मैं बच नहीं सकती। मेरी आयु समाप्त हो चुकी है। मुझे यही प्रसन्नता है कि मेरी पुत्री भूखों नहीं मरेगी, परन्तु इस बच्ची की सम्पत्ति की रक्षा कौन करेगा ? क्या आप इसकी रक्षा का भार ग्रहण कर सकते हैं ?'

कामाख्यानाथ बहुत सज्जन व्यक्ति थे। वह राधारानी के पिता के पुराने मित्र थे। इस विकट आपत्ति के समय में भी उन्होंने राधारानी की मां से कई बार कहा था कि जब तक अपील का फैसला न हो तब तक वह उनके यहां रहें, वह उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवा करेंगे, परन्तु राधारानी की मां ने वह स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कुछ सहायता भी देनी चाही, परन्तु उन्होंने स्पष्ट मना कर दिया।

रुक्मणीकुमार का दान उन्होंने प्रथम और अन्तिम ग्रहण किया था।

कामाख्यानाथ को ज्ञात नहीं था कि उनकी आर्थिक दशा इतनी बिगड़ गई थी। वह यह स्थिति देखकर अत्यन्त कातर हो उठे। वह राधारानी की मां के सामने हाथ जोड़कर बोले, 'आप आज्ञा करें, मुझे क्या करना होगा ? आप जो आज्ञा करेंगी मैं उसे भरसक पूरा करूंगा।'

'मैं जा रही हूं। राधारानी अब आपकी पुत्री है। राधारानी इस सम्पत्ति की अधिकारिणी है। आप इसकी देखभाल करिये और अपनी कन्या की तरह इसकी रक्षा कीजिए, यही मेरी भिक्षा है। आपका आश्वासन मेरे जीवन की अन्तिम शान्ति होगा।' राधारानी की मां ने उनकी ओर डबडबाये नेत्रों से देखकर कहा।

'मैं शपथ से कहता हूं कि मैं राधारानी को अपनी कन्या से अधिक समझूंगा, आप विश्वास रखें।' कामाख्या बाबू बोले।

कामाख्या बाबू की आंखों में आंसू भरे देखकर वृद्धा को उनकी बातों पर विश्वास हो गया। उनके सूखे होंठों पर हंसी की रेखा खिंच गई।

कामाख्या बाबू बोले, 'आप मेरे साथ कलकत्ता चलें। यहां की संपत्ति पर अधिकार होने पर आप यहां चली आना।'

राधारानी की मा में अपना एक अहंकार था। दरिद्रावस्था समाप्त हो जाने पर उन्होंने अब कोई आपत्ति न की। कामाख्या बाबू राधारानी और उसकी मां को अपने साथ कलकत्ता लिवाकर ले गये। वहां ले जाकर उन्होंने यथासाध्य चिकित्सा कराई, परन्तु कोई लाभ न हुआ। कुछ ही दिन पश्चात् राधारानी की मां की मृत्यु हो गई।

अदालत की आज्ञा प्राप्त कर कामाख्या बाबू ने राधारानी को उसकी सम्पत्ति पर अधिकार दिला दिया, परन्तु राधारानी अभी बच्ची थी, इसलिये उन्होंने उसे वहां अकेली नहीं जाने दिया।

कलक्टर ने राधारानी की सम्पत्ति कोर्ट ऑफ बार्डस के अधीन करनी चाही, परन्तु कामाख्या बाबू ने ऐसा नहीं होने दिया। कामाख्या बाबू के सामने कलक्टर साहब की न चल सकी। उन्होंने स्वयं ही राधारानी की सम्पत्ति का प्रबन्ध किया।

अब राधारानी का विवाह करने की समस्या उनके सामने थी। कामाख्या बाबू नये विचारों के व्यक्ति थे। वह बाल-विवाह के पक्ष में नहीं थे। इसलिये उन्होंने सोचा कि राधारानी जब स्वयं सोच-विचार कर विवाह करना चाहेगी तभी विवाह करेंगे। अभी वह शिक्षा प्राप्त करे। यह सोचकर उन्होंने राधारानी को उच्च शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध किया।

राधारानी ने भी शिक्षा में रुचि ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3

पांच वर्ष व्यतीत हो गये। अब राधारानी सोलह वर्ष की थी। वह अन्तःपुर में रहती थी। उसको कोई देख नहीं सकता था। अब उसके विवाह का समय आ गया था। कामाख्या बाबू राधारानी के परामर्श से ही उसका विवाह करना चाहते थे। राधारानी का मन समझने के लिये उन्होंने अपनी पुत्री वसन्तकुमारी को बुलाकर उससे बातें कीं।

वसन्तकुमारी से राधारानी की बड़ी घनिष्ठता थी। दोनों में परस्पर बड़ा प्रेम था। कामाख्या बाबू ने वसन्तकुमारी को सब बातें समझा दी थीं।

वसन्तकुमारी ने राधारानी से बातें करके अपने पिता को बताया, 'कोई रुक्मणीकुमार राय हैं ? क्या आप उन्हें जानते हैं।

कामाख्या बाबू बोले, 'नहीं, मैं तो उन्हें नहीं जानता, क्यों ?'

'राधारानी रुक्मणीकुमार को छोड़कर अन्य किसी से विवाह नहीं करेंगी।' वसन्तकुमारी ने उन्हें सूचना दी।

'यह क्या ? राधारानी का किसी दूसरे व्यक्ति से परिचय कैसे हुआ ? यह तुमने कैसे जाना ?' कामाख्या बाबू ने पूछा।

वसन्तकुमारी ने जो बात राधारानी से सुनी थी वह सविस्तार अपने पिता को सुनाई। उसे सुनकर रुक्मणीकुमार की प्रशंसा करते हुए कामाख्या बाबू बोले, 'तुम राधारानी को समझाना कि यह उसका भ्रम है। कृतज्ञता का विवाह से कोई सम्बन्ध नहीं है। रुक्मणीकुमार पर आवश्यकता के समय राधारानी को प्रत्युपकार करना चाहिये। इस उपकार से विवाह करने का उनका कोई अधिकार नहीं बनता। फिर जाति, आयु इत्यादि का भी कोई ज्ञान नहीं है। रुक्मणीकुमार विवाह करेंगे भी इस विषय में भी क्या कहा जा सकता है ?'

वसन्तकुमारी बोली, 'सम्भावना तो नहीं है। यह राधारानी भी जानती है, परन्तु उस रात्रि से उसने अपने मन में रुक्मणीकुमार की प्रतिमा स्थापित कर रखी है। अन्य लोग जैसे देवता की पूजा करते हैं, वैसे ही राधारानी उनकी पूजा करती है। राधारानी को यहां आये पांच वर्ष हो गये। इन पांच वर्षों में एक दिन भी ऐसा नहीं गया जब राधारानी ने अन्य किसी के विषय में सोचा हो। वह अन्य किसी से विवाह करके सुखी नहीं होगी, यह आप समझ लें।'

कामाख्या बाबू समझदार और शिक्षित व्यक्ति थे। उन्होंने राधारानी की मनोभावना को कुचलने की बात नहीं सोची और रुक्मणीकुमार की खोज करने का प्रयास किया। उनके पास जो भी सम्भव साधन हो सकते थे उन्होंने उन सभी का प्रयोग किया।

कामाख्या बाबू रुक्मणीकुमार की कलकत्ते में खोज करने लगे। उन्होंने अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्रों से भी उनकी खोज करने को कहा। अपने मुवक्किलों को पत्र लिखे और समाचार-पत्रों में विज्ञापन दिये।

'बाबू रुक्मणीकुमार राय, जिनके निम्न हस्ताक्षर हैं, कृपया मुझसे भेंट करें। मुझे उनसे कुछ आवश्यक कार्य है। उन्हें मुझसे भेंट करके हार्दिक प्रसन्नता होगी।

प्रार्थी

ह० रुक्मणीकुमार कामाख्यानाथ

यह सब कुछ करने पर भी रुक्मणीकुमार का कोई पता न चला। समय व्यतीत होता गया, खोज होती रही और वह नहीं आये। उनका कोई समाचार भी न मिला।

तब राधारानी पर एक और विपत्ति आई। अचानक कामाख्या बाबू परलोक सिधार गये। राधारानी शोक-सागर में डूब गई। उसका सब सहारा जाता रहा। कामाख्या बाबू के श्राद्ध के पश्चात् राधारानी अपने घर चली गयी। अपनी सम्पत्ति की देखभाल उसने स्वयं करनी आरम्भ कर दी। कामाख्या बाबू के प्रबन्ध में राधारानी की सम्पत्ति काफी बढ़ गई थी।

अपनी सम्पत्ति संभालते ही राधारानी ने दो लाख रुपये से एक अनाथालय स्थापित किया और उसका नाम रुक्मणीकुमार-अनाथालय रखा। राधारानी ने इसी नाम की एक शिला अनाथालय पर खुदवाकर लगवा दी।

राधारानी की माताजी ने अपनी दरिद्रावस्था में श्रीरामपुर में आश्रय लिया था। उनका गांव श्रीरामपुर के निकट राजपुर था। इस समय राधारानी राजपुर में रह रही थी। राजपुर में यह अनाथालय राधारानी ने अपने मकान के सामने बनवाया था।

4

एक वर्ष पश्चात एक व्यक्ति उस अनाथालय में आया। उसकी आयु तीस-पेंतीस वर्ष के लगभग थी। देखने में गम्भीर और बड़ा आदमी प्रतीत होता था। 'रुक्मणीकुमार अनाथालय' के द्वार पर आकर उसने चौकीदार से पूछा, 'यह किसका भवन है ?'

चौकीदार बोला, 'यह अनाथालय है बाबू ! इसमें दीन-दुःखी लोग रहते हैं। इसका नाम, 'रुक्मणीकुमार अनाथालय' है।

'क्या मैं इसे अन्दर से देख सकता हूं ?' वह बोला।

'इसके अन्दर तो दीन-दुःखी भी जा सकते हैं बाबू ! आप इसे प्रसन्नतापूर्वक अन्दर जाकर देख सकते हैं।' चौकीदार ने कहा।

उस व्यक्ति ने अन्दर जाकर देखा और लौटकर चौकीदार से पूछा, 'यहां का प्रबन्ध देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। इस अनाथालय का सदाव्रत कौन चलाता है?'

'एक महिला चलाती है।' उसने उत्तर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इसका नाम 'रुक्मणीकुमार अनाथालय' क्यों रखा गया है ?'

'यह सब तो हम लोग नहीं जानते।' चौकीदार ने कहा।

'रुक्मणीकुमार किसका नाम है।' उसने पूछा।

'किसी का भी नहीं।' चौकीदार बोला।

'सदाव्रत चलाने वाली महिला का निवास-स्थान कहां है ?'

चौकीदार ने सामने की ऊंची हवेली उन्हें दिखा दी।

उस व्यक्ति ने चौकीदार से पूछा, 'क्या वह महिला पुरुषों के सामने आती हैं?'

चौकीदार बोला, 'जी नहीं।'

उस व्यक्ति ने कुछ सोचकर राधारानी के भवन में प्रवेश किया। वह व्यक्ति सीधा-सादा बंगाली था। कोई तड़क-भड़क नहीं थी उसके अन्दर। उसकी अंगुली में एक हीरे की अंगूठी अवश्य थी, जिसे देखकर राधारानी के नौकर अवाक् होकर उसे देख रहे थे। इतना बड़ा हीरा उन्होंने अंगूठी में पहिले कभी नहीं देखा था। आगन्तुक अकेला ही था। उसने राधारानी के दरबान से भेंट की और उसे एक पत्र देकर कहा, 'यह पत्र आप अपनी मालकिन के पास भेजकर इसका उत्तर मंगा दें, मैं प्रतीक्षा में हूं।'

'हमारी मालकिन एक स्त्री हैं। उनकी यह आज्ञा है कि किसी अपरिचित व्यक्ति का पत्र मेरे पढ़े बिना उनके पास न पहुंचे। इस पत्र के मेरे पढ़ने में आपको कोई आपत्ति तो नहीं है।'

'आप पढ़ लीजिए इसे। आपके पत्र को पढ़ने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

दीवानजी ने वह पत्र पढ़ा। उसमें लिखा था, 'प्रिय बहिन !'

इस व्यक्ति से एकान्त में मिलने में संकोच न करना। जो हो मुझे सूचित करना।

'वसन्तकुमारी।'

कामाख्या बाबू की कन्या के हस्ताक्षर देखकर दीवान जी कुछ न बोले। वह पत्र तुरन्त अन्तःपुर में भेज दिया गया। वहां से दासी उन बाबू को अन्दर लिवाकर ले गई। वह दासी के साथ अन्दर चले गए।

दासी ने बाबू को एक सजे हुए कमरे में ले जाकर बिठा दिया। राधारानी के अन्तःपुर में आज प्रथम बार किसी पुरुष ने प्रवेश किया था। एक दासी राधारानी को बुलाने चली गई और वह बाबू को बड़े ध्यान से देखने लगी। कुछ देर पश्चात् राधारानी ने वहां आकर दासी को विदा कर दिया। राधारानी के वहां आते ही आगन्तुक को लगा जैसे कमरे में प्रकाश फैल गया।

आगन्तुक स्तब्ध होकर राधारानी के सौन्दर्य को देख रहा था। राधारानी बोली, 'आपने मुझसे एकान्त में किस लिए भेंट करनी चाही ? मैं स्त्री हूं। मैंने वसन्तकुमारी के अनुरोध पर इसे स्वीकार किया है। उसके अनुरोध को मैं टाल नहीं सकी।'

'मैंने आपसे एकान्त में भेंट करना चाहा, ऐसी बात तो नहीं है।' वह व्यक्ति बोला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राधारानी बोली, 'तब फिर वसन्तकुमारी ने ऐसा अनुरोध क्यों किया ? आप शायद इसका कारण जानते हों। उसने तो पत्र में कुछ लिखा नहीं।'

आगन्तुक ने एक पुराना अखबार निकालकर राधारानी को दिया। उसमें कामाख्या बाबू का रुक्मणीकुमार की खोज का विज्ञापन छपा था। विज्ञापन देखकर राधारानी का बदन रोमांचित हो उठा। उसने उनकी ओर बड़े ध्यान से देखकर सोचा, 'शायद यही उसके रुक्मणीकुमार हैं।' उससे अब न रहा गया। उसने पूछा, 'क्या आपका नाम रुक्मणीकुमार है ?'

'नहीं, यह मेरा नहीं है।' उस व्यक्ति ने कहा।

राधारानी धीरे से बैठ गई। उसमें अब खड़ी रहने की शक्ति नहीं थी। उसका दिल टूट-सा गया था। आगन्तुक बोला, 'यदि मेरा नाम रुक्मणीकुमार होता तो कामाख्या बाबू यह विज्ञापन न निकलवाते। उनसे मेरा पुराना परिचय था, परन्तु मैंने जब यह विज्ञापन पढ़ा उसी समय से मैंने इसे रख छोड़ा है।'

राधारानी बोली, 'यदि आपसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं था तो आपने इसे क्यों रख छोड़ा है।'

'एक कौतूहल के कारण। आठ-दस वर्ष पूर्व मैं इधर-उधर घूमता फिरा करता था। लोक-लज्जा के भय से अपना नाम छिपाकर कल्पित नाम से अपना काम चलता था। मेरा वह कल्पित नाम रुक्मणीकुमार था, परन्तु आप इतनी विचलित-सी क्यों हो उठीं ?' उस व्यक्ति ने मधुर वाणी में पूछा।

राधारानी के कुछ स्वस्थ होने पर आगन्तुक फिर बोला, 'मैं वास्तविक रुक्मणीकुमार को नहीं जानता। मेरी कोई खोज करेगा इसकी भी मुझे सम्भावना नहीं थी। फिर भी न जाने क्यों मैंने इस विज्ञापन को रख छोड़ा था। इसके लिए कामाख्या बाबू के पास जाने का मेरा साहस न हुआ।'

'फिर ?' राधारानी ने पूछा।

'कामाख्या बाबू के श्राद्ध में उनके पुत्रों ने मुझे बुलाया। कुछ कारणवश मैं उसमें भी न जा सका। अब उनके पुत्रों से क्षमा-याचना करने मैं वहां गया था। कौतूहलवश विज्ञापन भी साथ ले गया। मैंने उनके ज्येष्ठ पुत्र से विज्ञापन का कारण पूछा। मैं राधारानी नामक एक कन्या को जानता था ! मैंने उसे एक दिन देखा था, परन्तु आज तक भूल न सका वह अपनी माता के पथ्य के लिए एक जंगली फूलों की माला लेकर आंधी-वर्षा की रात्रि में भूखी प्यासी...।' वह इससे आगे कुछ कह न सके। उनकी आंखें भर आईं।

राधारानी की भी आंखें भर आईं। उसने आंखें पोंछकर कहा, 'दूसरों की बात से क्या मतलब, आप अपनी बात कहिए।'

आगन्तुक बोला, 'मेरे विचार में यदि संसार में कोई देव-कन्या है, तो वह राधारानी थी। यदि मैंने संसार में कहीं सरलता और पवित्रता देखी है तो वह राधारानी में देखी थी, यदि किसी कंठ में अमृत देखा है तो वह उसके कंठ में था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके प्रत्येक शब्द में वीणा की झंकार थी। मैंने ऐसा स्वर अपने जीवन में फिर कभी नहीं सुना।'

रुक्मणीकुमार के कानों में आज फिर वही मधुर स्वर भरता जा रहा था जो उन्होंने उस दिन सुना था।

रुक्मणीकुमार सोच रहे थे, 'आज यह स्वर सुनकर इतने दिन पुराना स्वर क्यों याद आ रहा है ? इस युवती का स्वर मुझे राधारानी की याद क्यों दिला रहा है ? क्या यह वही है ? उस झोंपड़ी की रहने वाली भिखारिन महलों में रहने वाली रानी कैसे बन गई ? मैं अंधकार में राधारानी को अच्छी तरह देख नहीं पाया था। शशि को लजाने वाली सुन्दरी क्या सचमुच यह वही राधारानी है ?'

उधर राधारानी के कानों में रुक्मणीकुमार के मधुर बोल अमृत ढाल रहे थे। वह सोच रही थी, 'आठ वर्ष पश्चात् आज राधारानी को छलने के लिए यह छलिया फिर आया है। इतने दिन पश्चात् मेरी पूजा सफल हुई ? क्या यही वह अन्तर्यामी हैं ? मैं चुपचाप अपने हृदय में इनकी पूजा करती थी, यह इन्होंने कैसे जाना ?'

आज दोनों ने प्रथम बार एक-दूसरे को देखा। राधारानी सोच रही थी कि इस पृथ्वी पर ऐसा तेजोमय अन्य कौन हो सकता है ? अन्य कोई नहीं हो सकता।

राधारानी बोली, 'आपने उस भिखारिन की बात कही, मुझे दर्शन देने का कारण आपने नहीं बताया।'

'जिसके गले से लिपटकर रोने की इच्छा हो रही थी, उससे क्या ऐसी बातें कीजाती हैं ? जिसे प्राणेश्वर कहने की इच्छा हो रही हो उससे क्या 'आप', 'महाशय', 'दर्शन दिया' इत्यादि कहकर बातें की जानी चाहियें ?' राधारानी अपने मन में यह सोच रही थी।

अपनी शुष्क बात पर राधारानी पश्चाताप करने लगी। रुक्मणीकुमार अप्रतिभ से होकर बोले, 'वही कहने जा रहा हूं। राधारानी का नाम सुनकर मुझे कुछ आशा हुई थी। मुझे निराशापूर्ण अंधकार में प्रकाश की एक किरण दिखाई दी थी। मैंने सोचा था कि शायद यह वही मेरी राधारानी हो।'

'तुम्हारी राधारानी !' कहकर राधारानी मुख नीचा करके तनिक मुस्कराई।

रुक्मणीकुमार के मन में संदेह हुआ। वह फिर बोले, 'हां मेरी राधारानी। मैंने आठ वर्ष पूर्व उसे एक बार देखा था वह भी भली प्रकार नहीं, परन्तु आज तक भूल नहीं सका हूं। वह मेरी न होती तो मैं उसे आज तक भूल न जाता ?'

'खैर, आपकी ही होगी, मुझे इससे क्या ? आपकी प्रिय वस्तु को मैं अपनी नहीं बना रही हूं।'

रुक्मणीकुमार बोले, 'मैंने इसी आशा से कामाख्या बाबू के ज्येष्ठ पुत्र से राधारानी का परिचय प्राप्त करना चाहा था, परन्तु उन्होंने पूरा परिचय नहीं दिया। उन्होंने केवल यही कहा, 'वह मेरे एक सम्बन्धी की कन्या है।' उनकी इच्छा न देखकर मैंने अधिक पूछना उचित न समझा। मैंने केवल यही पूछा, 'राधारानी ने रुक्मणीकुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की खोज क्यों कराई ? क्या मैं इस खोज का कारण जान सकता हूं ?'

'शायद मैं बता न सकूंगा।' उन्होंने कहा, 'खोज का कारण मैं नहीं जानता। पिताजी जानते थे या मेरी बहिन सम्भवतः कुछ जानती हो। आप उनका पता ज्ञात कर रहे हैं तो मैं अपनी बहिन से पूछ आऊं।'

वह अन्दर जाकर यह पत्र लाये और मुझे देकर बोले, 'बहिन ने कुछ कहा नहीं। केवल यह पत्र देकर कहा है कि आप स्वयं राजपुर चले जायें। वहां जिनका सदाव्रत चलता है, उनसे जाकर भेंट करें।'

वही पत्र लाकर मैंने आपको दे दिया। आपके पास आकर मैंने कोई अपराध तो नहीं किया ? यदि मुझसे अनायास ही कोई अपराध बन पड़ा हो तो क्षमा करें।' रुक्मणीकुमार बोले।

राधारानी बोली, 'अपराध के विषय में मैं नहीं जानती, परन्तु लगता है कि आप भूल से यहां आये हैं। कह नहीं सकती कि आपकी राधारानी को मैं पहिचानती हूं या नहीं। सम्भवतः उस राधारानी की सब बातें सुनकर मैं उसके विषय में कुछ बता सकूं। हो सकता है मैं उसकी कोई सूचना आपको दे सकूं। क्या आप उसके विषय में कुछ और जानकारी दे सकेंगे ?'

रुक्मणीकुमार ने तब उस रात्रि की बातें सविस्तार कहकर सुनाईं। केवल अपने दिये गये धन की बात नहीं कही।

क्षमा कीजिये, आपको राधारानी के विषय में कुछ बताने का साहस नहीं हो रहा। आप दयावान व्यक्ति प्रतीत नहीं होते। आप यदि दयावान होते तो आप उस भिखारिन की उस दीन अवस्था में अवश्य कुछ सहायता करते। उसकी इतनी दीन दशा देखकर भी आपको उस पर दया नहीं आई ओर आपने उसकी कोई सहायता नहीं की।'

रुक्मणीकुमार बोले, 'कुछ विशेष सहायता तो वास्तव में मैं नहीं कर सका। मैं भी उस दिन मेला देखने आया था। आंधी-पानी में पैदल जा रहा था। उस समय मेरे पास जो कुछ था, वह मैंने उसे दे दिया, परन्तु वह कुछ विशेष नहीं था। दूसरे दिन मेरा उसकी खोज खबर लेने का विचार था, परन्तु, उसी रात्रि को पिताजी की रुग्णता की सूचना प्राप्त कर मुझे काशी जाना पड़ा। पिताजी की रुग्णता में मुझे काशी से लौटने में एक वर्ष से भी अधिक लग गया। लौटने पर मैंने राधारानी की खोज की, परन्तु कोई सूचना न मिल सकी। किसी लड़की के विषय में किसी से स्पष्ट पूछने में कठिनाई थी।'

'उस रात्रि को आंधी-पानी के कारण आपको उसकी ही झोंपड़ी में आश्रय लेना पड़ा होगा ? आप वहां कितनी देर ठहरे ?'

'मैं वहां बहुत कम समय ठहरा। मैंने राधारानी को जो दिया था, वह उसे देखने के लिये दीपक जलाने अन्दर गई। उसी समय मैं उसके लिये कुछ कपड़ा खरीदने चला गया।' रुक्मणीकुमार बोले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'उसे और क्या दिया आपने ?' राधारानी ने पूछा।

'मेरे पास कुछ था ही नहीं उस समय। एक नोट था, वही मैं वहां डाल आया।' रुक्मणीकुमार ने कहा।

'इस प्रकार नोट डाल आना तो उचित नहीं था। उन लोगों ने सोचा होगा कि आपका नोट गिर पड़ा है।' राधारानी ने कहा।

'मैंने उस पर पेन्सिल से राधारानी और अपना नाम लिख दिया था। कहीं उसी रुक्मणीकुमार की खोज न हो रही हो, इस आशा से मैंने यह विज्ञापन संभाल कर रख लिया था।'

'तभी तो कह रही हूं कि आप दयावान प्रतीत नहीं होते। जो आपके लिए...।' कहते-कहते राधारानी की आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे। रुक्मणीकुमार की ओर से मुख पर आंचल खींचकर राधारानी कमरे से बाहर चली गई।

राधारानी ने बाहर जाकर मुंह धोया और सोचने लगी, 'यह वही रुक्मणीकुमार हैं और मैं वही राधारानी हूं। दोनों ने एक-दूसरे को अन्त में पा ही लिया। अब क्या हो ? मैं अपने राधारानी होने का विश्वास तो इन्हें दिला सकती हूं, परन्तु उसके पश्चात ? इनकी जाति मुझे ज्ञात नहीं है। खैर, जाति के न हुए तो प्राणों का चिर बन्धन न हो सकेगा। तब अधिक बातें करने से क्या लाभ ? न हो विवाह, मैं इनका नाम जपकर ही जीवन व्यतीत करूंगी। इतने दिन जब इनका नाम जपकर व्यतीत कर दिये तो शेष जीवन भी बीत जायेगा।' सोचते-सोचते राधारानी के नथने फूल उठे, ओंठ फड़कने लगे और आंखों से आंसू गिरने लगे। वह फिर सोचने लगी, 'यह मेरी जाति के भी हो सकते हैं, परन्तु पर्याप्त आयु हो चुकी है। यह कुआरे ही हों, इसकी भी क्या सम्भावना है ? विवाहित हुए तो क्या होगा ? नाम जपकर जीवन काट दूंगी, परन्तु सौत नहीं बनूंगी। अब क्या करूं ? जाति पूछकर भी क्या होगा, परन्तु राधारानी का परिचय तो दे ही दूं और यह कौन हैं, यह भी जान लूं। क्या इसका नाम जपकर ही जीवन बिताना होगा, यह भी समझ लूं और तब इन्हें विदा करके रोने बैठूं। वसन्त ने बिना समझे बूझे यह सब क्या कर दिया ? ज्ञात नहीं इस जीवन-मन्थन से अमृत प्राप्त होगा या विष। कुछ भी सही, परिचय तो दूं।' यह विचार करके राधारानी तौलिये से मुख पौंछकर रुक्मणीकुमार का दिया हुआ नोट निकालकर लाई। नोट आंचल में बांधकर उसने सोचा, 'यदि मेरे मन की बात पूरी हुई, तो शेष बातें कौन करेगा ?' यह सोचकर वह स्वयं ही हंसती-हंसती लोट-पोट हो गई। 'मैं तो कर नहीं सकूंगी। वसन्त को बुला लेती तो अच्छा रहता। दो दिन के लिये इन्हें यहीं रोककर वसन्त को बुला भेजूंगी, परन्तु यह यदि दो दिन ठहरने के लिये उद्यत न हुए तब ? इन्हें कोई काम हुआ तो क्या होगा ?'

राधारानी बहुत देर तक इसी प्रकार सोचती रही। उसके मन में विविध प्रकार के प्रश्न उठते रहे। वह अपने मन में प्रश्न उठाती और स्वयं ही उनका उत्तर देकर समाधान करती रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5

राधारानी मुस्कुराती हुई धीरे-धीरे फिर रुक्मणीकुमार के निकट जाकर कुर्सी पर बैठ गई।

रुक्मणीकुमार बोले 'आपने न तो मुझे विदा किया और न ही मेरे प्रश्न का कोई उत्तर दिया। मैं इस समय आपके उत्तर के लिए ठहरा हुआ हूं।'

'आप राधारानी के लिए आये हैं ना ? मुझे भूली नहीं है आपकी बात। इस घर में एक राधारानी रहती है, परन्तु वह आपसे मिलेगी या नहीं, मैं यही ज्ञात करने अन्दर गई थी।' राधारानी बोली।

'उसने क्या उत्तर दिया ?' रुक्मणीकुमार ने पूछा।

राधारानी ने हंसकर अपने पैरों की ओर देखा और फिर कोने में रखी एक प्रस्तर-मूर्ति की ओर देखकर बोली, 'आपने कहा था कि रुक्मणीकुमार आपका वास्तविक नाम नहीं है। तो क्या मैं राधारानी के आराध्यदेव का वास्तविक नाम जान सकती हूं ?'

'आराध्यदेव किसने कहा ?' रुक्मणीकुमार ने पूछा।

राधारानी बिना कुछ सोचे ही ये शब्द उच्चारण कर गई। अब वह तनिक संभलकर बोली, 'नाम ऐसे ही पूछा जाता है ?'

'मेरा नाम देवेन्द्रनारायण राय है।' रुक्मणीकुमार बोले।

राधारानी ने मन-ही-मन हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और बोली, 'मैंने राजा देवेन्द्रनारायण का नाम पहिले भी सुना है।'

'राजा नहीं, मुझे कुमार कहना पर्याप्त है।'

'क्या मैं आपसे आज अपने यहां आतिथ्य ग्रहण करने की प्रार्थना कर सकती हूं ?' राधारानी बोली।

'यह बाद की बात है। पहिले आप यह बताइए कि राधारानी कहां है ?'

'यह उसने भोज के पश्चात् बताने को कहा है।'

'मन दुःखी रहने पर भोजन अच्छा नहीं लगेगा।'

'राधारानी के लिए आपके हृदय में इतना दुःख ? आखिर यह क्या बात है ?' राधारानी ने पूछा।

'यह तो मैं स्वयं भी नहीं जानता। इतना अवश्य जानता हूं कि मैं यह दुःख आठ वर्ष से इस हृदय में लिए फिर रहा हूं।'

राधारानी को परिचय देने में संकोच हो रहा था। वह बोली, 'क्या आप बता सकते हैं कि आप राधारानी से किस लिए भेंट करना चाहते हैं ?'

'मैं उसके एक बार दर्शन करना चाहता हूं।'

'क्या आप उसके केवल एक बार दर्शन करने के लिए ही आठ वर्ष से इतने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यग्र हैं ?' राधारानी ने पूछा।

'संसार में सभी प्रकार के मनुष्य होते हैं।'

'अच्छा भोजन के पश्चात् मैं आपको राधारानी को दिखा दूंगी। यह जो बड़ा आइना सामने है, इसी में, प्रत्यक्ष नहीं।' राधारानी मुस्कुराकर बोली।

'क्यों, प्रत्यक्ष देखने में क्या आपत्ति है ? मैं जिसके लिए आठ वर्ष से अधीर हूं, क्या उसके दर्शन भी न पा सकूंगा ?'

राधारानी बोली, 'बात कुछ समझ में नहीं आई। आपने उसे आठ वर्ष पूर्व देखा था, तब उसकी आयु कितनी थी ?'

'ग्यारह वर्ष।' रुक्मणीकुमार बोले।'

'ग्यारह वर्ष की बच्ची पर इतना अनुराग कैसे हुआ ?'

'क्या नहीं हो सकता ?' रुक्मणीकुमार ने पूछा।

'मैंने नहीं सुना।' राधारानी बोली।

'तब कौतूहल ही समझ लीजिए इसे।' रुक्मणीकुमार ने कहा।

'वह कैसे ?' राधारानी ने पूछा।

'केवल देखने की इच्छा मात्र।' रुक्मणीकुमार ने कहा।

'तो दिखा दूंगी इस आइने में। आप बाहर ही रहिये।'

'क्यों, साक्षात् देखने में क्या आपत्ति है ?'

'भले घर की कन्या है।' राधारानी बोली।

'आप भी तो भले घर की कन्या हैं ?'

'मेरी बात जाने दीजिए। मुझे अपनी सम्पत्ति का प्रबन्ध स्वयं करना होता है। इसलिए मेरा सबके सामने जाए बिना काम नहीं चलता। मैं स्वतन्त्र हूं। वह अपने पति के आधीन है। बिना पति की आज्ञा...।'

'पति ?' रुक्मणीकुमार स्तब्ध रह गए।

'हां, इतना आश्चर्य क्यों ?'

'क्या उसका विवाह हो गया ?' उन्होंने पूछा।

'क्या हिन्दू-कन्या उन्नीस वर्ष तक अविवाहित रह सकती है ?'

देवेनद्रनारायण माथे पर हाथ रखकर बैठ गए। राधारानी ने पूछा, 'क्यों, क्या आप उससे विवाह करना चाहते थे ?'

'मनुष्य क्या नहीं चाह सकता ?' उन्होंने कहा।

'क्या आपकी यह इच्छा रानी जी को भी ज्ञात है ?'

'मेरी कोई रानी जी नहीं है। राधारानी से भेंट होने से पहिले ही मेरी पत्नी का स्वर्गवास हो गया था।' वह बोले।

राधारानी ने मन में कहा, 'प्रभु, थोड़ी देर मेरा साहस और बना रहे।' वह बोली,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'खैर, अब तो आपने सुन ही लिया कि वह दूसरे की हो चुकी है। क्या अब भी आप उसे देखना चाहते हैं ?'

'एक बार अवश्य देखना चाहता हूं।'

'क्या यह आपके लिए उचित होगा ?' राधारानी बोली।

'राधारानी ने मेरी खोज क्यों की थी, मैं यह जानना चाहता हूं।'

'आपने उसे जो कुछ दिया था उसे लौटाने के लिए। क्या आप वह वापस लेंगे?'

देवेन्द्रनारायण हंसकर बोले, 'जो दिया था वही पाऊं, तो अवश्य ले सकता हूं।'

'आपने क्या-क्या दिया था ?' राधारानी ने पूछा।

'एक नोट।' रुक्मणीकुमार बोले।

'यह लीजिए' यह कहकर राधारानी ने एक नोट उन्हें दिया। देवेन्द्रनारायण ने देखा, वही नोट था। उस पर उनके हाथ का लिखा राधारानी का नाम था। उन्होंने पूछा, 'क्या राधारानी के पति ने यह नोट देखा है ?'

'राधारानी अभी कुंआरी है। मैंने पति वाली बात आपसे झूठ कही थी।' राधारानी बोली।

'खैर, सब कुछ तो वापस नहीं मिला।' रुक्मणीकुमार बोले।

'अब क्या शेष रहा ?' राधारानी ने पूछा।

'एक रुपया और दो धोतियां।' रुक्मणीकुमार बोले।

'सब ऋण यदि अभी चुका जाएगा तो आप बिना भोजन किए ही चले जाएंगे। ऋण वसूल करके कौन महाजन ठहरता है ? शेष ऋण भोजन के उपरान्त राधारानी स्वयं चुकाएगी।' राधारानी बोली।

'परन्तु मेरा तो अभी बहुत कुछ शेष है।' उन्होंने कहा।

'और क्या है ?' राधारानी ने पूछा।

'मैंने राधारानी को अपना हृदय भी दिया था। वह भी तो मुझे वापस मिलना चाहिए।' रुक्मणीकुमार बोले।

'वह आप पा चुके हैं। अपने हृदय के बदले में राधारानी का हृदय आप बहुत पहिले ही प्राप्त कर चुके हैं। वह ऋण कभी का चुकता हो चुका।'

'उसका सूद तो कुछ नहीं मिला।' रुक्मणीकुमार बोले।

'वह भी मिल जाएगा।' राधारानी ने मुस्कराकर कहा।

'क्या मिलेगा ?' रुक्मणीकुमार ने पूछा।

'शुभ लग्न में वह अधम नारी अपना शरीर आपको देकर ऋण-मुक्त हो जाएगी।' यह कहकर राधारानी कमरे से बाहर चली गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6

राधारानी की आज्ञा से दीवानजी ने राजा देवेन्द्रनारायण की सुविधा का सब प्रबन्ध कर दिया। भोजन के समय राधारानी स्वयं उपस्थित थी। भोजन के पश्चात् राधारानी बोली, 'वह एक रुपया और दो धोतियां अब नहीं हैं। धोतियां फट चुकी हैं और रुपया खर्च हो गया उन्हें तो लौटा नहीं सकती। उनके बदले में यह स्वीकार कीजिए।' यह कहकर राधारानी ने बहुमूल्य हीरों का एक हार लाकर राजा देवेन्द्र नारायण के गले में पहिनाना चाहा, परन्तु वह उसे रोककर बोले, 'यदि ऐसा ऋण चुकाना है तो अपने गले की माला मुझे दो, मैं यही लूंगा।'

राधारानी ने हंसते हुए अपने गले का हार देवेन्द्र नारायण के गले में डाल दिया। देवेन्द्र नारायण बोले, 'ऋणी हो गया।'

'वह कैसे ?' राधारानी ने पूछा।

'उस जंगली फूलों की माला का मूल्य मुझे वापस मिल गया। अब मुझे वह माला लौटा देनी चाहिए, परन्तु वह माला लौटाने के लिए मेरे पास है कहां ?

राधारानी हंस पड़ी। देवेन्द्र नारायण राय जो मोतियों की माला पहने हुए थे वह वही राधारानी को पहिनाकर बोले, 'लो, वह भी लौटा दिया।'

दोनों ने एकान्त में बैठकर अपने-अपने मन की बात कहीं। देवेन्द्र नारायण का विस्मय दूर करने के लिये मेले की यात्रा के पश्चात् जो कुछ हुआ, वह सब राधारानी ने सुना दिया। पितामह की मृत्यु के पश्चात् अपनी निर्धनता, मां की मृत्यु, इत्यादि का सब वृत्तांत राधारानी ने हंसते-हंसते सुनाकर अपने दिल का भार हलका किया। गर्मी में पर्वत जैसे वर्षा होने पर शीतल हो जाता है, उसी प्रकार देवेन्द्र नारायण शीतल हुए। उन्होंने पूछा, 'तुम्हारा तो अन्य कोई सम्बन्धी नहीं है, फिर इस घर में इतने लोग कौन हैं ?'

'दुःख के समय मेरा कोई नहीं था। अब बहुत से सम्बन्धी एकत्रित हो गए हैं। मैं अकेली रहती भी कैसे ? अतः इन्हें रखा हुआ है।'

दूसरे दिन वसन्त और कामाख्या बाबू के पुत्र आदि सब आ पहुंचे। देवेन्द्र नारायणजी के मित्र और नौकर-चाकर भी वहां आ गए।

राधारानी वसन्त से बोली, 'वसन्त ! तुम्हारी बुद्धि भी विचित्र है।'

'क्यों ?' वसन्त ने हंसकर पूछा।

वसन्त राधारानी का पूरा वृत्तांत सुनकर बोली, 'हां क्रुद्ध होने की ही तो बात थी। यही ना कि सूद सहित अपना ऋण वसूल करने वाले साहूकार को तुम्हारा घर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखा दिया। इस पर क्रुद्ध होना उचित ही है।'

राधारानी बोली, 'इसीलिए मैं तेरा गला बांध रही हूं।' यह कहकर राधारानी ने वह हीरे वाला हार, जो देवेन्द्र नारायण को पहिना रही थी, वसन्त को पहिना दिया।

शुभ लग्न में राधारानी और देवेन्द्र नारायण का विवाह विधिवत सम्पन्न हुआ।

■■■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंकिम ग्रंथावली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृणालिनी

1

वर्षा-ऋतु थी और प्रयाग का संगम। सुन्दर शोभा थी, बादल नहीं थे। सूर्य अस्त हो गया था। वर्षा के पानी की बाढ़ से गंगा-यमुना पूर्ण थीं। उनका यौवन उभार पर था। दोनों एक दूसरी का आलिंगन कर रही थीं। सुन्दर लहरें किनारों से टकरा रही थीं।

एक छोटी-सी नाव पर दो आदमी बैठे थे। नाव यमुना के बहाव को काटकर घाट पर आ लगी थी। एक आदमी नाव पर रहा, एक नीचे उतरा। सुन्दर युवक था। जो नीचे उतरा बलिष्ठ बदन का योद्धा प्रतीत होता था। उसके सिर पर साफा, बदन पर कवच, हाथ में धनुष-बाण, पीठ पर तूणीर और पैरों में जूते थे। वह घाट पर बनी एक छोटी-सी कुटी में चला गया।

कुटी में एक ब्राह्मण आसन पर बैठा पूजा कर रहा था। ब्राह्मण वृद्ध था। शरीर सूखा था और सिर के बाल सफेद थे। ब्राह्मण की मुद्रा गम्भीर थी और दृष्टि कठोर। आगन्तुक को देखते ही उसके चेहरे पर प्रसन्नता खिल उठी। युवक ने ब्राह्मण को प्रणाम किया और सामने खड़ा हो गया। ब्राह्मण आशीर्वाद देकर बोला, 'पुत्र हेमचन्द्र! मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा में था।'

'अपराध क्षमा हो, दिल्ली में काम न हुआ। यवनों से सतर्क होकर आना पड़ा। इसीलिए आने में देर हो गई।'

'दिल्ली का समाचार मिला है। बख्तियार खिलजी को हाथी कुचल देता तो अच्छा ही रहता। देवता का शत्रु पशु द्वारा मारा जाता। तुम उसे बचाने क्यों गए थे ?'

'उसका अपने हाथों से संहार करने के लिए। वह मेरे पिता का शत्रु है। उसका वध मुझे ही करना है।'

'फिर तुमने बख्तियार को न मारकर हाथी को क्यों मारा ?'

'क्या मैं बिना युद्ध किए शत्रु को मारता ? मैं उसे मारकर मगध का उद्धार करूंगा, नहीं तो मेरे नाम पर कलंक लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण ने कुछ चिढ़कर कहा, 'यह सब तो हो गया। तुमने देर क्यों की ? तुम मथुरा गए थे क्या ?'

हेमचन्द्र ने सिर झुका लिया। ब्राह्मण बोला, 'समझा। तुम वहां गए थे। तुमने मेरा कहा नहीं माना। जिसके पास गए थे, उससे भेंट हुई क्या ?'

'भेंट नहीं हुई। यह सब आपकी ही दया है। उसे आपने कहां भेज दिया है ?'

'यह तुमने कैसे जाना कि मैंने उसे भेजा है ?'

'आपके अतिरिक्त यह कौन करेगा ? मुझसे उसकी दाई ने कहा था कि वह मेरी अंगूठी देखकर कहीं चली गई। उसका कहीं पता नहीं है। मेरी अंगूठी आपने मांगी थी। मैंने अंगूठी न देकर रत्न देना चाहा था, परन्तु आपने वह नहीं लिया। मुझे सन्देह हुआ, परन्तु मेरी ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो आपको मना कर सकूं। इसीलिए मैंने अंगूठी दे दी थी। मेरी इस भूल का आपने मुझे उचित दण्ड दिया।'

'इसके लिए मुझ पर क्रोध न करना। यह देवता का कार्य है। तुम न करते तो कौन करता ? यवनों को तुम न भगाओगे तो और कौन भगाएगा ? तुम्हारा इसी पर ध्यान रहना चाहिए। इस समय तुम्हारे मन पर मृणालिनी का अधिकार उचित नहीं ? यवनों के आक्रमण के समय यदि हेमचन्द मगध में होता तो क्या मगध विजित होता ? क्या तुम फिर उस मृणालिनी में लिप्त हो जाना चाहते हो ? माधवाचार्य के रहते अब यह नहीं होगा। मृणालिनी को मैंने ऐसे स्थान पर रखा है जहां तुम उसे न पा सको।'

'तब अपने देव-कार्य को आप स्वयं ही संभालें।'

'यह तुम्हारी देव-भक्ति है ? अच्छा, यही होगा। देवता को अपने कार्य के लिए तुम्हारी आवश्यकता नहीं है, परन्तु यदि तुम कायर नहीं हो तो शत्रु का शासन कैसे सहन कर सकोगे ? राजवंश में जन्म लेकर तुम राज्योद्धार से पृथक् नहीं रह सकते।'

'मृणालिनी के बिना मैं कुछ भी नहीं कर सकता महाराज ?'

'नीच ! मैंने वृथा ही देवाराधना के बारह वर्ष नष्ट करके तुझे सारी विद्या सिखाई?'

माधवाचार्य का हृदय अत्यन्त दुःखी था। वह गम्भीर वाणी में बोले, 'हेमचन्द्र! धैर्य से काम लो। मैं तुम्हें बताता हूं कि मृणालिनी कहां है। तुम्हारा विवाह भी उसी से होगा, परन्तु इस समय तुम वह कार्य करो जो मैं कहता हूं।'

'जब तक मुझे यह ज्ञात न होगा कि मृणालिनी कहां है, तब तक मेरे लिए आपकी आज्ञा-पालन करना कठिन है।'

'यदि मृणालिनी मर चुकी हो तब ?'

हेमचन्द्र के नेत्रों से ज्वाला बरसने लगी। वह बोले, 'तब यह काम आपने किया होगा ?'

'मैं मानता हूं कि यह कार्य मैंने ही किया है। मैं देव-कार्य में बाधा सहन नहीं कर सकता।'

हेमचन्द्र का हृदय भारी हो उठा। वह कांपते हुए हाथों में धनुष-बाण लेकर बोले,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मृणालिनी के वध-कर्त्ता को मैं सहन नहीं कर सकता। मैं गुरु-हत्या और ब्रह्महत्या, दोनों पाप करने को उद्यत हूं।'

माधवाचार्य हंसकर बोले, 'गुरु-हत्या और ब्रह्महत्या तुम कर सकते हो, परन्तु स्त्री-हत्या सहन नहीं कर सकते। अभी तुम्हें यह पाप नहीं करना होगा। मृणालिनी जीवित है। जाओ उसे ढूंढ़ लाओ और मेरे आश्रम से बाहर निकल जाओ। मेरे आश्रम को अपवित्र न करो। मुझे तुमसे अब कोई आशा नहीं है।' इतना कहकर माधवाचार्य फिर पूजा-पाठ में लग गए।

हेमचन्द्र आश्रम छोड़कर घाट पर अपनी नाव में जा बैठे। वह दूसरे आदमी से बोले, 'दिग्विजय ! नाव कहीं अन्यत्र ले चलो।'

'कहां चलना है ?'

'जहां उचित समझो। यमालय चलो।'

दिग्विजय अस्फुट स्वर में बोला, 'वह तो थोड़ी ही दूर है।' कहकर उसने नाव छोड़ दी।

हेमचन्द बोले, 'दूर हो तो न चलो।'

दिग्विजय नाव को फिर घाट पर ले आया। हेमचन्द नाव से उतरकर फिर माधवाचार्य के आश्रम में पहुंचे।

माधवाचार्य ने पूछा, 'फिर क्यों आए तुम ?'

'आप जो कहेंगे, मैं वही करूंगा। केवल इतना बता दीजिए कि इस समय मृणालिनी कहां है ?'

'तुम सत्यवादी हो। तुमने मेरी आज्ञा-पालन करना स्वीकार किया है। इससे मैं सन्तुष्ट हुआ। वह गौडनगर में मेरे एक शिष्य के यहां है। तुम्हें भी उसी ओर जाना है, परन्तु तुम उससे भेंट न कर सकोगे। शिष्य को मेरी आज्ञा है कि मृणालिनी किसी पुरुष से न मिलने पाए।'

'भेंट न सही, मैं इतनी सूचना से ही सन्तुष्ट हुआ। अब आज्ञा कीजिए मुझे क्या करना है ?'

'तुमने दिल्ली जाकर क्या किया ? क्या कोई विशेष सूचना प्राप्त की तुमने ?'

'यवन बंग-विजय की बात सोच रहे हैं। बख्तियार खिलजी गौड़ की ओर बढ़ेगा।'

माधवाचार्य सहर्ष बोले, 'तब तो सम्भवतः विधाता भी इस देश के प्रति सदय प्रतीत होते हैं।'

हेमचन्द्र ने बड़े ध्यान से माधवाचार्य की ओर देखा और आज्ञा की प्रतीक्षा की। माधवाचार्य बोले, 'मेरा विचार सही निकला। मैं भी यही सोच रहा था। मेरी गणना ठीक निकली।'

'वह कैसे गुरुदेव ?'

'गणना बताती है कि यवन-राज्य का ध्वंस बंग-प्रदेश से होना आरम्भ होगा।'

'यह संभव है, परन्तु कितने दिन में और कौन नरेश इस कार्य को करेगा ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इस पर भी मैंने विचार किया है। पश्चिम की वणिक्-शक्ति से यवन-राज्य का ध्वंस होगा।'

'तब तो मेरी विजय की संभावना नहीं रही महाराज ! मैं तो वणिक् नहीं हूं।'

'हो क्यों नहीं ? मथुरा में तुमने और किया ही क्या था ?'

'उस समय तो मैं वणिक् ही कहलाता था।'

'तुम्हीं पश्चिम के वणिक् हो। तुम गौड़-राज्य में जाकर शस्त्र धारण करो। तुम्हारे द्वारा यवनों का ध्वंस होगा। प्रतिज्ञा करो कि तुम कल गौड़-यात्रा करोगे। यवनों को वहां पराजित करके ही तुम मृणालिनी से भेंट करोगे।'

हेमचन्द्र लम्बी श्वांस लेकर बोले, 'यह मैं स्वीकार करता हूं, परन्तु मैं अकेला युद्ध कैसे कर सकूंगा ?'

'क्या गौडेश्वर के पास सेना नहीं है ?'

'हो सकती है, परन्तु वह मेरे आधीन क्यों होंगे ?'

'तुम पहले वहां जाओ। वहीं मुझसे तुम्हारी भेंट होगी। मैं वहां की स्थिति को स्वंय आकर देखूंगा। गौडेश्वर से मेरा पर्याप्त पुराना परिचय है।'

'जो आज्ञा' कहकर हेमचन्द्र विदा हुए।

'जाओ पुत्र ! पग-पग पर विजय-लाभ करो।'

2

अन्तःपुर में दो युवतियां दीवार पर चित्र बना रही थीं।

एक बोली, 'मृणालिनी ! उत्तर क्यों नहीं देतीं ? मैं राजपुत्र की बातें सुनना चाहती हूं ? तुम अपने सुख की बात कहो, मैं आनन्दपूर्वक सुनूंगी।'

'उन्हें सुनते-सुनते मैं स्वयं भस्म हो रही हूं, तुम्हें क्या सुनाऊं ?'

'तुम किससे सुनती हो ? क्या अपने पति से सुनती हो ?'

'तनिक देखो तो मैंने यह कमल कैसा बनाया है।'

'अच्छा बनकर भी कुछ नहीं बना। पानी से कमल बहुत दूर है। सरोवर में कमल की नाल जल में लगी रहती है। चित्र में भी वैसा ही बनाओ। कमल के पत्ते भी बनाओ, नहीं तो कमल की शोभा न रहेगी। हो सके तो इसके पास एक राजहंस भी बना दो।'

'हंस का यहां क्या बनेगा ?'

'तुम्हारे पति की भांति वह कमल से बातें करेगा।'

'मैं हंस न बनाऊंगी। सुख की बातें सुनते-सुनते मेरे मन में जलन होने लगती है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तब खंजन पक्षी बनाओ।'

'खंजन भी नहीं बनाऊंगी। खंजन उड़ जाएगा। वह मृणालिनी तो है नहीं, जिसे बांधकर रखा जा सके।'

'यदि खंजन ऐसा ही दुष्ट है तो मृणालिनी की तरह उसे भी अपने किसी पिंजरे में बन्द कर लो।'

'मृणालिनी को पिंजरे में हमने बन्द नहीं किया है। वह तो स्वयं आकर पिंजरे में बन्द हुई है।'

'क्या माधवाचार्य के प्रभाव से बन्द नहीं हुई है वह ?'

'सखी ! तुमने माधवाचार्य का वह निष्ठुर कार्य नहीं बताया जो तुमने बताने को कहा था। तुम माधवाचार्य के कहने से अपना घर छोड़कर यहां क्यों आ गईं?'

वह युवती मौन रही। फिर बोली, 'माधवाचार्य को मैं पहचानती नहीं थी। मैं स्वेच्छा से भी यहां नहीं आई हूं। एक दिन मेरी दासी ने मुझे अंगूठी देकर कहा, 'अंगूठी देने वाले बाग में हैं।' वह उनकी अंगूठी थी। जब वह मुझसे मिलने आते थे तो उस अंगूठी को भेज देते थे।'

'तो तुम कुमारी होकर भी छिपकर प्रणय करती थीं ?'

'वह मेरे पति हैं। उनके अतिरिक्त अन्य कोई मेरा पति नहीं हो सकता।'

'परन्तु अभी तो वह पति नहीं हैं। बुरा न मानना सखी ! मैं तुमसे बहन की तरह बातें कर रही हूं।'

मृणालिनी ने सिर झुकाकर आंखों के आंसू पौंछे। फिर बोली, 'मणिमालिनी ! यहां मेरा अपनां कौन है ? कौन मुझे अच्छी बातें सिखाएगा ? जो लोग मुझे प्रेम करते थे, क्या पता फिर उनसे कभी भेंट होगी या नहीं ? तुम मेरी सखी हो। तुम मुझसे प्रेम न करोगी तो और कौन करने वाला है ?'

'मैं तुमसे प्रेम करती हूं, परन्तु जब यह बात याद आती है तो समझती हूं कि...।'

'सखी ! तुम्हारे मन की बात मैं अधिक सहन नहीं कर सकती। यदि तुम शपथ लो कि जो मैं कहूंगी, उसे किसी से न कहोगी तो मैं तुम्हें सब बातें बता दूंगी। तब तुम मुझसे अवश्य प्रेम करोगी।'

'मैं शपथ लेती हूं।'

'तुमने चोटी में देवता का फूल लगा रखा है। उसे छूकर शपथ ग्रहण करो, तब कहूंगी।'

मणिमालिनी ने वैसा ही किया।

मृणालिनी ने मणिमालिनी के कान में कुछ कहा। उसे सुनकर मणिमालिनी बहुत प्रसन्न हुई। उसके मन की शंका जाती रही।

मणिमालिनी ने पूछा, 'फिर तुम माधवाचार्य के साथ यहां किस तरह आईं ?'

'मैं उनकी अंगूठी देखकर बाग में गई। दूती बोली, 'राज-पुत्र नाव पर हैं। नाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदी के पार है।' मैंने किनारे पर आने पर देखा तो वहां एक नाव लगी थी और किनारे पर एक पुरुष खड़ा था। मैं समझी राज-पुत्र खड़े हैं। मैं नाव के पास पहुंच गई। उस व्यक्ति ने मेरा हाथ पकड़कर मुझे नाव पर चढ़ा लिया। मल्लाहों ने नाव खोल दी। मैं हाथ के स्पर्श से समझ गई कि वह वह नहीं थे।'

'क्या तुम चिल्लाईं ?'

'नहीं। एक बार सोचा, परन्तु आवाज नहीं निकली।'

'मैं होती तो पानी में कूद पड़ती।'

'मैं उन्हें बिना देखे क्यों मर जाती।'

'फिर आदमी ने मुझे मां कहा। बोला, 'मैं तुम्हें माता कहता हूं। मैं तुम्हारा पुत्र हूं। मुझसे कोई आशंका न करना। मेरा नाम माधवाचार्य है। मैं हेमचन्द्र का गुरु हूं। भारतवर्ष के अनेकों राजाओं के साथ मेरा यही सम्बन्ध है। मैं देव-कार्य में लगा हूं। उसमें हेमचन्द्र मेरा सहायक है और तुम उसमें बाधा हो।'

'मैं बाधा हूं।'

'हां। यवनों का दमन और हिन्दू-राज्य का फिर से उद्धार केवल हेमचन्द्र ही कर सकता है। हेमचन्द्र लापरवाही करेगा तो वह भी यह कार्य सिद्ध न कर सकेगा। वह तुम्हारे अन्दर लिप्त रहकर यवनों का विनाश नहीं कर सकता ?'

मैं समझ गई कि मेरे विनाश से ही यवनों का विनाश सम्भव है। मैंने पूछा, 'क्या आपके शिष्य ने यह अंगूठी भेजकर आपसे मेरी हत्या करने को कहा है ?'

'तुमने यह बात इस वृद्ध से कैसे कही ?' वह बोले।

मुझे बहुत क्रोध आया। मेरा बदन जल रहा था। माधवाचार्य मुझे बहुत बात करने वाली समझकर बोले, 'हेमचन्द्र को ज्ञात नहीं है कि मैं तुम्हें इस प्रकार उससे पृथक् कर रहा हूं।'

तब मैंने निश्चय किया कि उनके एक बार दर्शन किए बिना मैं इस जीवन का त्याग न करूंगी। माधवाचार्य बोले, 'तुम्हें प्राण त्याग नहीं करना होगा। कुछ दिन हेमचन्द्र का त्याग करना होगा। इसी में उसका मंगल है। क्या तुम नहीं चाहतीं कि वह राजेश्वर हो और तुम्हें राजमहिषी बनाये ? तुम्हारे प्रणय में वह कापुरुष बन गया है। उसकी कायरता को दूर करना ही मेरा लक्ष्य है ?'

मैं बोली, 'यदि उनका मुझसे मिलना उचित नहीं है तो वह मुझसे भेंट न करेंगे।'

माधवाचार्य बोले, 'बालक और वृद्ध की विचारधारा एक समान नहीं होती। हेमचन्द्र की अपेक्षा हम परिणाम को अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं। तुम चाहो या न चाहो, मैं अपना संकल्प पूरा करूंगा। मैं तुम्हें दूसरे देश में ले जाऊंगा। मैं तुम्हें गौड़-देश में एक ब्राह्मण के घर रखूंगा। वह तुम्हें अपनी कन्या के समान रखेंगे। एक वर्ष पश्चात् तुम्हें तुम्हारे पिता के पास पहुंचा दूंगा और तब हेमचन्द्र से तुम्हारा विवाह सम्पन्न होगा। इसे सत्य मानना।'

'यह सुनकर या लाचारी से समझो, मुझे मौन हो जाना पड़ा। मैं कुछ न बोल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकी।'

उसी समय एक भिखारिणी एक गाना गाती हुई वहां आई। वह बहुत ही मधुर स्वर में गा रही थी।

मृणालिनी बोली, 'सखी ! उसे घर में बुला लो।'

मणिमालिनी गाले वाली को बुलाने चली गई और थोड़ी ही देर पश्चात् वह उसे अपने साथ बुलाकर ले आई।

मृणालिनी उससे बोली, 'तुम्हारा कंठ बहुत मधुर है। तुम फिर गाओ।' उसने मृणालिनी के कहने पर कई गीत गाये।

गीत समाप्त होने पर मृणालिनी बोली, 'यह बहुत अच्छा गाती है। मणिमालिनी, इसे कुछ देना चाहिए ?'

मणिमालिनी उसके लिए कुछ लेने गई। मृणालिनी ने उससे पूछा, 'भिक्षुणी ! तुम्हारा नाम क्या है ?'

'गिरिजाया।'

'तुम्हारा घर कहां है ?'

'मैं इसी नगर में रहती हूं।'

'क्या तुम गाकर ही अपना जीवन चलाती हो ?'

'मैं और कुछ करना नहीं जानती।'

'यह गाना तुमने कहां से सीखा ?'

'एक बनिए ने सिखाया था।'

'वह कहां रहता है ?'

'इसी नगर में रहता है।'

मृणालिनी प्रसन्नता से खिल उठी। वह बोली, 'वह बनिया क्या बेचता है ?'

यह सुनकर गिरिजाया हंसकर बोली, 'वह बनिया केवल बातें बेचता है।'

'यह कैसा व्यवसाय है ? इसमें उसे क्या लाभ होता है ?'

'इसमें प्रेम-लाभ है।'

'तुम्हारे व्यवसाय का महाजन कौन है ?'

'एक बनिया है।'

'अपनी झोली दिखाओ, उसमें क्या है ?'

'मेरे पास दिखाने का नहीं. सुनाने का सामान है।'

'अच्छा सुनाओ।'

गिरिजाया फिर गाने लगी। उसने फिर एक मधुर गीत गाया।

मृणालिनी ने गद्‌गद् स्वर में हंसकर कहा, 'तुमने इस गीत में किस चोर की बात कही ?'

'वह बनिया कहता है कि चोरी का धन लेना ही उसका व्यवसाय है।'

'उससे कहना कि चोरी के इस व्यापार से भला साधुओं की जान कैसे बचेगी?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शायद व्यापारी की भी न बचे।'

'क्यों, व्यापारी की क्यों न बचेगी ?'

फिर गिरिजाया ने एक गीत में मृणाल शब्द उच्चारण किया।

मृणालिनी कोमल स्वर में बोली, 'मृणाल का पता मैं बताती हूं। तुम याद रख सकोगी ?'

'हां, वह कहां है ? बताओ ना !'

जब मृणालिनी गिरिजाया से ये बातें कर रही थी तभी मणिमालिनी के पैरों का स्वर हुआ। मणिमालिनी उसकी सखी थी, फिर भी विश्वास नहीं हुआ कि मणिमालिनी पितृ-प्रतिज्ञा को भंग करके उसकी सहायता करेगी। इसलिए वह गिरिजाया से बोली, 'आज और कोई बात नहीं। बनिये से भेंट करना। कल फिर आना। लेने की कोई सामग्री होगी तो मैं लूंगी।'

गिरिजाया विदा हुई। मृणालिनी ने उसे जो पुरस्कार देना चाहा था, उसे भी वह भूल गई।

गिरिजाया के कुछ पग आगे बढ़ जाने पर मणिमालिनी ने कुछ चावल, केला, एक पुराना वस्त्र और कुछ कौड़ियां उसे दीं। मृणालिनी भी एक पुराना वस्त्र देना चाहती थी। देते समय उसके कान में बोली, 'मुझे भय नहीं है। कल तक राह न देख सकूंगी। तुम रात को इस मकान की उत्तरी दीवार के पास आना। वहीं तुमसे भेंट होगी।

तुम्हारे वणिक् भी साथ आयें तो लेती आना।'

गिरिजाया ने कहा, 'मैं समझ गई। मैं निश्चित आऊंगी।'

मृणालिनी के पास बैठी मणिमालिनी बोली, 'सखी, भिक्षुणी के कान में क्या कह रही थीं ?'

'कुछ नहीं।' कहकर मृणालिनी मुस्कुरा दी।

3

हेमचन्द्र लक्ष्मणावती नगरी में सर्वधन वणिक् के यहां रहते थे। इस समय वह किसी की प्रतीक्षा में थे। जिसकी प्रतीक्षा में थे, वह आई नहीं थी। हेमचन्द्र दिग्विजय से बोले, 'भिक्षुणी अभी तक नहीं आई। तुम तनिक उसे खोजकर लाओ।'

'जो आज्ञा !' कहकर दिग्विजय गिरिजाया की खोज में चल पड़ा। सड़क पर उसकी उससे भेंट हुई !'

'कौन, दिकविजय !'

दिग्विजय चिढ़कर बोला, 'मेरा नाम दिग्विजय है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
'अच्छा, परन्तु आज कौन-सा दिक् जय करने चले हो ?'

'तुम्हारा दिक्।'

'मैं दिक् हूं ? तुम दिक् को भी नहीं जानते।'

'अच्छा अन्धकार ! चलो प्रभु बुला रहे हैं।'

'क्यों, क्या कोई विशेष बात है ?'

'तुम्हारे साथ मेरी शादी करेंगे।'

'क्या तुम्हारा मुंह पीटने को संसार में अन्य कोई नहीं है ?'

'नहीं ! इस कार्य में तुम ही दक्ष हो।'

'मैं तो दूसरों के लिए ही मरती हूं। अच्छा चलो, चलती हूं।'

गिरिजाया दिग्विजय के साथ चली। दिग्विजय गिरिजाया को हेमचन्द्र के पास छोड़कर अन्यत्र कहीं चला गया।

गिरिजाया को देखकर हेमचन्द्र बोले, 'कौन गिरिजाया ! क्या आशा नहीं रही कुछ ?'

'किसकी आशा ? मेरी या आपकी ?'

'मेरी मिटेगी तभी तो तुम्हारी मिटेगी।'

'आपकी आशा क्या कभी मिट सकती है ? सुना है कि राजाओं की आशा कभी नहीं मिटती।'

'परन्तु मेरी तो बहुत साधारण-सी आशा है।'

'मृणालिनी से भेंट होने पर उनसे यही बात कहूंगी।'

हेमचन्द्र उदास मन से बोले, 'क्या आज भी उससे भेंट नहीं हुई ? आज किधर गई थीं तुम ?'

'कितनी ही ओर गई थी, कहां-कहां बताऊं ? अब अन्य कोई बात करिए। इसे छोड़िए।'

'समझ गया, मेरे विधाता ही विमुख हैं। कल फिर खोज में जाना शायद सफलता मिले।'

गिरिजाया प्रणाम करके जाने लगी। हेमचन्द्र ने पूछा, 'गिरिजाया ! आज तुम्हारी आंखें हंस क्यों रही हैं ? क्या आज तुम्हारी किसी से भेंट हुई है ? सच-सच बताओ।'

'कितनी ही औरतों से भेंट हुई। एक तो मारने को दौड़ी। बोली, 'मथुरावासिनी को श्यामसुन्दर याद कर रहे होंगे।'

हेमचन्द्र आप-ही-आप बोले, 'इतनी खोज से भी पता न लगा तो अब सब व्यर्थ है। अब यहां और समय नष्ट नहीं करना चाहिए। 'गिरिजाया ! मैं कल तुम्हारे नगर से विदा लूंगा ?'

'अच्छा' कहकर गिरिजाया ने धीरे-धीरे गाना आरम्भ किया।

हेमचन्द्र बोले, 'यह गाना छोड़ो, कोई दूसरा गाना गाओ।'

गिरिजाया ने दूसरा गाना गया। उसे सुनकर हेमचन्द्र विह्वल हो उठे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यह गाना तुमने कहां सुना गिरिजाया ?' वह बोले।

गिरिजाया हंस पड़ी। हेमचन्द्र आंखों में आंसू भरकर बोले, 'वही मेरी मृणालिनी है जिससे तुमने यह गाना सुना। तुमने उसे कहां देखा ? कब देखा ? कैसी है वह?'

'वह बन्दी-गृह में बन्दिनी है।'

'रूपक छोड़कर मेरी बात का स्पष्ट उत्तर दो कि वह है कहां ?'

'वह इसी नगर में है।'

'यह तो मैं बहुत दिन से जानता हूं। वह इस नगर में है कहां ?'

'हृषीकेश शर्मा के घर में।'

'कितना पास है वह ! यह तो मैंने तुमसे कहा ही था। इतने दिन तक तू क्या करती रही ?'

'वह यहां से बहुत दूर है।'

'बहुत दूर है !'

हेमचन्द्र सक्रोध बोले, 'उपहास न कर। तंग करेगी तो तेरा सिर फोड़ दूंगा।'

'शान्त तो हो। मार्ग जानकर भी क्या वहां जा सकोगे ? मैं आपको अपने साथ ले चलूंगी।'

हेमचन्द्र के मुंह पर प्रसन्नता छा गई। वह बोले, 'मृणालिनी कैसी है गिरिजाया?'

'बीमार नहीं है बस।'

'वह सुख में है या कष्ट में ?'

'गहने हैं, अच्छे वस्त्र हैं, ब्राह्मण-कन्या उसकी सखी है, परन्तु...।'

'उसके मन की भी कुछ बात समझी ?'

'अतल पर खड़ी है।'

'पराए घर में किस प्रकार रहती है ?'

'अशोक-पुष्प की तरह।'

'गिरिजाया ! तुम आयु में छोटी हो, बुद्धि में नहीं।' मृणालिनी ने और क्या कहा था ?'

गिरिजाया ने मृणालिनी की बातचीत सविस्तार कही। फिर कहा, 'यदि आप उन्हें देखना चाहते हैं तो मेरे साथ एक प्रहर रात्रि को चलिए।'

गिरिजाया से बातें करने के बाद हेमचन्द्र बहुत देर तक वहीं टहलते रहे। फिर घर के भीतर चले गए और एक पत्र लाकर गिरिजाया को देकर बोले, 'मुझे उससे मिलने का अभी अधिकार नहीं है। तुम रात को उससे भेंट करना और यह पत्र देना। उससे कहना, 'देवता के प्रसन्न होने पर शीघ्र ही भेंट होगी।'

गिरिजाया के चले जाने के पश्चात् हेमचन्द्र काफी देर तक चिन्तित चटाई पर लेटे रहे। उन्हें नींद आ गई। कुछ देर के पश्चात् उनकी पीठ पर किसी के हाथ का स्पर्श हुआ। उन्होंने देखा, उनके गुरु माधवाचार्य उनके निकट खड़े थे।

माधवाचार्य बोले, 'वत्स ! उठो, परन्तु तुम मुझे विस्मय से क्यों देख रहे हो ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आप यहां कहां से आए ?'

माधवाचार्य कोई उत्तर न देकर बोले, 'तुम अभी तक नव-द्वीप न जाकर यहां राह में ही अटके हुए हो। इससे मैं असन्तुष्ट हूं, परन्तु तुमने जो मृणालिनी का पता पाकर भी अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी, इससे में सन्तुष्ट हुआ। अब यहां विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं है। मृणालिनी के पत्रोत्तर की प्रतीक्षा न करके तुम्हें मेरे साथ नव-द्वीप चलना होगा। नाव तैयार है। अस्त्र-शस्त्रादि उठा लाओ।'

हेमचन्द्र ने निःश्वास त्यागकर कहा, 'कोई हानि नहीं, चलिए।'

हेमचन्द्र ने वणिक् से विदा ली और आचार्य के साथ चल पड़े।

4

गिरिजाया ने अपने निश्चित समय पर मृणालिनी से उसी दिन एक प्रहर रात्रि को हृषीकेश के घर के पास जाकर भेंट की। मृणालिनी ने पूछा, 'हेमचन्द्र कहां हैं?'

'वह नहीं आ सके।'

'वह नहीं आ सके !' मृणालिनी बोली। फिर कुछ देर के लिए चुप रही। मृणालिनी ने पूछा, 'वह क्यों नहीं आए ?'

'मैं नहीं कह सकती। यह पत्र दिया है उन्होंने।' यह कहकर गिरिजाया ने पत्र दिया। मृणालिनी बोली, 'इसे पढ़ूं कैसे ? घर जाकर पढ़ने से मणिमालिनी पर यह रहस्य खुल जाएगा।'

'आप चिन्ता न करें। मैं दीपक लाई हूं। अभी प्रकाश करती हूं।' यह कहकर गिरिजाया ने दीपक जला दिया।

एक पड़ौसी ने दीपक का प्रकाश देख लिया।

मृणालिनी ने पत्र पढ़ा। उसमें लिखा था, 'मृणालिनी ! क्या कहकर मैं तुम्हें पत्र लिखूं ? तुम मेरे कारण पराए घर में कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत कर रही हो। देव के अनुग्रह से तुम्हारा पता पाकर भी तुमसे भेंट न कर सका। मुझे निष्ठुर न समझना। मैं किसी विशेष व्रत से आबद्ध हूं। उस व्रत का पालन न करना देश और देव-द्रोह हैं। इसलिए तुमसे यहां भेंट न करूंगा। मैं जानता हूं कि तुम भी ऐसा न चाहोगी कि मैं अपना व्रत भंग करूं। किसी प्रकार वर्ष दिन बिताओ। प्रभु ने चाहा तो शीघ्र ही राजपुत्र-वधू बनाकर तुम्हें अपने सुख की साथिन बनाऊंगा। इस लड़की के हाथ पत्र का उत्तर भेजना।'

मृणालिनी पत्र पढ़कर बोली, 'गिरिजाया ! इसका उत्तर कैसे लिखूं ? मेरे पास कागज नहीं है। तुम जुबानी उत्तर दे देना। मैं तुम्हें पुरस्कारस्वरूप यह अलंकार देती हूं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'उत्तर किसके पास ले जाऊंगी ? उन्होंने कहा था कि आज ही उत्तर ले आऊं, परन्तु आते समय जब मैं उनके पास गई तो भेंट नहीं हुई। मैंने सुना है कि वह सन्ध्या को ही नव-द्वीप चले गए।'

'नव-द्वीप ?'

'जी हां। सुना है कि उनके गुरु आकर उन्हें अपने साथ ले गए।'

'माधवाचार्य ! वही मेरा काल है। उसके बाद कुछ सोचकर मृणालिनी बोली, 'गिरिजाया ! तुम जाओ। मैं और अधिक घर से बाहर न रहूंगी।'

'मैं जाती हूं।' कहकर गिरिजाया विदा हुई। मृणालिनी ने भी घर की ओर प्रस्थान किया।

मृणालिनी जैसे ही चली वैसे ही किसी ने उसका हाथ पकड़ा। हाथ पकड़ने वाला बोला, 'क्या बता सकती हो कि वह कौन व्यक्ति था जिससे तुम बात कर रही थीं?'

मृणालिनी क्रोध से कांपकर बोली, 'ब्राह्मण-कुल के कलंक ! हाथ छोड़ मेरा।'

वह हृषीकेश का पुत्र था, मूर्ख और दुश्चरित्र। वह मृणालिनी के प्रति अनुरक्त था। उसका नाम व्योमकेश था।

'हाथ छोड़कर क्या होगा ? उसकी आवश्यकता नहीं है। तुम मेरे मन का दुःख सुनो। क्या मैं आदमी नहीं हूं ? अभी तुमने एक का मनोरंजन किया था। क्या मेरा नहीं कर सकती ?'

'यदि न छोड़ेगा तो आवाज देकर सब लोगों को जगा दूंगी।'

'जगा दो। मैं कहूंगा कि मैंने अभिसारिका को पकड़ा है। मैंने कोई पाप नहीं किया।'

मृणालिनी बलपूर्वक हाथ छुड़ाने लगी, परन्तु वह सफल न हुई।

व्योमकेश बोला, 'अधीर न हो। मेरी इच्छा पूरी करो, मैं तुम्हें छोड़ दूंगा।'

'मैं क्या तुम्हारी बहिन नहीं हूं ?'

'तुम मेरे सम्बन्धी की बहिन हो। मेरी राधिका हो प्राणप्यारी !

व्योमकेश मृणालिनी का हाथ खींचने लगा। मृणालिनी उसे सह न सकी। उसने क्रोध में आकर व्योमकेश को लात मारी। वह लात खाकर बोला, 'मैं धन्य हुआ। मैं तुम्हारे चरण-स्पर्श से मोक्ष प्राप्त करूंगा सुन्दरी !'

तभी व्योमकेश चिल्लाया, 'राक्षसी !' कहकर वह मृणालिनी का हाथ छोड़कर अपनी पीठ सहलाने लगा। उसकी पीठ से रक्त बह रहा था।

मृणालिनी हाथ छुड़ाकर भागी नहीं। उसने व्योमकेश को नहीं काटा था। उसने चांद के प्रकाश में एक लड़की की ओर देखा। गिरिजाया उसे खींचकर बोली, 'भाग जाओ' यह कहकर वह स्वयं वहां से भागी।

भागना मृणालिनी के स्वभाव में नहीं था। वह भागी नहीं। वह अपनी कोठरी की ओर चली गई। तब तक घर के सब लोग जाग गए थे। सामने हृषीकेश ने अपने पुत्र को छटपटाते देखकर पूछा, 'क्या हुआ है रे तुझे ? तू रो क्यों रहा है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्योमकेश बोला, 'मृणालिनी अभिसार करने गई थी। मैंने उसे पकड़ा तो उसने मेरी पीठ पर काट लिया। यह देखो रक्त बह रहा है मेरी पीठ से।'

हृषीकेश अपने पुत्र के कुचरित्र से परिचित नहीं थे। मृणालिनी को आंगन से आती देखकर उन्हें उसका विश्वास हो गया। वह उसके पीछे-पीछे उसके शयनागार में चले गए और उससे पूछा, 'मृणालिनी ! यह तुम्हारा कैसा चरित्र है ?'

'मेरा चरित्र !'

'मैं तुम्हारे विषय में कुछ नहीं जानता। मैंने गुरु के अनुरोध से तुम्हें अपने घर में स्थान दे दिया था। तुम मणिमालिनी के साथ रहती हो, फिर तुममें यह कुल्टा-वृत्ति क्यों आई ?'

'मुझे जो कुल्टा कहता है वह झूठ बोलता है।'

हृषीकेश क्रोधित होकर बोले, 'पापिन ! मेरे घर से निकल जा। बहुत होगा, माधवाचार्य क्रुद्ध हो लेंगे। उनके भय से मैं नागिन को अपने घर में नहीं पाल सकता।'

'जो आज्ञा। प्रातःकाल आप मुझे यहां न देखेंगे।'

हृषीकेश समझ रहे थे कि घर से निकलने की बात सुनकर मृणालिनी भयभीत होगी। उसके भयभीत न होने पर वह समझे कि उसने अपने प्रेमी के घर आश्रय पाने के भरोसे से यह उत्तर दिया है। हृषीकेश का क्रोध ओर बढ़ा। वह बोले, 'कल सवेरे नहीं, तू इसी समय यहां से बाहर हो जा।'

'जो आज्ञा। मैं मणिमालिनी से विदा होकर अभी इसी समय आपका गृह छोड़ देती हूं।'

मणिमालिनी से तू बात नहीं कर सकती।'

'मृणालिनी की आंखों में आंसू आ गए। वह बोली, 'यही सही। मैं आपको प्रणाम करती हूं।'

मृणालिनी कोठरी से बाहर हो गई।

अन्य लोगों के साथ मणिमालिनी भी जाग उठी थी। वह अपने भाई से बातें कर रही थी और उसकी दुश्चरित्रता को समझकर उसे धिक्कार रही थी। उसे फटकारकर लौटी तो जाती हुई मृणालिनी से उसकी भेंट हुई। उसने पूछा, 'सखी, इस प्रकार इतनी रात में कहां जा रही हो ?'

मृणालिनी बोली, 'मणिमालिनी ! तुम चिरायु हो। मेरे साथ बातें न करो, तुम्हारे पिता ने मना कर दिया है।'

मणिमालिनी बोली, 'परन्तु तुम रो क्यों रही हो ? सर्वनाश ! पिताजी ने जाने तुम्हें क्या कह दिया ? सखी ! लौटो, क्रोध न करो।'

मणिमालिनी मृणालिनी को न लौटा सकी। वह चल पड़ी। मणिमालिनी घबराकर अपने पिता के पास चली गई।

मृणालिनी ने बाहर आकर देखा गिरिजाया खड़ी थी। मृणालिनी ने पूछा, 'तुम अब तक क्यों खड़ी थी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'क्या तुमने ब्राह्मण को काटा था ?'

'वह ब्राह्मण नहीं, पापी है। गऊ तो है नहीं वह, जो निरपराध समझकर न काटती।'

परन्तु तुम तो गाती हुई चली गई थी।'

'फिर तुम लोगों की बातें सुनकर लौट आई थी। इसने एक दिन 'काली चींटी' कहकर मुझसे मजाक किया था। अवसर देखकर आज ब्राह्मण का ऋण चुका दिया। अब तुम कहां जाओगी ?'

'तुम्हारा कोई घर-द्वार है क्या ?'

'है, एक पत्तों की झोंपड़ी है।'

'वहां और कौन है ?'

'एक बुढ़िया है। मैं उसे माई कहती हूं।'

'तो चल इस समय वहीं चलती हूं।'

चलते-चलते गिरिजाया बोली, 'परन्तु वह तो झोंपड़ी है। वहां आप कितने दिन रहेंगी ?'

'कल सवेरे और कहीं चली जाऊंगी।'

'क्या मथुरा जाना होगा ?'

'मथुरा में अब मेरे लिए स्थान नहीं रहा।'

'तब कहां जाओगी ?'

'यमलोक।'

दोनों कुछ देर तक चुप रहीं। फिर मृणालिनी बोली, 'क्या इस बात पर तुम्हें विश्वास नहीं हुआ ?'

'विश्वास क्यों न होगा ? परन्तु वह स्थान कहीं से मांगा तो नहीं जा सकता। इस समय एक और जगह क्यों नहीं चलतीं ?'

'कहां ?'

'नव-द्वीप।'

'गिरिजाया ! तू भिखारिणी के वेश में छलना है। तुझसे कोई बात न छिपाऊंगी। मैंने नव-द्वीप जाने का निश्चय किया है। मैं वहीं जाऊंगी।'

'क्या अकेली ही चलोगी वहां ?'

'वहां जाने के लिए मेरा साथी कौन बनेगा ?'

'मैं चलूंगी आपके साथ ।'

'सचमुच ! क्या तुम चल सकोगी ?'

'मैं सचमुच चलूंगी। चल क्यों नहीं सकूंगी मैं ?'

'अच्छा, तू चलेगी क्यों ?'

'मेरे लिए सभी स्थान समान हैं। वहां राजधानी में अच्छी भिक्षा मिलेगी।'

मृणालिनी मुस्कुरा दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5

गौड़ेश्वर समा-मण्डप में विराजमान थे। सिंहासन पर छत्र के नीचे वृद्ध राजा बैठे थे।

राजसभा का कार्य समाप्त होने पर सभा भंग होने वाली थी। तभी माधवाचार्य ने वहां पहुंचकर कहा, 'महाराज ! आप राजनीति विशारद हैं। शत्रु-दमन राजा का प्रधान धर्म है। आपने यवन-शत्रुओं के दमन का क्या प्रबन्ध किया ?'

'आप क्या आज्ञा करते हैं ?' वृद्ध राजा बोले।

'महाराज, यवनों ने आर्यवर्त्त को हस्तगत कर लिया है। इस समय उन्होंने गौड़-राज्य पर आक्रमण करने का विचार किया है।'

'आप तुर्कों की बात कर रहे हैं। क्या वे लोग यहां तक आ गए हैं ?'

'प्रभु रक्षा कर रहे हैं। अभी तक वे यहां तक नहीं पहुंचे हैं, परन्तु आने पर आप क्या करेंगे ?'

'मैं क्या कर सकता हूं ? मेरा यह पुराना शरीर क्या युद्ध करने योग्य रह गया है ? वे आते हैं तो आएं। मैं तो गंगा-लाभ करना चाहता हूं।'

राजा की बात सुनकर सब लोग चुप रह गए। केवल महासामन्त की तलवार झंकार उठी। माधवाचार्य की आंखों में एक बूंद आंसू की आ गई।

दामोदर पण्डित बोले, 'आचार्य जी ? क्या आप झुब्ध हो गए ? यही शास्त्र-संगत है। शास्त्र में लिखा है कि तुर्क लोग इस देश पर अधिकार करेंगे। यह अवश्य होगा। किसमें सामर्थ्य है जो इसे रोक सके ? युद्ध की तैयारी व्यर्थ है ?'

'महापण्डित ! आपने यह उक्ति किस शास्त्र में देखी ?'

'विष्णु-पुराण में लिखा है।'

'विष्णु-पुराण मंगाइए। हम देखते हैं कि उसमें यह कहां लिखा है।'

'तनिक स्मृति पर जोर देकर देखिए, मनु ने यह लिखा है या नहीं।'

'गौड़ेश्वर-पण्डित ! क्या मनु धर्म-शास्त्र के भी पारदर्शी हैं ?'

'आपने मुझे विह्वल कर दिया। आपके सामने सरस्वती भी क्या है ? आपके सामने मैं ग्रन्थ का नाम ही भूल गया। आप कविताओं को याद कीजिए।'

'शायद आपने ही किसी कविता की रचना की हो। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि तुर्कों द्वारा गौड़-विजय किसी शास्त्र या कविता में नहीं लिखी है।'

'क्या आप सर्वशास्त्रविद हैं ?'

आप मुझे इसे विपरीत सिद्ध करने का प्रयास कीजिए।'

एक पण्डित बोला, 'मैं करूंगा। शास्त्र में लिखा है कि यदि आत्मश्लाघी व्यक्ति पण्डित है तो मूर्ख कौन है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मूर्ख तीन व्यक्ति होते हैं, प्रथम तो वह जो आत्मरक्षा न करे, दूसरा वह जो यत्नहीनता का परिपोषक हो, तीसरा वह जो आत्मवृद्धि में वाक्य-व्यय करे। ये तीनों ही प्रकार के व्यक्ति महामूर्ख होते हैं।'

यह सुनकर वह लज्जित होकर बैठ गए।

पशुपति बोले, 'यवनों के आने पर हम युद्ध करेंगे।

माधवाचार्य बोले, 'साधु ! साधु ! आपका जैसा यश है वैसी ही बात आपने कही। मुझे यही पूछना है कि यदि युद्ध करना है तो उसका क्या उद्योग किया ?'

'मंत्रणा गुप्त होनी चाहिए, प्रकट रूप में नहीं। फिर भी जो घोड़े, पैदल और नाविक एकत्रित हैं, उन्हें आप नगरी में पर्यटन करके देख सकेंगे।'

'वह बहुत कुछ मैं देख चुका हूं।'

'फिर यह प्रस्ताव क्यों ?'

'प्रस्ताव इसलिए कि एक वीर पुरुष इस समय यहां आए हुए हैं। आप मगध के युवराज हेमचन्द्र की वीरता से अपरिचित न होंगे।'

'मैंने यह भी सुना है कि वह आपके शिष्य हैं। क्या आप बता सकते हैं कि ऐसे वीर पुरुष के रहते मगध में यवनों की विजय कैसे हुई ?'

'उस समय युवराज विदेश में थे।'

'क्या वह इस समय नव-द्वीप में आए हुए हैं ?'

'हां ! यवनों द्वारा नव-द्वीप पर आक्रमण का समाचार प्राप्त करके ही वह यहां आए हैं। गौडराज उनके साथ संधि करके शत्रु-विनाश की चेष्टा करें तो इससे दोनों का मंगल होगा।'

'आप सहर्ष इस कार्य को सम्पन्न करें आचार्य जी ! मैं राजकुमार को सादर आमंत्रित करता हूं।'

गौडराज ने हेमचन्द्र के लिए गंगा किनारे के एक महल में ठहरने की व्यवस्था की।

नव-द्वीप में जनार्दन नामक एक वृद्ध ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नी भी वृद्धा थीं। कुछ दिन पूर्व उनकी पर्ण-कुटी विनष्ट होने पर वह उसी वृहत् महल के किनारे पर रहने लगे थे, जिसमें हेमचन्द्र ने निवास ग्रहण किया था। अब यह बात सुनकर कि कोई राजपुत्र वहां आकर रहेंगे, वह अन्य स्थान की खोज कर रहे थे।

यह सुनकर हेमचन्द्र ने सोचा कि उन्हें क्यों निराश्रित किया जाए ? हेमचन्द्र ने दिग्विजय को आज्ञा दी कि ब्राह्मण को घर छोड़ने को मना कर दे। वह मुस्कुराकर बोला, 'यह कार्य मुझसे न होगा। वह मेरी बात नहीं सुनेंगे।'

सचमुच वह कितने ही लोगों की बातें पर ध्यान नहीं देते थे क्योंकि वह बहरे थे। हेमचन्द्र ने समझा कि ब्राह्मण अभिमान के कारण नौकर की बात न मानेंगे। इसलिए वह स्वयं उनके पास गए और उन्होंने उन्हें प्रणाम किया।

'तुम कौन हो ?' ब्राह्मण ने पूछा।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मैं आपका सेवक हूं।'

'क्या कहा ? तुम्हारा नाम रामकृष्ण है ?'

हेमचन्द्र समझ गए कि ब्राह्मण बहरा है। वह ऊंचे स्वर में बोले, 'मेरा नाम हेमचन्द्र है। मैं ब्राह्मणों का दास हूं।'

'अच्छा-अच्छा, मैं सुन नहीं सका। तुम्हारा नाम हनुमानदास है।'

हेमचन्द्र ने सोचा वह अधिक बहरे हैं। वह बोले, 'यह महल नव-द्वीप के राजा ने मुझे रहने के लिए दिया है। सुना है आप इसे त्यागकर कहीं अन्यत्र जाने का विचार कर रहे हैं।'

'नहीं, अभी मैं गंगा-स्नान को नहीं गया। अब जाने का विचार कर रहा हूं।'

'आपसे अनुरोध है कि आप इस घर को छोड़कर कहीं न जाएं।'

'क्या मैं तुम्हारे घर भोजन करूं ? तुम्हारे यहां क्या है ? आज श्राद्ध है क्या?'

'आहारादि की भी व्यवस्था हो जाएगी। अभी आप यहीं बने रहें।'

'भोजन करके दक्षिणा तो मिलेगी ही। तुम्हारा मकान कहां है ?'

हेमचन्द्र हारकर लौट रहे थे तभी किसी ने उनका दुपट्टा खींचा। हेमचन्द्र ने पलटकर देखा तो जान पड़ा कि कोई कुसुम-सी सुन्दर देवी थी।

सुन्दरी बोली, 'आप दादा से क्या कह रहे थे ? वह कुछ सुनते नहीं हैं।'

'तुम कौन हो ?'

'मैं मनोरमा हूं।' सुन्दरी ने उत्तर दिया।

'यह तुम्हारे दादा हैं क्या ?'

'आप दादा से क्या कह रहे थे ?'

'मैंने सुना था कि वह इस घर को छोड़कर जा रहे हैं। मैं उसी के लिए मना कर रहा था।'

'इस घर में एक राजपुत्र आए हैं। वह क्या हमें रहने देंगे ?'

'वह मैं ही हूं। मैं ही तुमसे अनुरोध कर रहा हूं कि तुम यहीं बने रहो।'

'क्यों ? आप ऐसा क्यों चाहते हैं ?'

'क्यों,' यह सुनकर राजपुत्र आश्चर्यचकित रह गए।

वह बोले, 'यदि तुम्हारा कोई भाई आकर इस महल में रहता तो क्या वह तुम्हें इसे खाली करने को कहता ?'

'क्या तुम मेरे भाई हो ?'

'आज से तुम यही समझो।'

'समझ गई, परन्तु बहिन मानकर कभी मेरा निरादर तो न करोगे ?'

हेमचन्द्र बोले, 'निरादर क्यों करूंगा ?'

'यदि मैं कोई अपराध करूं तब ?'

'अपराध देखना होगा, परन्तु निरादर की इसमें क्या बात है ? ऐसा तुम क्या अपराध करोगी मेरा ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरमा बोली, 'मैंने कभी भाई नहीं देखा। क्या भाई से लज्जा करनी चाहिए?'

'नहीं। भाई से लज्जा की कोई आवश्यकता नहीं है।'

'तब मैं तुमने लज्जा न करूंगी ?'

हेमचन्द्र हंसकर बोले, 'मैं अपनी बात तुम्हारे दादा को न समझा सका ?'

'मैं कह दूंगी उनसे।' यह कहकर मनोरमा ने जनार्दन से हेमचन्द्र का अभिप्राय बताया। हेमचन्द्र ने देखा कि मनोरमा की बातें समझने में उन्हें कोई कठिनाई न हुई।

ब्राह्मण ने हेमचन्द्र को आशीर्वाद देकर कहा, 'मनोरमा ! ब्राह्मणी से कहो राजपुत्र तुम्हारे पौत्र हैं। इन्हें आशीर्वाद दो।' ब्राह्मण ने स्वयं 'ब्राह्मणी ! ब्राह्मणी !' कहकर उन्हें बुलाया। ब्राह्मणी दूसरी ओर काम में लगी थीं। वह सुन न सकीं। ब्राह्मण असन्तुष्ट होकर बोले, 'मनोरमा ! तेरी दादी में यह बड़ा दोष है कि वह कान से कम सुनती है।'

मनोरमा ने मुस्कुराकर हेमचन्द्र की ओर देखा। हेमचन्द्र भी मुस्कुरा दिए।

6

रात्रि के तिमिर में मल्लाह नौका किनारे पर लगाकर विश्राम की व्यवस्था करने लगे। तभी एक छोटी डोंगी अन्य नावों से अलग किनारे पर आ लगी।

छोटी डोंगी में केवल दो स्त्रियां थीं। वे मृणालिनी और गिरिजाया थीं। गिरिजाया मृणालिनी से बोली, 'आज का दिन तो बीत गया।'

मृणालिनी ने कोई जवाब नहीं दिया।

गिरिजाया बोली, 'कल, परसों और आगे के दिन भी बीतेंगे।'

मृणालिनी ने फिर भी कोई उत्तर न दिया। वह एक ठण्डी सांस लेकर रह गई।

गिरिजाया बोली, 'यह क्या ? इस प्रकार चिन्ता करने से क्या लाभ होगा ? यदि हमने नव-द्वीप आकर भूल की है तो चलो वापस लौट चलें।'

मृणालिनी बोली, 'कहां जाएं ?'

'चलो, हृषीकेश चलें।'

'वहां जाने से तो गंगा में डूब मरना ही अच्छा है।'

'चलो, मथुरा चलें।'

'वहां मेरे लिए अब कोई स्थान नहीं है। कुल्टा की भांति जिस पिता के घर से चली आई, वहां क्या मुंह लेकर जा सकती हूं ?'

'तुम अपनी इच्छा से तो नहीं आईं। फिर जाने में क्या हानि है ?'

'इस पर किसे विश्वास होगा ? मैंने पिता के स्नेह को ठुकरा दिया।'

मृणालिनी की आंखों से आंसू टपक रहे थे। गिरिजाया बोली, 'तब कहां चलोगी?'

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जहां चल रही हूं।'

'तब फिर यात्रा से तुम दुःखी क्यों हो ? तुम अपने प्रेम को देखने जा रही हो। इससे बढ़कर सुख और क्या होगा ?'

'वहां हेमचन्द्र से भेंट न होगी ?'

'क्यों, क्या वह वहां नहीं हैं ?'

'हैं वहीं, परन्तु तुम जानती हो कि उन्होंने एक वर्ष तक मुझसे न मिलने का व्रत लिया है। मैं उनके व्रत को कैसे तोड़ सकती हूं ?'

गिरिजाया चुप हो गई।' मृणालिनी बोलीं, 'मैं क्या कहकर उनके सामने खड़ी होऊंगी ? क्या मैं उनसे कहूंगी कि हृषीकेश ने मुझे कुल्टा कहकर घर से निकाल दिया ?'

'तब क्या सचमुच तुम्हारी हेमचन्द्र से भेंट न होगी ?'

'नहीं, यह सम्भव नहीं है।'

'तब क्यों जा रही हो तुम ?'

'वह मुझे न देख सकेंगे, परन्तु मैं तो उन्हें देख सकूंगी। मैं उन्हें देखने जा रही हूं।'

'तुम तो उन्हें देखकर जी लोगी, परन्तु मैं कैसे जीती रहूंगी ?'

'मैं शिल्प-कार्य जानती हूं। माला गूंथना जानती हूं। चित्र बनाने जानती हूं। कपड़ों पर फूल बनाने जानती हूं। तुम बाजार में मेरी शिल्प की चीजें बेचकर काम चला सकती हो।'

उधर हेमचन्द्र महल में रहने लगे थे। मनोरमा से उनकी नित्य भेंट होती थी। मनोरमा कभी उनसे बातें करती, कभी बिना बोले ही दूसरी ओर चली जाती। मनोरमा की प्रकृति उन्हें विस्मयजनक प्रतीत हुई।

उनकी आयु कितनी थी, यह उन्हें पता न चलता था। कभी हंस पड़ती थी और कभी बहुत ही गम्भीर दिखाई देती थी। क्या मनोरमा वास्तव में कुमारी थी ? एक दिन हेमचन्द्र ने पूछा, 'मनोरमा, तुम्हारी ससुराल कहां है ?'

मनोरमा बोली, 'कह नहीं सकती ?'

फिर एक दिन पूछा, 'मनोरमा, तुम कितनी आयु की हुई ?'

मनोरमा बोली, 'कह नहीं सकती।'

माधवाचार्य हेमचन्द्र को वहीं छोड़कर देशाटन को चले गए थे। वह गौड़देश के अधीन राजों को नव-द्वीप में ससैन्य एकत्रित करना चाहते थे। हेमचन्द्र नव-द्वीप में उनकी प्रतीक्षा करने लगे, परन्तु बेकाम बैठे रहना कठिन हो गया था। उनकी इच्छा होने लगी थी कि दिग्विजय को वहां छोड़कर वह एक बार गौड़ जायें, परन्तु वहां मृणालिनी से भेंट होने पर उनकी प्रतिज्ञा भंग हो जाएगी। यदि वहां जाकर उन्होंने मृणालिनी से भेंट न की तो गौड़-यात्रा का फल क्या ? इस विचार से हेमचन्द्र ने गौड़-यात्रा का विचार त्याग दिया, परन्तु मृणालिनी की चिन्ता हृदय में लगी रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन संध्या समय वह शयन-गृह में पलंग पर पड़े मृणालिनी की चिन्ता में डूबे हुए थे। खुली खिड़की से हेमचन्द्र प्रकृति की शोभा देख रहे थे।

एकाएक खिड़की का प्रकाश रुका। हेमचन्द्र ने खिड़की के पास किसी मनुष्य का सिर देखा। खिड़की ऊंची थी, इसलिए हाथ-पैर दिखाई न दिए। केवल एक चेहरा दिखाई दिया। चेहरा मूंछ-दाढ़ी वाला था। उसके सिर पर पगड़ी थी। हेमचन्द्र ने शय्या से उछलकर अपनी तलवार हाथ में ले ली, परन्तु उन्होंने देखा कि खिड़की पर तब कोई मनुष्य का सिर नहीं था। वह द्वार खोलकर कोठरी से बाहर निकले। खिड़की के पास आए, परन्तु वहां कोई नहीं था।

उन्होंने फिर घर के चारों ओर, गंगा किनारे, तथा वन में देखा। उन्हें कहीं कोई दिखाई न दिया।

हेमचन्द्र लौट आए। राजपुत्र रात्रि में ही सशस्त्र होकर बाहर निकले। खिड़की में मनुष्य का सिर देखकर वह समझ गए कि बंगाल में तुर्क आ गए हैं।

राजपुत्र हेमचन्द्र यवनों की खोज में निकल पड़े। उन्होंने सोचा कि शायद तुर्क-सेना नगर के पास कहीं छिपी है या वह आदमी तुर्क-सेना का गुप्तचर था। यदि तुर्क-सेना आ गई है तो उसके साथ अकेले युद्ध सम्भव नहीं, परन्तु जो भी हो, पूरी जांच किए बिना वह शान्त रहने वाले नहीं थे। जिस कार्य के लिए उन्होंने मृणालिनी को छोड़ा, उसकी उपेक्षा वह नहीं कर सकते थे। पगड़ीदार सिर देखकर उनकी युद्ध-इच्छा प्रबल हो उठी। हेमचन्द्र कदम बढ़ाकर राजपथ पर चल पड़े।

राजपथ वहां से कुछ दूरी पर था। वह उस ओर बढ़ चले। मार्ग के निकट एक बावली के किनारे मौलश्री, अशोक, चम्पा, कदम्ब, पीपल, वट इत्यादि के वृक्ष थे। बावली के किनारे घोर अंधकार था। वहां दिन में भी अंधेरा रहता था। अफवाह थी कि वहां भूत का निवास था। वहां कोई अकेला न जाता था। रात्रि में तो कोई उधर जाता ही न था।

हेमचन्द्र निःसंकोच भाव से तालाब के रास्ते चल पड़े। तालाब के चारों ओर तथा किनारे पर अच्छी तरह देखते हुए वह आगे बढ़े। वह सीढ़ी के पास पहुंचे तो एकाएक चौंक पड़े। उन्होंने चांदनी में सबसे नीचे की सीढ़ी पर एक श्वेत वस्त्र-धारी को बैठे देखा। वह स्त्री जान पड़ी। उसे प्रेत समझकर हेमचन्द्र चुपचाप आगे बढ़ रहे थे, परन्तु सोचा कि कहीं वह कोई मनुष्य न हो। कहीं वह तुर्क ही न हो। इस सन्देह से वह फिर लौटे। तालाब के किनारे पहुंचे और सीढ़ियों से नीचे उतरने लगे। उस स्त्री ने हेमचन्द्र की ओर देखा। उसने हाथ से अपने मुंह पर फैले बालों को हटाया। हेमचन्द्र ने उसका मुंह देखा। वह प्रेतिनी नहीं थी। हेमचन्द्र आश्चर्य से बोले, 'कौन ? मनोरमा ! तुम यहां रात्रि के समय कहां ?'

'मैं तो यहां अक्सर आती हूं। किन्तु तुम यहां कैसे आए ?'

'मुझे काम है। मैं किसी कार्य से निकला हूं।'

'इतनी रात को तुम्हें क्या काम निकल आया ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'फिर बताऊंगा। तुम इतनी रात को यहां क्यों आईं ?'

'तुम्हारा यह वेश कैसा है ? भाला, तलवार और यह चकमक ! तुम्हारे मस्तक पर यह क्या है ? क्या यह हीरा है ? यह तुमने कहां से प्राप्त किया ?'

'यह बहुत दिन से मेरे पास है।'

'इतनी रात में यह हीरे पहिनकर तुम कहां चले हो ? चोर मिल गए तो छीन लेंगे।'

'चोर मेरे पास से क्या लेंगे ?'

'परन्तु इतनी रात में जेवरों की आवश्यकता ही क्या थी ? क्या तुम किसी से विवाह करने जा रहे हो ?'

'तुम्हें कैसा लगता है मनोरमा ?'

'घातक अस्त्र लेकर विवाह करने कौन जाता है ? तुम युद्ध करने जा रहे हो?'

'किसके साथ युद्ध करूंगा ? परन्तु तुम यहां क्या कर रही हो ?'

'मैं स्नान करके बाल सुखा रही थी। मेरे बाल अभी गीले हैं।' यह कहकर मनोरमा ने अपनी गीले केशों को हेमचन्द्र के हाथ पर छुआ दिया।

'रात को स्नान करने की तुम्हें क्या सूझी ?'

'मेरे बदन में कभी-कभी ज्वाला-सी निकलने लगती है।'

'तो गंगा-स्नान क्यों नहीं करतीं।'

'बावरी का पानी ठण्डा रहता है।'

'क्या तुम सर्वदा यहीं आती हो ?'

'हां, मुझे यहीं स्नान करना पसंद है।'

'जब मैं तुम्हारा विवाह कर दूंगा तो विवाह होने पर यह सब तुम किस प्रकार कर सकोगी ?'

'पहिले विवाह तो हो। तब देखा जाएगा।'

हेमचन्द्र हंसकर बोले, 'तुझे लज्जा नहीं आती विवाह की बात करते ?'

'निरादर करने लगे। तुमने तो कहा था कि तुम मेरा कभी निरादर न करोगे।'

'क्षमा चाहता हूं। तुमने इधर से किसी को जाते तो नहीं देखा ?'

'देखा था। वह तुर्क वेश में था।'

हेमचन्द्र बहुत विस्मित हुए। उन्होंने पूछा, 'तुमने तुर्क को कैसे पहिचाना ?'

'मैंने पहिले भी कई तुर्क देखे हैं।'

'तुर्क कहां देखे हैं तुमने ?'

'कहीं भी सही, परन्तु क्या तुम उसी तुर्क की खोज में इस समय जा रहे हो?'

'हां, वह किस ओर गया है ?

'क्यों ? तुम क्या करोगे उसका ?'

'मैं उसे यमलोक पहुंचाऊंगा।'

'तुम मनुष्य को क्यों मारते हो ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुर्क हमारे शत्रु हैं। उन्होंने हमारे देश पर अधिकार किया है।'

'तब एक को मारने से क्या बनेगा ?'

'मुझे जितने भी तुर्क दिखाई देंगे, उन सबके प्राण लूंगा।'

'क्या मार सकोगे तुम सबको ?'

'मार क्यों नहीं सकूंगा ?'

'तब सावधान ! मेरे साथ आओ।'

हेमचन्द्र मनोरमा के मुख को देखकर सकपका गए।

मनोरमा उनका भाव जानकर बोली, 'मुझे स्त्री समझकर अविश्वास कर रहे हो क्या ?'

हेमचन्द्र मनोरमा को देखकर आश्चर्यचकित रह गए। उन्होंने सोचा, 'यह मानवी है या देवी ?'

7

धर्माधिकार पशुपति असाधारण व्यक्ति थे। वह दूसरे गौड़ेश्वर थे। राजा के वृद्ध होने से राजकार्य का वही संचालन करते थे। उनकी आयु पैंतीस वर्ष की थी। बहुत सुन्दर युवक थे। उनका शरीर लम्बा, छाती चौड़ी, सर्वांग अस्थिमांस के उपयुक्त संयोग से बना, उनका वर्ण तपे स्वर्ण जैसा और ललाट विस्तृत था। उनकी मुख-कांति गम्भीर थी। राजसभा में उन जैसा प्रभावशाली व्यक्ति और कोई न था।

पशुपति जाति के ब्राह्मण थे, परन्तु उनके जन्मस्थान का पता नहीं था। कहते हैं कि उनके पिता एक दरिद्र ब्राह्मण थे।

वह अपने बुद्धि-बल से ही गौड़-राज्य के प्रधान-पद् पर पहुंचे थे।

पशुपति ने काशी में अपने पिता के पास रहकर शास्त्रों का अध्ययन किया था। वहां केशर नाम के एक बंगीय ब्राह्मण थे। हेमवती उनकी एक आठ वर्ष की कन्या थी। उसके साथ पशुपति का विवाह हुआ था, परन्तु विवाह की रात्रि को ही केशर उस कन्या को लेकर न जाने कहां चले गए। फिर उनका कुछ पता न चला। पशुपति ने फिर दूसरा विवाह नहीं किया। वह इस समय राजप्रसाद के समान ऊंचे महल में रहते थे, परन्तु स्त्री-सुख न होने से वह महल अंधकारमय था।

वह महल की एकान्त कोठरी में अकेले बैठे थे। उस कोठरी में एक गुप्त द्वार था। उस द्वार को रात्रि में आकर किसी ने धीरे से खटखटाया। पशुपति ने द्वार खोल दिया। तभी एक आदमी ने घर में प्रवेश किया। वह मुसलमान था। हेमचन्द्र ने उसी को खिड़की में से देखा था। पशुपति ने उसे पृथक् आसन पर बैठने को कह, उसकी ओर देखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पशुपति बोले, 'आप तुर्क सेनापति के दूत हैं ? क्या आप ही मुहम्मद अली हैं? सेनापति का संदेश कहिए ?'

यवन बोला, 'खिलजी साहब क्या चाहते हैं, यह आप जानते हैं। उनकी इच्छा है कि आप बिना युद्ध किए यह राज्य उन्हें सौंप दें।'

'स्वदेश से वैर करना महापाप है। मैं ऐसा कार्य क्यों करूं ?'

'तब ठीक है। मैं चला, परन्तु यही बात थी तो आपने खिलजी साहब के पास दूत क्यों भेजा था ?'

'मैं जानना चाहता था कि उनमें युद्ध का कितना जोश है।'

'उन्हें युद्ध में आनन्द आता है।'

'उन्हें हाथी के युद्ध में कितना आनन्द आया था ?'

मुहम्मद अली सक्रोध बोला, 'गौड़ में युद्ध के अभिप्राय से आना पशु-युद्ध के ही समान है। शायद इसी व्यंग्य के लिए आपने सेनापति को आदमी भेजने को कहा था। हम लोग युद्ध करना जानते हैं, व्यंग्य करना नहीं।'

यह कहकर मुहम्मद अली जाने को उद्यत हुआ। पशुपति बोले, 'एक क्षण ठहरिए। मैं यवनों के हाथ यह राज्य सौंपने को उद्यत हूं। मैं स्वयं गौड़ का राजा हूं, परन्तु समुचित मूल्य के बिना मैं अपना राज्य आप लोगों को क्यों दूं ?'

'आप क्या चाहते हैं ?'

'खिलजी क्या देंगे ?'

'आपका जो कुछ है, वह सब आपके पास रहेगा, आपका जीवन, ऐश्वर्य, पद्, वह कुछ नहीं छीनेंगे।'

'तब मैंने क्या पाया ? यह तो सब है ही मेरा। मैं किस लालच से यह पाप करूं?'

'हम लोगों से शत्रुता करके कुछ भी न होगा। युद्ध में आपका ऐश्वर्य, पद् और जीवन सब नष्ट हो जाएगा।'

'यह तो युद्ध बताएगा। हम लोगों की युद्ध करने की बिल्कुल इच्छा नहीं है। मगध में जो विद्रोह की ज्वाला सुलग रही है, उसे भी मैं जानता हूं। उसे दबाने में खिलजी आजकल व्यस्त हैं। गौड़-विजय की चेष्टा उन्हें कुछ दिन के लिए त्यागनी होगी, यह भी मैं जानता हूं।

मैंने अभी तक युद्ध की कोई तैयारी नहीं की है। जब आप लोग तैयारी करेंगे तब मुझे भी करनी होगी।'

'कोई हर्ज नहीं। क्या मैं जान सकता हूं कि आप क्या पुरस्कार चाहते हैं ?'

'सुनिए ! मैं इस समय वास्तव में गौड़ेश्वर हूं, परन्तु लोग मुझे गौड़ेश्वर नहीं कहते। मैं अपने नाम से गौड़ेश्वर शब्द जोड़ना चाहता हूं। सेन-वंश का लोप और पशुपति-वंश का आरम्भ हो, मैं यह चाहता हूं।'

'इससे हमें क्या लाभ ? हम लोगों को आप क्या देंगे ?'

'राज-कर मात्र। मैं आपका करप्रद राजा हूंगा ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अच्छा, यदि आप ही सच्चे गौड़ेश्वर हैं और राजा आपकी मुट्ठी में हैं, तो हम लोगों से आपको बातचीत करने की आवश्यकता ही क्या है ? आप हम लोगों की सहायता क्यों चाहते हैं ? आप हम लोगों को कर क्यों देंगे ?'

'स्पष्ट बताता हूं। इसमें कपट नहीं है। सेनराज वृद्ध हैं। वह मुझ पर स्नेह करते हैं। यदि मैं बल से उन्हें राज्यच्युत करूंगा, तो लोकनिन्दा होगी। आप लोग बिना युद्ध किए ही राजधानी में प्रवेश करके उन्हें गद्दी से उतारकर मुझे गद्दी पर बिठायेंगे, तो निन्दा न होगी। फिर राज्य अनाधिकारी के अधिकार में आने से विद्रोह हो सकता है। आपकी सहायता से मैं विद्रोह को दबा सकूंगा। मेरे राजा होने पर सेनराज के साथ आप लोगों का जो सम्बन्ध है, वही रहेगा। आप लोगों के साथ मैं युद्ध के लिए तैयार हूं, परन्तु उसमें जय और पराजय दोनों सम्भव हैं। जीतने पर मुझे कोई विशेष लाभ न होगा और हारने में सर्वस्व हानि है। आपसे सन्धि करके राज्य प्राप्त करने से ये आशंकाएं न रहेंगी।'

'आपने राजनीतिज्ञ की भांति विचार किया है। आपकी बात पर मुझे विश्वास हुआ। मैं भी खिलजी साहब का स्पष्ट अभिप्राय प्रकट करता हूं। यह सच है कि इस समय वह बहुत-सी चिन्ताओं से ग्रस्त हैं, परन्तु उनका निश्चय है कि वह हिन्दुस्तान के एकमात्र राजा बनेंगे। परन्तु वह आपको गौड़ का राजा बनायेंगे। जैसे दिल्ली में मुहम्मद गौरी के प्रतिनिधि कुतुबुद्दीन हैं, जैसे पूर्व देश में कुतुबुद्दीन के प्रतिनिधि बख्तियार खिलजी हैं, वैसे ही आप गौड़ में बख्तियार के प्रतिनिधि होंगे। आप इससे सहमत हैं या नहीं ?'

'मैं इस पर सहमत हूं ?'

'ठीक है। मुझे एक बात और पूछनी है। आप जो स्वीकार कर रहे हैं, उसके साधन आपके पास हैं ?'

'मेरी आज्ञा के बिना एक भी सिपाही युद्ध न करेगा। राजकोष मेरे अधिकार में है। मेरी आज्ञा के बिना युद्ध की तैयारी असम्भव है। केवल पांच आदमियों को लेकर खिलजी साहब से राजपुर में प्रवेश करने को कहना।'

'एक बात और है। इस देश में यवनों का परमशत्रु हेमचन्द्र रहता है। उसका सिर तुम्हें आज रात्रि को ही यवन-छावनी में भेजना होगा।'

'अभी क्यों ? आप लोग स्वयं आकर उसका सिर क़ाट लीजिए। मैं शरणागत की हत्या का पाप कैसे कर सकता हूं ?'

'वह यवनों का आना सुनते ही नगर छोड़कर भाग जाएगा। आप आज ही उसका वध कराइए।'

'चलिए यह भी स्वीकार किया।'

'अब मैं संतुष्ट हुआ। मैं आपका उत्तर लेकर जाता हूं।'

'मुझे एक बात और पूछनी है।'

'पूछिए।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मैं राज्य आप लोगों को दे दूंगा। यदि फिर आप मुझे निकालकर बाहर कर दें तो मैं क्या करूंगा ?'

'हम आपकी बात के भरोसे पर ही इतनी थोड़ी सेना लेकर इस नगर में प्रवेश करेंगे। यदि मैं अपने वचन के अनुसार कार्य न करूं, तो आप हम लोगों को बन्दी बना सकते हैं।'

'अगर आप थोड़ी सेना लेकर न आए ?'

'तो युद्ध कीजिए।'

यह कहकर मुहम्मदअली वहां से चले गए।

मुहम्मद अली के बाहर जाते ही किसी ने गुप्त परन्तु मधुर स्वर में कहा, 'क्या मैं प्रवेश कर सकता हूं ?'

'अन्दर आओ।'

एक गुप्तचर ने प्रवेश करके प्रणाम किया। पशुपति आशीर्वाद देकर बोले, 'शांतशील ! क्या समाचार है ? क्या आज तुम यवनों की छावनी में गए थे ?'

'वहां कोई नहीं जा सकता ?'

'क्यों ?'

'बीच में वन होने के कारण।'

'सशस्त्र क्यों नहीं गए तुम ?'

'अभी तक जिस-जिसने भी उसमें प्रवेश किया है, उसे यवनों ने मार डाला है। कोई लौटकर नहीं आया है।'

'तो तुम भी मारे जाते।'

'तब आपको यह समाचार कौन लाकर देता ?'

'तुम वहां कैसे गए थे ?'

'पहिले तुर्क वेश-भूषा बनाई और मुसलमान बनकर यवनों की छावनी में पहुंचा।

'यवन-सेना कितनी बड़ी है ?'

'लगभग पच्चीस हजार होगी।'

'उनकी बातचीत क्या सुनाई दी ?'

'बहुत कुछ सुना, परन्तु बता कुछ नहीं सकता।'

'क्यों नहीं बता सकते ?'

'मैं उनकी भाषा को समझ न सका।'

वह फिर कुछ ठहरकर बोला, 'मुहम्मदअली के यहां आने से घोर विपदा की आशंका है।'

पशुपति ने चौंककर पूछा, 'क्यों ?'

'वह छिपकर नहीं आ सके। उनके आने की बात किसी पर ज्ञात हो गई।'

पशुपति सशंकित होकर बोले, 'तुमने कैसे जाना ?'

'मैंने यहां आने के समय देखा कि एक वृक्ष के नीचे एक आदमी छिपा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह योद्धा था। उससे बातें करके ज्ञात हुआ कि उसने मुहम्मदअली को देख लिया था और वह उसके लिए प्रतीक्षा कर रहा था। मैं अंधेरे में उसे पहिचान न सका।'

'फिर क्या हुआ ?'

'मैं उसे चित्र-गृह में बन्दी बना आया हूं।'

पशुपति गुप्तचर की प्रशंसा करके बोले, 'कल सवेरे उस आदमी का प्रबन्ध करेंगे। रात्रि में उसे बन्द रहने दो। अब तुम्हें एक और बात करनी होगी। यवन-सेनापति आज रात को ही मगध-राजपुत्र का कटा सिर देखना चाहते हैं। तुम अभी जाकर इस कार्य को पूर्ण करो।'

'यह कार्य इतना सरल नहीं है गुरुदेव !'

'तुम कुछ आदमियों को लेकर उस पर आक्रमण करो। अकेले जाने की आवश्यकता नहीं है।'

'लोग क्या कहेंगे ?'

'लोग कहेंगे उसे डाकू मार गए।'

'जो आज्ञा, मैं जाता हूं।'

पशुपति ने शांतशील को पुरस्कार देकर विदा किया। फिर घर के अन्दर जाकर, अष्टभुजा को साष्टांग प्रणाम किया। उनकी स्तुति करके कहा, 'जननी ! इस अगाध सागर से मेरा उद्धार करो। मैं अपनी जन्मभूमि को कभी यवनों के हाथ न बेचूंगा। उनके द्वारा मैं केवल राजा बनूंगा। कांटे-से-कांटे को निकाल रहा हूं। इसमें क्या पाप है मां ? माता ! मेरी मनोकामना पूर्ण करो।'

इतना कहकर पशुपति ने प्रणाम किया। प्रणाम करके वह शयन-गृह में जाने लगा तो देखा द्वार पर एक अपूर्व सुन्दरी खड़ी थी।

पशुपति चौंके, कांप उठे और फिर आनन्द से उछल पड़े।

'सुन्दरी !'

पशुपति ने देखा मनोरमा उनके समक्ष खड़ी थी।

8

मनोरमा को देख पशुपति का मन चलायमान हो उठा। मनोरमा के बदन से यौवन छलक रहा था। उसके मुख पर कोमल कान्ति थी। हेमचन्द्र ने उसे पन्द्रह-सोलह वर्ष की युवती जाना। मनोरमा की रूप-राशि अतुल थी।

पशुपति अतृप्त नेत्रों से मनोरमा को देख रहे थे। उन्होंने मनोरमा के सौन्दर्य में अपूर्व छटा देखी। देखते-देखते मनोरमा का सुकुमार बदन गम्भीर होता गया। पशुपति बोले, 'मनोरमा, इतनी रात को कैसे आईं ? आज तुम्हारा यह भाव क्यों?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुमने मेरा कौन-सा भाव देखा ?'

'मैंने तुम्हारी दो मूर्तियां देखीं, एक आनन्दमयी सरला और दूसरी गम्भीर, तेजस्विनी, प्रतिभामयी, प्रखर बुद्धिमति। इस मूर्ति से मैं भयभीत हूं। लगता है तुम किसी दृढ़ प्रतिज्ञा में आवद्ध हो। आज तुम मुझे भय दिखाने क्यों आई हो ?'

'पशुपति, तुम इतनी रात को जागकर क्या कर रहे थे ?'

'मैं राजकार्य में व्यस्त था, परन्तु तुम ?'

'राजकार्य में या अपने कार्य में ?'

'अपना ही कहो। राजकार्य ही मेरा कार्य है। मैं व्यस्त कब नहीं रहता ? तुम आज यह क्यों पूछ रही हो ?'

'मैंने सब सुन लिया है।'

'तुमने क्या सुन लिया है ?'

'यवन और शान्तशील के साथ तुम्हारी गुप्त मंत्रणा।'

पशुपति के मुंह पर हवाइयां उड़ने लगीं। वह बहुत देर तक चिन्ता में डूबे रहकर बोले, 'अच्छा ही हुआ। मैं ये सब बातें स्वयं तुमसे कहता। तुमने पहिले ही सुन लिया, इसमें कोई हानि नहीं। तुम मेरी कौन बात नहीं जानतीं ?'

'पशुपति, तुमने यह क्या किया ?'

'मनोरमा ! तुम्हारे ही लिए तो मैं यह सब कुछ कर रहा हूं। मैं इस समय सेवक हूं। अपनी इच्छा से कोई काम नहीं कर सकता। मैं राजा बनकर तुम्हें ग्रहण कर सकूंगा। मैं विधवा-विवाह की नई पद्धति चलाऊंगा।'

मनोरमा दीर्घ निश्वास छोड़कर बोली, 'पशुपति ! यह मेरा स्वप्न मात्र है। तुम्हारे राजा होने पर मेरा वह स्वप्न भंग हो जाएगा। मैं कभी तुम्हारी रानी न बनूंगी।'

'क्यों मनोरमा ? यह तुमने क्यों कहा ?'

'क्या तुम राजा बनकर मुझसे प्रेम करोगे ? राज्य ही तुम्हारे मन में प्रधान होगा। तब तुम मेरा अनादर करोगे ? जब तुम मुझे प्रेम ही न करोगे, तो मैं क्यों तुम्हारी पत्नी बनकर तुम्हारे बन्धन में बंधूं ?'

'इस बात को अपने मन से निकाल दो ? पहिले तुम होगी, पीछे राज्य होगा।'

'राजा होकर यदि तुम राज्य की अपेक्षा रानी से अधिक प्रेम करोगे तो राज्य कैसे करोगे ? तुम राज्यच्युत हो जाओगे।'

'जिसके पास तुम सरीखी सरस्वती होगी उसे आशंका की कोई बात नहीं। प्रभु करें, यही हो। यदि यह न कर सका तो मैं तुम्हारे लिए राज्य का त्याग करूंगा।'

'तब फिर राज्य को ले क्यों रहे हो ? त्याग के लिए ग्रहण का क्या उपयोग ?'

'तुम्हारे पाणिग्रहण के लिए ही मैं यह सब कुछ कर रहा हूं।'

'यह आशा छोड़ दो। तुम राजा बनोगे तो मैं तुम्हारी पत्नी नहीं बनूंगी।'

'क्यों मनोरमा ? मैंने क्या अपराध किया है ?'

'तुम विश्वासघाती हो जाओगे। मैं विश्वासघाती की भक्ति कैसे करूंगी ? मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वासघाती से किस तरह प्रेम कर सकूंगी ?'

'क्यों, मैं विश्वासघाती कैसे हुआ ?'

'तुम अपने राजा को राज्यच्युत करने का षडयंत्र रच रहे हो। शरणागत राजपुत्र को मारने का प्रपंच रच रहे हो। क्या इन्हें विश्वासघात नहीं कहते हैं ? राजा का विश्वास नष्ट करने वाला क्या स्त्री के प्रति विश्वासघाती न होगा ?'

पशुपति चुप हो गए। मनोरमा बोली, 'पशुपति ! मैं तुमसे विनती करती हूं कि तुम इस दुर्बुद्धि का परित्याग करो।'

पशुपति सिर झुकाए हुए थे। उस समय राज्याकांक्षा और मनोरमा उनके समक्ष खड़ी थीं। राज्य प्राप्त करने से मनोरमा को खोना पड़ता था। इसे भी वह सहन नहीं कर सकते थे। उनका चित्त व्याकुल हो उठा। वह अधीर हो उठे। मनोरमा को प्राप्त करके भिक्षा मांगनी भी अच्छी थी। उनके मन में यही इच्छा होने लगी, परन्तु फिर सोचने लगे, 'ऐसा होने से लोकनिन्दा होगी, कलंक लगेगा, जातिच्युत होना होगा, सब कुछ नष्ट हो जाएगा।' पशुपति मौन बने रहे। वह कोई उत्तर न दे सके।

मनोरमा बोली, 'सुनो पशुपति ! तुमने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया। मैं चली, परन्तु प्रतिज्ञा करती हूं कि विश्वासघाती के साथ इस जन्म में मेरी फिर कभी भेंट न होगी।'

मनोरमा ने देखा पशुपति रो पड़े।

मनोरमा ने लौटकर पशुपति का हाथ पकड़ लिया। पशुपति ने उसके मुंह की ओर देखा तो पाया कि अब वह गम्भीर मुख-मुद्रा वाली भवानी नहीं थी। एक मुग्ध यौवना उनका हाथ अपने हाथ में लिए आंखों से अश्रु बरसा रही थी। वह आंखें पोंछकर बोली, 'पशुपति ! रोते क्यों हो ?'

'तुम्हारी बात पर रो रहा हूं।'

'मैंने क्या कहा ?'

'तुम मुझे त्यागकर जा रही हो।'

'अब मैं ऐसा न करूंगी।'

'तुम मेरी राजमहिषी होगी ?'

'होऊंगी।'

पशुपति आनन्दविभोर हो उठे। दोनों आंखों में आंसू भरे एक-दूसरे की आरे देखते हुए बैठे रहे। फिर मनोरमा वहां से उठकर चली गई।

9

बावरी के किनारे से हेमचन्द्र मनोरमा के साथ यवन की खोज में चले थे। मनोरमा ने हेमचन्द्र को पशुपति का घर कुछ दूर से दिखाकर कहा था, 'सामने देख रहे हो?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'देख रहा हूं।'

'वह यवन इसी में गया है।'

'उनके पास उसके जाने का क्या प्रयोजन ?'

'तुम यहीं वृक्ष की ओट में रहो। यवन इसी मार्ग से आएगा।'

'तुम कहां जाओगी ?'

'मैं भी इसी महल में जाऊंगी।'

हेमचन्द्र मनोरमा का आचरण देखकर विस्मित हुए। वह पास के एक वृक्ष की ओट में छिप गए। मनोरमा गुप्त राह से महल में चली गई थी।

कुछ देर पश्चात शान्तशील पशुपति के घर जा रहा था। उसने हेमचन्द्र को वृक्ष की ओट में छिपा देखा। वह उसके पास गया। वह हेमचन्द्र को चोर समझकर बोला, 'तुम कौन हो ? यहां क्या कर रहे हो ? वह फिर हेमचन्द्र को अलंकारों से आभूषित देखकर बोला, 'आप कौन हैं ? यहां क्या कर रहे हैं ?'

'मैं यहां यवन को खोज रहा हूं।'

'यहां यवन कहां है ?'

'वह इस महल में गया है।'

'इस महल में क्यों गया है वह ?'

'यह मैं नहीं जानता कि वह वहां क्यों गया है ?'

'यह महल किसका है ?'

'यह भी मैं नहीं जानता।'

'फिर आपने कैसे जाना कि इसमें यवन ने प्रवेश किया है ?'

'इससे तुम्हारा क्या सम्बन्ध ?'

'यह घर मेरा है। यदि यवन इसमें गया है तो निश्चय ही वह कोई अनिष्ट करने गया है। आप योद्धा और यवन-शत्रु जान पड़ते हैं। मेरे साथ चलिए। हम दोनों मिलकर उसे पकड़ लेंगे।'

हेमचन्द्र प्रसन्नतापूर्वक उसके साथ चल पड़े। शान्तशील ने सिंहद्वार से पशुपति के घर में प्रवेश किया और एक कोठरी में जाकर बोला, 'इस कोठरी में मेरा खजाना है। आप इसके पहरे पर रहें। मैं उसका पता लगाकर अभी आता हूं।'

यह कहकर शान्तशील ने कोठरी से निकलकर कोठरी का द्वार बन्द कर दिया। हेमचन्द्र उसके जाल में फंस गए।

मनोरमा पशुपति के पास से सीधी चित्र-गृह में गई। पशुपति और शान्तशील की बातचीत से उसे हेमचन्द्र के बन्दी होने का ज्ञान हो गया था। चित्र-गृह का द्वार खोलकर वह उससे बोली, 'हेमचन्द्र ! तुरन्त कोठरी से बाहर निकलो।'

हेमचन्द्र कोठरी से बाहर निकल आए। हेमचन्द्र ने मनोरमा से पूछा, 'मुझे बन्दी क्यों बनाया था ?'

'यह पीछे कहूंगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जिस व्यक्ति ने मुझे बन्द किया था, वह कौन था ?'

'शान्तशील।'

'शान्तशील कौन है ?'

'गुप्तचर।'

'क्या यह उसी का महल है।'

'नहीं। यह उसका महल नहीं है।'

'तब यह महल किसका है ?'

'यह सब भी फिर बताऊंगी।'

'यवन कहां गया ?'

'वह अपनी छावनी में चला गया ?'

'छावनी में कितने यवन हैं ?'

'पच्चीस हजार।'

'उनकी छावनी कहां है ?'

'महावन में।'

'महावन कहां है ?'

'नगर से उत्तर-दिशा में।'

हेमचन्द्र कुछ सोचने लगे। वह चिन्तानिमग्न हो गए।

'सोचो क्या तुम उन लोगों के साथ युद्ध करोगे ?'

'पच्चीस हजार के साथ अकेले व्यक्ति का युद्ध क्या सम्भव है ?'

'तब क्या करोगे ? घर लौट जाओगे ?'

'अभी घर न जाऊंगा।'

'फिर कहां जाओगे ?'

'महावन में।'

'जब युद्ध ही न करोगे तो महावन में जाने से क्या लाभ ?'

'यवनों को देखने ?'

'उन्हें देखने से क्या लाभ होगा ?'

'देखकर यह समझूंगा कि किस उपाय से उन सबका वध करूं।'

मनोरमा भौंचक्की-सी रह गई। वह बोली, 'पच्चीस हजार आदमियों को मारोगे? कैसी विनाशक बात है।'

'मनोरमा ! तुम्हें यह सूचना कहां से प्राप्त हुई ?'

'और भी समाचार हैं। आज तुम्हें मारने के लिए तुम्हारे घर पर डाकू आएंगे। वहां न जाना।'

यह कहकर मनोरमा चल पड़ी।

हेमचन्द्र ने अपने महल पर लौटकर अपना घोड़ा लिया और उस पर सवार होकर वह महावन की ओर चले। नगर पार करके मैदान में पहुंचे तो उनके दाहिने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्धे पर एक तीर आकर लगा। उन्हें अपने पीछे घोड़ों की टापें सुनाई दीं। उन्होंने देखा कि तीन सवार आ रहे थे।

हेमचन्द्र उनकी प्रतीक्षा करने लगे। वे उनके निकट आ गए। हेमचन्द्र ने भाला उठाकर तीरों के वारों को एक ही बार में काट दिया।

तीनों सवार चुप ही रहे। वे परस्पर मंत्रणा करने लगे। तभी हेमचन्द्र ने उनमें से एक पर एक तीर छोड़ा। तीर उसके ललाट में घुसा और वह उसी समय घोड़े से जमीन पर गिर पड़ा।

अन्य दोनों ने अपने घोड़ों को चाबुक लगाया। वे अपने भाले तानकर हेमचन्द्र पर दौड़े। आक्रमणकारियों ने हेमचन्द्र के घोड़े को लक्ष्य बनाया। एक भाला खाली गया। दूसरे ने घोड़े की गर्दन उतार दी। चोट खाकर घोड़ा जमीन पर गिर पड़ा।

हेमचन्द्र घोड़े से कूदकर जमीन पर खड़े हो गए। उन्होंने पलक मारते भाला उठाकर कहा, 'यह शूल शत्रु का खून पिए बिना वापस न लौटेगा। उनकी बात समाप्त होते-होते उससे छिपकर दूसरा सवार भी जमीन पर गिर पड़ा।

यह देखकर तीसरा सवार भाग खड़ा हुआ। वह व्यक्ति शान्तशील था।

हेमचन्द्र ने तब अपने कन्धे का तीर निकाला। तीर निकलते ही खून की धारा बह चली। अधिक खून बहने से हेमचन्द्र दुर्बल हो गए। ऐसी दशा में यवनों की छावनी तक जाना कठिन था। उनका घोड़ा मर गया था। वह दुःखी मन से वापस लौटने लगे।

मैदान पार करते-करते हेमचन्द्र का बदन बहुत शिथिल होने लगा। उनमें चलने की शक्ति न रही। उन्होंने बड़े कष्ट से नगर में प्रवेश किया। वह एक कुटी के पास वट-वृक्ष के नीचे बैठ गए। सवेरा हो रहा था। हेमचन्द्र की आंखों के सामने अंधकार छा गया था। उन्होंने वृक्ष से पीठ लगा ली। उनकी आंखें मुंद गईं और चेतना जाती रही। उन्होंने स्वप्न में सुना, कोई कुछ गा रहा था।

जिस कुटी के पास हेमचन्द्र अचेत पड़े थे, उसमें एक रंगरेज रहता था। कुटी में तीन कोठरियां थीं। एक में रसोई, दूसरे में स्त्री, बाल-बच्चे और तीसरी में रंगरेज की कन्या रत्नमयी और दो स्त्रियां सोई हुई थीं। वे दो स्त्रियां मृणालिनी और गिरिजाया थीं।

तीनों स्त्रियां सवेरे जगीं। रत्नमयी ने घर से बाहर जाकर गिरिजाया को पुकारा, 'सखी !'

'क्या है री ?'

तभी रत्नमयी घबराई हुई अन्दर आई। वह बोली, 'सखी ! जरा देख तो। हमारे बरगद के नीचे कौन सो रहा है ? बड़ा ही विचित्र पुरुष है यह तो !'

गिरिजाया कुटी के द्वार पर देखने आई। मृणालिनी ने भी कुटी के द्वार पर आकर देखा। दोनों देखते ही धक्क-सी रह गईं।

मृणालिनी का हृदय-सागर उछल पड़ा। वह गिरिजाया से चिपटकर रह गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरिजाया आनंदविभोर होकर गा उठी।

संगीत की ध्वनि ने हेमचन्द्र के कानों में प्रवेश किया। मृणालिनी बोली, 'चुप राक्षसी ! हम एक-दूसरे को देख न सकेंगे। देख वह जग गए हैं।'

तभी उसकी दृष्टि उनके बदन से बहते हुए रक्त पर पड़ी। बोली, 'इनके बदन पर इतना खून क्यों दिखाई दे रहा है ? चलो मैं भी चलती हूं।' मृणालिनी के कदम आगे बढ़ गए।

हेमचन्द्र की नींद खुल गई थी। वह भाला टेककर उठे और धीरे-धीरे घर की ओर चल दिए।

रत्नमयी ने पूछा, 'यह तुम्हारे कौन हैं ?'

'भगवान ही जाने।'

कुछ विश्राम करके हेमचन्द्र कुछ सशक्त हो गए। रक्त-प्रवाह भी कुछ कम हो गया। वह भाला टेकते हुए अपने घर लौट गए।

मनोरमा द्वार पर खड़ी थी।

मृणालिनी और गिरिजाया ने ओट में रहकर मनोरमा को देखा।

मनोरमा को देखकर मृणालिनी ने मन में सोचा, 'राजपुत्र यदि इस रूपसी के वशीभूत हो गए तो मेरा सुख समाप्त हुआ।'

गिरिजाया ने सोचा, राजपुत्र यदि इसके रूप पर मुग्ध हैं तो मेरी मालकिन का भाग्य फूट गया।'

'मनोरमा ! इस प्रकार क्यों खड़ी हो ?'

मनोरमा ने कोई उत्तर नहीं दिया। हेमचन्द्र ने फिर बुलाया, 'मनोरमा।'

फिर भी उसने कोई उत्तर नहीं दिया। हेमचन्द्र ने देखा कि उसकी आंखें आकाश की ओर लगी हुई थीं।

हेमचन्द्र फिर बोले, 'क्या हुआ मनोरमा ?'

तब मनोरमा ने धीरे-धीरे हेमचन्द्र की ओर देखा और कुछ देर देखती रही। बाद को उसकी दृष्टि हेमचन्द्र के खून से लथपथ कपड़ों पर पड़ी। मनोरमा विस्मित होकर बोली, 'यह सब क्या है हेमचन्द्र ! यह खून कैसा है ? क्या तुम घायल हो गए हो?'

हेमचन्द्र ने अपने कन्धे का घाव दिखाया।

मनोरमा हेमचन्द्र का यह हाल देखकर एक घड़ा गंगाजल भरकर लाई और हेमचन्द्र के कपड़े उतरवाकर उनका बदन धो डाला। फिर घाव पर औषधि लगाई।

वह बोली, 'हेमचन्द्र ! तुम सारी रात जगे हो, अब सो जाओ ?'

हेमचन्द्र ने कहा, 'मैं निद्रा के भाव से बहुत कातर हो रहा हूं।'

मृणालिनी मनोरमा का काम देखकर चिन्तित हृदय होकर गिरिजाया से बोली, 'यह कौन है गिरिजाया ?'

'नाम तो सुना इसका मनोरमा है।'

'यह क्या इनकी मनोरमा है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुम क्या समझती हो ?'

'मैं सोचती हूं, यही भाग्यवती है। मैं इनकी सेवा न कर सकी और इसने की। जिस काम के लिए मेरा हृदय जल रहा था, उसे इसने पूर्ण किया। देवता इसे आयुष्मती करें गिरिजाया ! घर चलो, मेरा यहां रहना अब उचित नहीं है। तुम इसी मुहल्ले में रहती हो, समाचार ले आना कि यह कैसे हैं।'

10

गिरिजाया मृणालिनी को विदा कर, महल के उपवन का चक्कर काटने लगी। उसने खिड़की से मुंह ऊंचा करके घर के भीतर देखा। एक कोठरी में उसने देखा हेमचन्द्र सो रहे थे। मनोरमा उनकी शैय्या पर बैठी थी। गिरिजाया उसी खिड़की के नीचे बैठ गई। पहली रात को उसी खिड़की में हेमचन्द्र ने यवन देखा था।

गिरिजाया खिड़की के नीचे बैठकर मनोरमा और हेमचन्द्र की बातें सुनना चाहती थी, परन्तु हेमचन्द्र सोए हुए थे। उनकी कोई बात-चीत नहीं हो रही। वह सोचने लगी कि दिग्विजय कहां हैं ? वही मिल जाता तो उससे कुछ बातें कर लेती, परन्तु वह काम में व्यस्त था। गिरिजाया आप ही अपने मन में बातें करने लगी। गिरिजाया ही प्रश्न करने वाली थी और वही उत्तर देने वाली।

'अरी, तू कौन बैठी है ?'

'मैं गिरिजाया बैठी हूं।'

'तू यहां क्यों बैठी है ?'

'मैं मृणालिनी के लिए बैठी हूं।'

'मृणालिनी तेरी क्या लगती है ?'

'कोई नहीं। कुछ लगती है।'

'उसके लिए तुझे इतना सिरदर्द लेने की क्या आवश्यकता है ?'

'मेरा और काम ही क्या है ?''

'तू मृणालिनी के लिए क्यों आई है ?'

'यहां एक और पर कटी चिड़िया है।'

'क्या चिड़िया को तू पकड़ना चाहती है ?'

'यदि पर कटी है तो पकड़ने से क्या लाभ ?'

'फिर बैठी क्यों है ?'

'यह देखने को कि पर कटी है या नहीं।'

'पर कटी है या नहीं, यह जानकर क्या करेगी ?'

'मृणालिनी हर रात को छिप-छिपकर रोती है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मर भिखारिणी ! यदि मृणालिनी ने चिढ़कर पिंजरा तोड़ डाला तो क्या होगा?''

'ठीक कहती है सखी ! यह वह कर सकती है।'

'तब यहां बैठकर घूप में क्यों मरती है ?'

'माथा बहुत दुःख रहा है। यह लड़की बड़ी मूर्ख है ? मूर्ख न होती तो अब तक बोलती नहीं ? औरतों का मुंह कभी बन्द नहीं रहता।'

कुछ देर बाद गिरिजाया ने देखा कि हेमचन्द्र की नींद खुली।' मनोरमा ने उनसे पूछा, 'क्या तुम्हारी नींद समाप्त हो गई ?'

'बहुत अच्छी नींद आई।'

'अब बताओ तुम्हें चोट कैसे लगी ?'

हेमचन्द्र ने पूरी घटना संक्षेप में कह सुनाई। उसे सुनकर मनोरमा बहुत दुःखी हुई।

हेमचन्द्र बोले, तुम्हारा प्रश्न समाप्त हुआ। अब मेरी बात का उत्तर दो। कल रात को मेरा साथ छोड़कर जाने के बाद जो कुछ हुआ वह सब कहो।'

'मनोरमा अस्फुट स्वर में बोली। गिरिजाया उसे सुन न सकी। वह यही समझी कि चुपचाप कुछ बातें हुई।'

और कोई बात न सुनकर गिरिजाया उठी। उसने अपने मन से ही कहा।'

'क्या समझी ?'

'केवल कुछ लक्षण।'

'कैसे लक्षण ?'

गिरिजाया गिनाने लगी, लड़की आश्चर्यजनक सुन्दरी है। अग्नि के समक्ष क्या कुछ रह सकता है ? मनोरमा हेमचन्द्र से प्रेम करती है। न करती तो इतना आदर क्यों करती ? दोनों एक जगह रहते हैं, एक साथ रात को घूमते हैं। चुपके-चुपके बातें करते हैं।' फिर अपने मन से कुछ पूछा।

'क्या मनोरमा हेमचन्द्र से प्रेम करती है ?'

'बिना हवा के क्या पानी में लहरें उठती हैं ? यदि कोई मुझे प्रेम करे तो मैं भी उससे प्रेम करूंगी।'

'मृणालिनी भी तो हेमचन्द्र से प्रेम करती है। तब हेमचन्द्र मृणालिनी को प्रेम करेंगे ही।'

'सही है, परन्तु मृणालिनी अनुपस्थित है और मनोरमा हर समय उपस्थित है।'

यह सोचती हुई गिरिजाया धीरे-धीरे महल के द्वार पर आ खड़ी हुई। वहां उसने एक गीत गाकर भिक्षा मांगी।

संगीत की ध्वनि हेमचन्द्र के कानों में पहुंची। संगीत के स्वर ने स्वप्न के समान उसके कानों में प्रवेश किया। गिरिजाया बराबर गाती जा रही थी।

हेमचन्द्र बोले, 'यह क्या मनोरमा ? यह तो गिरिजाया का स्वर है, मैं चला।' यह कहकर हेमचन्द्र शैय्या से उतर पड़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हेमचन्द्र गिरिजाया के सामने जा पहुंचे। वह घबराकर बोले, गिरिजाया ! यह कौन है, गिरिजाया ? तुम यहां कहां ? तुम क्यों आई ? तुम इस देश में कब आई?'

गिरिजाया ने कहा, मैं यहां बहुत दिन से हूं। यह कहकर उसने गाना प्रारम्भ किया।

हेमचन्द्र बोले, 'तुम इस देश में क्यों आई ?'

गिरिजाया बोली, 'भिक्षा मांगने के लिए। राजधानी में अधिक भिक्षा मिलने के विचार से आई हूं।' वह फिर गाने लगी।

हेमचन्द्र गीत की ओर ध्यान न देकर बोले, 'मृणालिनी कैसी है ?' गिरिजाया गाती रही।

हेमचन्द्र बोले, 'अपना गाना बन्द कर। मेरी बात का उत्तर दे। मृणालिनी कैसी है ? तुम देखकर आई हो उसे ?'

गिरिजाया बोली, 'मैं मृणालिनी को देखकर नहीं आई। मेरा यह गाना आपको अच्छा नहीं लगता तो दूसरा गाना गाती हूं।'

हेमचन्द्र बोले, गिरिजाया! तुमसे विनती करता हूं कि गाना छोड़ो। मुझसे मृणालिनी का समाचार कहो।'

'क्या कहूं उनका समाचार ?'

'तुम मृणालिनी को देखकर क्यों नहीं आई ?'

गिरिजाया, 'वह गौड़-नगर में नहीं है।'

'क्यों ? कहां चली गई ?'

'मुथरा।'

'मथुरा ! मथुरा किसके साथ गई ? कैसे गई ? क्यों गई ?'

'उनके पिता किसी प्रकार पता पाकर आ गए। शायद उसका विवाह होने वाला है। वह विवाह करने के लिए उन्हें ले गए हैं।'

'क्या ? क्या करने ?'

'मृणालिनी का विवाह करने को उसके पिता उन्हें ले गए हैं।'

हेमचन्द्र ने मुंह फेर लिया। गिरिजाया उनका मुंह देख न सकी। हेमचन्द्र के कंधे के घाव से खून बह रहा था। उसे भी वह न देख सकी। उसने पहिले की तरह गाना आरम्भ किया।

हेमचन्द्र बोले, 'गिरिजाया ! तुम्हारा समाचार शुभ है। यह सब अच्छा ही हुआ।'

यह कहकर हेमचन्द्र घर में चले गये। गिरिजाया के सिर पर आकाश टूट पड़ा। गिरिजाया समझी कि झूठे ही मृणालिनी के विवाह की बात कहकर वह हेमचन्द्र की परीक्षा लेगी। वह समझी थी कि मृणालिनी का विवाह होने वाला है, यह सुनकर हेमचन्द्र बहुत कातर होंगे, परन्तु वह सब तो कुछ नहीं हुआ। गिरिजाया ने सिर पीटकर सोचा, 'हाय मैंने यह क्या किया ? मैंने क्यों व्यर्थ झूठी बात कही। यह सुनकर हेमचन्द्र सुखी हुए कहते हैं कि समाचार शुभ है। गिरिजाया क्या समझती कि जिस क्रोध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से हेमचन्द्र मृणालिनी की लिए गुरुदेव के प्रति शर सन्धान करने को उद्यत हुए थे, वही दुर्जय क्रोध उनके हृदय में उभर आया था।

गिरिजाया इस बात को समझ न सकी। वह घर की ओर चली।

11

उसी दिन माधवाचार्य पर्यटन से लौटे। उन्होंने अपने प्रिय शिष्य हेमचन्द्र से भेंट की।

अपने भ्रमण का वृत्तान्त कहकर माधवाचार्य बोले, 'इतनी मेहनत के पश्चात् इस देश के आधीन राजाओं में से अनेकों को रण-क्षेत्र में ससैन्य राजा की सहायता के लिए राजी कर सका हूं। शीघ्र ही सब आकर नव-द्वीप में एकत्रित होंगे।'

'वे सब यदि आज ही यहां न पहुंचे तो सब व्यर्थ हो जाएगा। यवन-सेना आ गई है। वह महावन में ठहरी है। वह आज या कल आक्रमण करेगी।'

यह सुनकर माधवाचार्य कांपकर बोले, 'गौड़ेश्वर की क्या तैयारी है ?'

'कुछ नहीं। राजा के पास तक यह समाचार पहुंचा भी नहीं है।'

'तुमने राजा के सामने यह समाचार क्यों नहीं रखा ?'

'समाचार पाने के बाद ही मार्ग में डाकुओं द्वारा घायल होकर मैं सड़क पर पड़ा था। अभी घर लौटकर कुछ विश्राम किया है। दुर्बलता के कारण राजा के पास न जा सका। अब जाता हूं।'

हेमचन्द्र बोले, 'प्रभो ! आप गौड़ तक गए थे, कुछ सुना ?'

माधवाचार्य बोले, 'गया था। तुम मृणालिनी का समाचार पूछ रहे हो ? मृणालिनी वहां नहीं है।'

'कहां गई ?'

'यह मैं नहीं जानता। कोई समाचार नहीं मिला।'

'क्यों गई ?'

'वत्स ! ये बातें युद्ध के बाद कहूंगा।'

'वृतान्त सुनाने से यह आशंका न करिए कि मैं मर्म-पीड़ा से कातर हो जाऊंगा। मैंने भी कुछ सुना है। आप जो जानते हैं उसे निःसंकोच मेरे सामने कहें।'

माधवाचार्य से हृषीकेश ने अपनी बृद्धि के अनुसार मृणालिनी का वृत्तान्त कहा था। उसी को माधवाचार्य ने सच जान लिया था। माधवाचार्य स्त्री-जाति के अनुरागी नहीं थे। स्त्री-चरित्र को समझते भी न थे। इस समय हेमचन्द्र की बात सुन उन्होंने समझा कि हेमचन्द्र ने उस हाल को सुनकर मृणालिनी की कामना छोड़ दी हैं। इसलिए उन्होंने हृषीकेश का कहा हुआ कुल समाचार हेमचन्द्र को सुनाया।

हेमचन्द्र ने आंखें चढ़ाकर चुपचाप वह समाचार सुना। माधवाचार्य की बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाप्त होने पर वह कुछ भी न बोले।

माधवाचार्य बोले, 'हेमचन्द्र !' उन्हें कोई जवाब न मिला। वह फिर बोले, 'हेमचन्द्र' फिर भी उन्हें कोई उत्तर न मिला।

तब माधवाचार्य हेमचन्द्र का हाथ पकड़कर बोले, 'वत्स ! मेरे साथ बातें करो।'

हेमचन्द्र का मुंह देखकर माधवाचार्य भयभीत हो उठे। वह बोले, 'मुझसे बातें करो। क्रुद्ध हो तो प्रकट करो।'

हेमचन्द्र बोले, 'किसकी बात का विश्वास करूं ? हृषीकेश का ऐसा कहना है। भिखारिणी और कुछ कह गई है।''

'भिखारिणी कौन ? उसने क्या कहा है ?'

हेमचन्द्र ने संक्षेप में उत्तर दिया।

माधवाचार्य बोले, 'हृषीकेश की बात झूठ प्रतीत होती है।'

'परन्तु हृषीकेश की बात प्रत्यक्ष है।' इतना कहकर वह उठे और शूल को हाथ में लेकर इधर-उधर टहलने लगे।

'क्या सोच रहे हो ?'

हेमचन्द्र ने हाथ के शूल को दिखाकर कहा, 'मृणालिनी की इसी शूल द्वारा हत्या करूंगा।'

माधवाचार्य भयभीत होकर वहां से चले गए।

12

माधवाचार्य तीसरे प्रहर लौटे। वह समाचार लाए कि धर्माधिकारी ने कहा कि यवन-सेना आ गई, परन्तु मगध में विद्रोह की संभावना सुनकर यवन-सेनापति ने सन्धि की इच्छा प्रकट की है। कल वह अपना दूत भेजेंगे। दूत आने की अपेक्षा में युद्ध की तैयार नहीं की गई। यह समाचार देकर माधवाचार्य बोले, 'यह राजा धर्माधिकारी की बुद्धि से नष्ट होगा।

माधवाचार्य विदा हुए। संध्या को मनोरमा हेमचन्द्र के पास पहुंची। हेमचन्द्र को देखकर मनोरमा बोली, 'भाई ! आज तुम अनमने क्यों हो ?''

'मैं अनमना कैसे हूं ?'

'तुम्हारे मुख पर अंधकार है, क्रोध है। इतनी भौंहें क्यों चढ़ी हैं ? लगता है तुम रोए भी हो ?'

हेमचन्द्र ने मनोरमा के मुंह की ओर देखा। फिर आंखें झुका लीं। ऊंची खिड़की को ओर देखा और फिर मनोरमा के मुंह की ओर देखते रहे। मनोरमा समझ गई कि उस दृष्टि का कोई उद्देश्य नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरमा बोली, 'हेमचन्द्र ! तुम क्यों दुःखी हो ? क्या हुआ है ? मुझसे छिपाओ नहीं।'

मनोरमा पहिले कुछ न बोली। फिर बोली, 'कुछ नहीं ? व्यर्थ आंखों में आसूं आ गए। वह फिर हेमचन्द्र के मुंह की ओर देखकर बोली, 'मुझसे क्यों न कहोगे? मै। तुम्हारी बहिन हूं।'

मनोरमा के मुंह के भाव, दृष्टि और मधुरता से प्रभावित होकर हेमचन्द्र का हृदय पिघल गया। वह बोले, 'मुझे जो यंत्रणा है, वह बहिन के सामने कहने योग्य नहीं है।'

'तब मैं बहिन नहीं हूं।'

हेमचन्द्र ने कोई उत्तर नहीं दिया, फिर भी आशा भरी दृष्टि से वह उनकी ओर देखती रही। वह बोली, 'मैं तुम्हारी कोई नहीं हूं ?'

'वह बहिन के सुनने योग्य नहीं है।'

हेमचन्द्र का कण्ठ-स्वर बहुत भारी था। वह दीनता से भरा था। हेमचन्द्र का स्वर परिवर्तित हुआ और आंखों से आग निकलने लगी। उसने होंठ चबाते हुए मनोरमा से कहा, 'मुझे दुःख काहे का ? कुछ भी दुःख नहीं। मैंने मणि के भ्रम में काले सांप को गले में धारण किया था, अब उसे फेंक दिया।'

मनोरमा हेमचन्द्र की ओर एकटक देख रही थी। उसका स्वर मधुर था। मनोरमा बोली, 'समझ गई। तुमने बिना समझे प्रेम किया था, उसी का यह परिणाम हुआ।'

'प्रेम करता।' कहते हुए हेमचन्द्र का चेहरा आंसुओं से भीग गया।

मनोरमा बोली, 'यह क्या ? अपनी प्रतारणा करने वाले का सर्वनाश होता है।'

हेमचन्द्र विस्मित होकर बोले,"मैंने क्या प्रतारणा की है ?"

'प्रेम करता क्या, तुम प्रेम करते हो। नहीं तो रोते क्यों ? क्या तुम्हारे स्नेह-पात्र के अपराधी होने से तुम्हारा प्रेम समाप्त हो गया ? तुम्हें ऐसी समझ किसने दी ?' मनोरमा की विचारशील मुखकान्ति उसके चेहरे पर खिल उठी। उसकी आंखे चमकने लगी। उसका कंठ स्वर स्पष्ट हो गया। वह बोली, 'जो तुम कर रहे हो वह वीर दम्भकारी पुरुषों का दर्प मात्र है। अहंकार से आग नहीं बुझती ? तुम बालू के बांध से गंगा के वेग को नहीं रोक सकते। हां कृष्ण ! सभी मनुष्य प्रतारक हैं।'

हेमचन्द्र ने विस्मय से सोचा, 'मैं एक दिन मनोरमा को बच्ची समझता था।

मनोरमा बोली, 'तुमने पुराण पढ़े हैं ? मैंने सुना है भगीरथ गंगा को ले आए। एक मतवाला हाथी उसमें जाकर बह गया। इसका क्या अर्थ है ? गंगा प्रेम-प्रवाह है। वह प्रभु के चरण-कमल से निकली है। वह शिव की जटाओं में विहार करती है। जो मृत्यु को जीत सकता है, वही प्रणय के वेग में जाता है। प्रणय एक पथ का आलम्बन कर 'शतमुखी हो जाता है। वह अन्त में सागर बन जाता है। उसमें संसार के सब जीव लय हो जाते है।'

'तो क्या प्रणय में पात्र-कुपात्र नहीं होते ? क्या पापी से भी प्रेम करना होगा?'

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'करना चाहिए। प्रणय में पात्र-कुपात्र कुछ नहीं है। प्रेम उत्पन्न होते ही प्रेम को यत्न से रखना चाहिए, क्योंकि प्रणय अमूल्य है। अच्छे भाई से कौन प्रेम नहीं करता? जो बुरा है, मैं उससे ही अधिक प्रेम करती हूं, परन्तु मैं तो पगली हूं।'

'मनोरमा ! यह सब तुम्हें किसने सिखाया ? तुम्हारा उपदेशक अलौकिक व्यक्ति हैं।''

'वह सर्वज्ञानी हैं, परन्तु...'

'परन्तु क्या ?'

'वह अग्नि के रूप में प्रकाशित होकर जलाते भी हैं।' यह कहकर मनोरमा मुंह नीचा किये चुप हो गई।

'मनोरमा ! तुम्हारा मुंह देखकर और बातें सुनकर मुझे जान पड़ता है कि तुमने भी प्रेम किया है। शायद तुमने अग्नि के साथ जिसकी तुलना की है, वही तुम्हारा प्रेमी है।

मनोरमा चुप रही। हेमचन्द्र फिर बोले, 'यदि यह सत्य है तो मेरी एक बात सुनो। स्त्रियों के लिए सतीत्व से अधिक और धर्म नहीं है। सती न होना शूकरी से भी अधम है। न केवल कर्म वरन्! पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष की चिन्ता भी सतीत्व में विध्न डालता है। तुम विधवा हो, यदि पति के अतिरिक्त अन्य किसी को मन में स्थान दोगी तो तुम कलंकित होगी। सावधान रहो। यदि किसी ओर तुम्हारा चित्त गया हो तो उसे भूल जाओ।'

मनोरमा हंस पड़ी। वह मुंह ढककर हंसने लगी। उसकी हंसी बन्द ही नहीं होती थी। हेमचन्द्र कुछ रुष्ट हुए। वह बोले, 'मनोरमा तुम हंसती क्यों हो ?'

'भाई गंगा-किनारे जाकर खड़े हो। गंगा से कहो, गंगे ! तुम पर्वत पर लौट जाओ।'

'क्यों ?' 'स्मृति इच्छाधीन नहीं है राजपुत्र ! काले सर्प को अपने मन में स्थान देने में क्या सुख है ? फिर भी तुम क्यों उसे भूल नहीं रहे हो ?'

'उसके काटने की ज्वाला से जल रहा हूं।'

'यदि वह तुम्हें न काटे तो क्या उसे भूल जाओगे ?'

हेमचन्द्र ने कोई उत्तर न दिया। मनोरमा बोली, 'तुम्हारी फूलों की माला काला सांप हो रही है, तब भी तुम उसे भूल नहीं पा रहे। मैं अपने फूलों के हार को क्यों तोड़ूं ?'

हेमचन्द्र बोले, 'क्या तुम अन्याय नहीं कर रही हो ? विस्मृति अपने आधीन नहीं हैं। लोग बड़प्पन से अंधे होकर जो उपदेश देते हैं वह हास्यास्पद है। कोई यह नहीं कहता, तुम अर्थ-चिन्ता छोड़ दो, यश को छोड़ दो, ज्ञान की चिन्ता छोड़ दो, तब क्यों कहते हो कि प्रेम को छोड़ दो। क्या प्रेम इन सबसे तुच्छ है ? वह धर्म से छोटा है इसलिए धर्म के लिए त्याग करना चाहिए। स्त्री के लिए परम धर्म सतीत्व है। इसलिए कहता हूं कि यदि हो सके तो तुम प्रेम का त्याग करो।'

'मैं अबला, ज्ञान हीना, विवश, क्या जानूं कि धर्माधर्म क्या होता है ? मैं तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल इतना ही जानती हूं कि बिना धर्म के प्रेम उत्पन्न ही नहीं हो सकता।'

'सावधान मनोरमा ! यह वासना और भ्रान्ति केवल अधर्म है। विचार कर कहो, यदि तुम धर्म से एक की पत्नी हो और मन से दूसरे की हो जाओ तो क्या यह उचित होगा ?'

मनोरमा ने तलवार हाथ मे लेकर कहा, 'भाई हेमचन्द्र ! तुम्हारी ढाल पर किसका चमड़ा है ? हेमचन्द्र हंसे। उन्होंने मनोरमा के मुंह की ओर देखा तो एक अनजान बालिका सामने खड़ी थी।

13

गिरिजाया घर लौटकर गई तो उसने निश्चय किया कि वह हेमचन्द्र के नवीन अनुराग की बात मृणालिनी के सामने न कहेगी। मृणालिनी उसके आने की प्रतीक्षा में बैठी थी। उसने गिरिजाया को देखते ही पूछा, 'गिरिजाया ! तुमने क्या देखा ? हेमचन्द्र कैसे हैं ?'

'अच्छे हैं ?'

'क्यों, तुम इस तरह क्यों बोल रही है ? तेरी बातों में उत्साह क्यों नहीं है ?'

'यह कैसे जाना ?'

'गिरिजाया ! मुझे धोखा न दे। क्या हेमचन्द्र अभी अच्छे नहीं हुए ? मुझसे स्पष्ट कह।'

गिरिजाया हंसकर बोली, 'तुम क्यों व्यर्थ परेशान होती हो ? उनके शरीर में कोई क्लेश नहीं है। वह उठकर घूमने-फिरने लगे हैं।'

'मनोरमा के साथ उनकी कोई बातचीत सुनी ?'

'सुनी।'

'क्या सुना ?'

गिरिजाया ने बताया जो हेमचन्द्र ने कहा था। केवल हेमचन्द्र के साथ मनोरमा के घूमने और चुपके-चुपके बातें करने के विषय को छिपा लिया।

मृणालिनी बोली, 'तुमने हेमचन्द्र से भेंट की ?'

'हां की।'

'उन्होंने क्या कहा ?'

'तुम्हारा हाल पूछा ?'

'तुमने क्या कहा ?'

'मैंने कहा कि तुम अच्छी हो।'

'यह भी कहा कि मैं यहां आई हूं ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नहीं।'

'गिरिजाया ! तुम उत्तर देने में इधर-उधर कर रही हो। तुम्हारा मुंह सूखा है। तुम मेरी ओर देख नहीं रही हो। तुम कोई अमंगलमय समाचार मुझसे छिपा रही हो। मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं हो रहा। भाग्य में चाहे जो भी हो, मैं स्वयं हेमचन्द्र से मिलने जाऊंगी। हो सके तो मेरे साथ चलो, नहीं तो मैं अकेली ही जाऊंगी।'

यह कहकर मृणालिनी सड़क की ओर चल पड़ी। गिरिजाया उसके पीछे दौड़ी। कुछ दूर पर उसका हाथ पकड़कर बोली, 'तुम लौट जाओ। मैंने जो छिपाया है, उसे प्रकट किये देती हूं।'

मृणालिनी घर लौट आई। तब गिरिजाया ने जो कुछ छिपाया था, उसे विस्तार से कह सुनाया।

गिरिजाया ने हेमचन्द्र को ठगा था, परन्तु वह मृणालिनी को न ठग सकी।

मृणालिनी बोली, 'गिरिजाया ! यह बात उन्होंने क्रोध से कही होगी, सरल भाव से नहीं।'

तब गिरिजाया को भी संशय हुआ। वह बोली, 'यह बात सम्भव हो सकती है।'

मृणालिनी बोली, 'तुमने यह कहकर ठीक नहीं किया। इसका तुम्हें उपाय करना चाहिए। तुम भोजन करने जाओ। तब तक मैं पत्र लिखती हूं। तुम भोजन के पश्चात् यह पत्र लेकर उनके पास जाना।'

गिरिजाया भोजन करने चली गई। मृणालिनी ने पत्र में लिखा। गिरिजाया मिथ्यावादिनी है। जिस लिए उसने तुम्हारे समक्ष मेरे विषय में झूठ बात कहीं पूछने पर वह स्वयं तुम्हें विस्तार से सुनाएगी। जिस रात को तुम्हारी अंगूठी देखकर मैंने घर छोड़ा, उसी दिन मेरे लिए मथुरा का मार्ग बन्द हो गया था। मैं मथुरा न जाकर तुम्हें देखने के लिए नवद्वीप आई हूं। नव-द्वीप आकर भी मैंने तुमसे भेंट नहीं की, इसलिए कि जिससे तुम्हारी प्रतिज्ञा भंग न हो। अब मैं तुम्हें देखना चाहती हूं।'

गिरिजाया वह पत्र लेकर हेमचन्द्र के पास गई। मनोरमा से बातें करके हेमचन्द्र गंगा-दर्शन करने जा रहे थे। राह में गिरिजाया से उनकी भेंट हुई।

'तुम फिर क्यों आई ?'

'मैं पत्र लेकर आई हूं।'

'किसका पत्र है ?'

'मृणालिनी का।'

'यह पत्र तुम्हारे पास कैसे आया ?'

'मृणालिनी नव-द्वीप में ही है। मैंने मथुरा की बात आपसे झूठ कह दी थी।'

हेमचन्द्र ने पत्र बिना पढ़े टुकड़े-टुकड़े कर दिया। उन्हें वन में फेंककर बोले, 'मैं जानता हूं कि तुम झूठी हो। तुम जिस दुष्टा का पत्र लाई हो, हृषीकेश ने उसे घर से निकाल दिया है, यह मैं सुन चुका हूँ। मैं उस कुल्टा का पत्र न पढ़ूंगा। तू मेरे सामने से दूर हो जा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरिजाया चौंककर हेमचन्द्र के मुंह की ओर देखने लगी।

हेमचन्द्र सड़क किनारे के एक वृक्ष की शाख हाथ में लेकर बोले, 'दूर हो नहीं तो मारूंगा।'

गिरिजाया से वह सहा न गया। वह बोली, 'वीर पुरुष हो ! यही गौरव दिखाने यहां आए हो ? इसे तो मगध में बैठकर भी दिखा सकते थे। यवनों के जूते सहलाने और दीन-दुखियों की लड़कियों को छड़ी से पीटने के लिए क्या वहां स्थान कम था।'

गिरिजाया भी बात सुनकर हेमचन्द्र ने लज्जित होकर छड़ी फेंक दी, परन्तु गिरिजाया का क्रोध न गया। वह फिर बोली, 'तुम मृणालिनी से विवाह करोगे ? मृणालिनी तो दूर रही तुम मेरे योग्य भी नहीं हो।'

यह कहकर गिरिजाया चल पड़ी। हेमचन्द्र भिखारिणी का दर्पण देखकर चकित रह गए।

गिरिजाया ने लौटकर हेमचन्द्र का आचरण मृणालिनी से कहा।

इस बार उसने कुछ न छिपाया। वह सुनकर मृणालिनी ने कोई उत्तर न दिया। वह रोई भी नहीं। जिस दशा में बैठी थी, उसी दशा में बैठी रही। गिरिजाया को शंका हुई। वह मृणालिनी से बातचीत का समय न समझकर वहां से हट गई।

गिरिजाया बाबरी पर जाकर बैठ गई। गिरिजाया सीढ़ी पर बैठ कर धीरे-धीरे गाने लगी। धीरे-धीरे उसका संगीत-स्वर तीव्र हो गया।

गिरिजाया ने गाते-गाते देखा, उसके समक्ष मृणालिनी खड़ी थी। उसने देखा मृणालिनी रो रही थी। गिरिजाया प्रसन्न हुई ? वह समझ न पाई कि मृणालिनी की आंखों से आंसू बह रहे थे।

कुछ देर दोनों ही चुप रहीं। मृणालिनी कुछ भी न बोल सकी। गिरिजाया भी कुछ न पूछ सकी। अन्त में मृणालिनी बोली, गिरिजाया ! तुम्हें और एक बार जाना होगा।'

'फिर उस पाषाण-हृदय के पास जाऊं।'

'पाषाण कहो, या कुछ भी कहो, परन्तु सच यह है कि संसार में कौन अभ्रान्त है ? हेमचन्द्र पाषाण नहीं हैं। मैं स्वयं उनके पास जाऊंगी, तुम मेरे साथ चलो। तुम बहिन के समान मुझ पर स्नेह करती हो। तुमने मेरे लिए बहुत कुछ किया है। हेमचन्द्र बिना अपराध मेरा त्याग नहीं करेंगे। यह बात उनके मुंह से सुने बिना हृदय स्थिर नहीं हो सकता। यदि मैं स्वयं उनके मुंह से सुनूं कि मृणालिनी को उन्होंने कुल्टा समझकर त्याग दिया है, तो मैं इस प्राण का सहर्ष विसर्जन कर सकूंगी।'

'प्राण-विसर्जन ! यह क्यों मृणालिनी ?'

मृणालिनी ने कोई उत्तर न दिया। वह गिरिजाया के कंधे पर बांह रखकर रोने लगी। वह भी उसके साथ रो पड़ी।

हेमचन्द्र ने आचार्य की बात पर विश्वास करके मृणालिनी को दुश्चरित्र समझा। मृणालिनी का पत्र न पढ़कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला। उसकी दूती को मारने को उद्धत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए। इसका यह अर्थ नहीं कि वह मृणालिनी को प्रेम नहीं करते थे। वह मृणालिनी के लिए राज्य छोड़कर मथुरा गए थे। सुरु पर तीर चलाने को उद्यत हो गए थे। मृणालिनी के लिए गौड़ में इतने दिन ठहरे थे और आज हेमचन्द्र ने माधवाचार्य को शूल दिखाकर कहा था, 'मृणालिणी को इस शूल से मारूंगा।' क्या उनका स्नेह यहां पर समाप्त था ? वह अपनी कोठरी में शैय्या पर लेटे खुली खिड़की की ओर सिर किए राह पर देख रहे थे। वह रात की शोभा नहीं देख रहे थे। यदि कोई उनसे पूछता कि रात चांदनी हैं या अंधेरी, तो वह कुछ भी न बता पाते।

जो कभी रोया नहीं, उस पर कभी विश्वास नहीं किया जा सकता। न रोने वाला पृथ्वी के सुख को कभी नहीं भोग सकता।

हेमचन्द्र रो रहे थे। जिसे वह पापिष्ठा और हृदय में स्थान देने योग्य नहीं समझ रहे थे, उसी के लिए रो रहे थे ? वह मृणालिनी के प्रेमपूर्ण मुख तथा कार्यों की याद कर रहे थे। क्या वही मृणालिनी अविश्वासिनी हो गई। एक दिन मथुरा में वह उनके पास एक पत्र भेजने को व्यग्र थे, परन्तु उन्हें कोई वाहक न मिला। उन्होंने मृणालिनी को खिड़की में देखा। हेमचन्द्र ने एक पत्र लिखकर उसके पास खिड़की से फेंका। उसे पकड़ने को झुकने से उसके चोट लगी और कान का कुण्डल टूटकर गिर पड़ा था। मृणालिनी ने उधर देखा भी नहीं। उसने पत्र थाम लिया और उसकी पीठ पर लिखकर वापस कर दिया। उन्हें उसकी याद आई। वही मृणालिनी अविश्वासिनी हो, ऐसा सम्भव नहीं हो सकता। एक दिन मृणालिनी को बिच्छू ने काटा। मृणालिनी मरने की दशा में पड़ी थी। उसकी एक दासी दवा ले गई। उसी समय हेमचन्द्र ने कहलाया कि वह बाग में उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मृणालिनी दवा की प्रतीक्षा न कर, यंत्रणा को भूलकर बाग में आ पहुंची। हेमचन्द्र ने सोचा क्या वही मृणालिनी ब्राह्मण-कलंक व्योमकेश के कारण अविश्वासिनी हो गई ? यह कभी नहीं हो सकता। एक दिन हेमचन्द्र मथुरा गुरु-दर्शन के लिए जा रहे थे। वह मथुरा तक प्रहर रात तय करके बीमार हो गए। वह रात को एक धर्मशाला में पड़े रहे। किसी प्रकार यह समाचार मृणालिनी को मिला। मृणालिनी एक दासी को लेकर उसी रात को वहां पहुंची और रात को ही वापस आई। जब मृणालिनी धर्मशाला में पहुंची तो थककर चूर हो गई थी। उसके पैरों में छाले पड़ गए थे।

फिर अपने पिता के भय से वह उसी रात को लौटी। घर जाकर वह स्वयं बीमार हो गई। क्या वही मृणालिनी नीच व्योमकेश के लिए उनका त्याग कर सकती है ? क्या वह अविश्वासिनी है ? अविश्वासिनी मृणालिनी नहीं, जो इस बात पर विश्वास करे, वह अविश्वासी है, वह नराधम है, वह मूर्ख है। हेमचन्द्र सोच रहे थे, मैंने मृणालिनी का पत्र क्यों न पढ़ा ? यह क्यों नहीं मालूम किया कि वह नव-द्वीप में क्यों आई है ? पत्र के टुकड़े शायद वन में मिल जाएं। इसी आशा से वह वहां गए, परन्तु अंधकार में कुछ न मिला। हवा टुकड़ों को उड़ाकर जाने कहां ले गई थी।

फिर उन्होंने सोचा, आचार्य झूठी बात क्यों कहते ? आचार्य सत्यवादी हैं। वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झूठ नहीं बोलेंगे, परन्तु उन्होंने मन से कोई बात नहीं कही। मैंने दर्प से उनके मुंह से बातें निकलवाई। सम्भव है हृषीकेश ने उनसे झूठ बोला हो, परन्तु हृषीकेश ही झूठ क्यों बोलेंगे ? फिर मृणालिनी उनको छोड़कर नव-द्वीप क्यों आई ?

यह बात सोचकर हेमचन्द्र के मुंह पर कालिमा छा गई। उनके मस्तक पर पसीना आ गया। वह उठकर बैठ गए। उन्हें क्रोध आया, परन्तु तभी जब मृणालिनी के प्रेममय मुख की स्मृति आई तो वह शय्या पर गिर पड़े। वह तकिए में मुंह छिपाकर बच्चों की तरह रोने लगे। हेमचन्द्र इसी प्रकार रो रहे थे, तभी उनका द्वार खुला। पहिले गिरिजाया ने प्रवेश किया।

उन्होंने पूछा, 'तुम फिर क्यों आई हो ?'

'मैं मृणालिनी की दासी हूं। आपने मृणालिनी का त्याग किया है, परन्तु उन्होंने आपका त्याग नहीं किया। इसलिए मुझे फिर आना पड़ा है। मुझे बेंत मारने की इच्छा हो तो मारिए।'

हेमचन्द्र लज्जित होकर बोले, 'स्त्री-जाति पर मैं हाथ न उठाऊंगा। तुम क्यों आई हो ? मृणालिनी कहां है ? तीसरे प्रहर तुमने कहा था कि वह नव-द्वीप में है। वह नव-द्वीप में क्यों आई ? मैंने उसकी चिट्ठी न पढ़कर भूल की।'

'मृणालिनी को यहां आपको देखने आई हैं।'

मृणालिनी को उन्होंने कुलटा समझ अपमानित किया था ? वह बोले, 'मृणालिनी कहां है ?'

'वह आपसे जन्म भर के लिए विदा लेने आई हैं। सरोवर के किनारे खड़ी हैं, आप चलें।'

यह कहकर गिरिजाया चली गई। हेमचन्द्र उसके पीछे-पीछे दौड़े। गिरिजाया सरोवर के किनारे, जहां मृणालिनी बैठी थी, वहां पहुंच गई। हेमचन्द्र भी वहां आए। गिरिजाया ने कहा, 'मालकिन ! उठिए, राजपुत्र आए हैं।'

मृणालिनी उठ खड़ी हुई। दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा। मृणालिनी की आंखें आंसुओं से भर गई। वह अचेत होकर गिर पड़ीं। गिरिजाया वहां से हट गई।

हेमचन्द्र ने मृणालिनी को ऊपर उठाया। दोनों एक-दूसरे के समक्ष खड़े थे। इतने दिन पश्चात् दोनों की भेंट हुई थी।

मुख में क्या कोई शब्द नहीं था ? दोनों के मन में कहने-सुनने की कोई बात न थी ? दोनों का मन उन्मत्त था, बातचीत कैसे होती ? प्रणयी के सामने खड़े होने में इतना सुख था कि हृदय में अन्य किसी बात के लिए स्थान नहीं था।

वे एक-दूसरे का मुंह देखने लगे। हेमचन्द्र ने मृणालिनी की ओर फिर देखा तो हृषीकेश की बात की रुकावट नष्ट होने लगी। मृणालिनी के मुख पर पवित्रता लिखी थीं। हेमचन्द्र उसकी आंखों की ओर देखने लगे। वे उनके हृदय का दर्पण था। उनकी आंखों से प्रेमाश्रु बह रहे थे। जिसकी ऐसी आंखें हैं, वह अविश्वासिनी है ?

हेमचन्द्र बोले, 'मृणालिनी ! कैसी हो ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृणालिनी ने कोई उत्तर न दिया। उसका चित्त शान्त नहीं था। उत्तर देने की चेष्टा की, परन्तु आंखों से आंसू बरस पड़े। कण्ठ अवरुद्ध हो गया। कण्ठ से शब्द न निकला।

'तुम कैसे आई ?'

मृणालिनी फिर भी कोई उत्तर न दे सकी। हेमचन्द्र ने उसका हाथ पकड़कर सीढ़ियों पर बिठा दिया। वह स्वयं भी पास बैठ गए। मृणालिनी के मन में जो कुछ अस्थिरता थी, उसका इस आदर से लोप हो गया। धीरे-धीरे उनका सिर आप-ही-आप हेमचन्द्र के कन्धे पर झुक गया। मृणालिनी जान भी न सकी। मृणालिनी फिर फूट-फूट कर रो पड़ी। उसके आंसुओं से हेमचन्द्र का कंधा और छाती भीग गए। इस रोने में कितना सुख था इसे मृणालिनी ही समझ सकती थी।

हेमचन्द्र बोले, 'मृणालिनी ? मैंने तुम्हारे प्रति बहुत बड़ा अपराध किया है। मेरे अपराध को क्षमा कर दो। मैंने तुम्हारा नाम पर कलंक सुनकर उसे सत्य माना। विश्वास करने के कई कारण थे। उन्हें तुम दूर कर दो। मैं जो पूछता हूं, उसका उत्तर दो।'

मृणालिनी ने कंधे पर सिर उठाए बिना ही पूछा, 'क्या ?'

तुमने हृषीकेश का घर क्यों छोड़ा ?'

यह नाम सुनते ही क्रोध में आई सर्पिणी की तरह मृणालिनी ने सिर उठाया। वह बोली, 'हृषीकेश ने मुझे घर से विदा कर दिया।'

हेमचन्द्र कुछ व्यथित हुए। कुछ संदेह में भी आए। कुछ चिंता भी हुई। तभी मृणालिनी ने हेमचन्द्र के कन्धे पर सिर रख दिया।

हेमचन्द्र ने पूछा, 'हृषीकेश ने तुम्हें घर से क्यों निकाला ?'

मृणालिनी ने हेमचन्द्र की छाती में मुंह छिपा लिया। वह बहुत धीमे स्वर में बोली, 'तुमसे कैसे कहूं ! हृषीकेश ने मुझे कुल्टा कहकर निकाल दिया।'

सुनते ही तीर की तरह हेमचन्द्र उठ खड़े हुए। मृणालिनी का सिर उनकी छाती से हटकार सीढ़ी से टकराया।

'पापिनी ! अपने मुंह से स्वीकार करती है।' दम्भ से यह बात कहते हुए हेमचन्द्र वहां से चले गए। राह में गिरिजाया दीख पड़ी। वह चौंक पड़ी। हेमचन्द्र ने लात मारकर गिरिजाया को राह से हटा दिया। बोले , 'तू जिसकी दूती है, उसे लात मारने से मेरा पैर कलंकित होता।' यह कहकर हेमचन्द्र चले गए।

मृणालिनी सीढ़ी पर बैठी रही। गिरिजाया ने आकर पूछा, मालकिन ! क्या चोट अधिक आई है ?'

'कैसी चोट ?'

'माथे पर रक्त बह रहा है।'

'मुझे मालूम नहीं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

14

रात के समय एकान्त में धर्माधिकारी पशुपति शान्तशील से बोले, 'शान्तशील! सवेरे जो समाचार तुमने दिया, वह तुम्हारी दक्षता का परिचय-मात्र है। तुम्हे और कोई भार देने की इच्छा नहीं है अब।'

'वह असाध्य था, उसे मैं कर नहीं सका। अन्य कामों में परिचय ग्रहण करिए।'

'सैनिकों को क्या आदेश है ?'

'हम लोगों की आज्ञा के बिना कोई तैयार न हो।'

'कोष्टपालों को क्या आदेश है ?

'शीघ्र ही यवन-सम्राट के पास से कर लेकर कुछ मुसलमान दूत स्वरूप आने वाले है, उन्हें रोका न जाए।'

'दामोदर शर्मा आदेश के अनुसार कार्य करते हैं या नहीं ?'

'उन्होंने बड़ी चतुराई के साथ कार्य किया है।

'वह कैसे ?'

'उन्होंने एक पुराने ग्रन्थ के पृष्ठों के स्थान पर आपकी कविताओं को स्थान दिया है। आज वह पुस्तक उन्होंने राजा को सुनाई। उन्होंने माधवाचार्य की बहुत निन्दा की।

'कविता में गौड-विजेता के रूप का वर्णन विस्तार से था।'

'इस विषय में महाराज ने कोई खोज की ?'

'मदनसेन काशी से आए हैं। महाराज ने कविता में गौड-नेता के वर्णन सुनकर उन्हें बुलवा भेजा था। मदनसेन से महाराज ने पूछा, 'क्या तुम मगध में यवन-राजपति को देख आए हो ?'

'हां, तब महाराज बोले, 'वह देखने में कैसा है, बताओ ?'

मदनसेर ने बख्तियार खिलजी का जो रूप देखा था, वही प्रकट किया। कविता में भी वैसा ही था। इसलिए वह गौड़ा-विजय और अपने राज्य-नाश को निश्चित समझ गए।'

'फिर क्या हुआ ?'

'राजा रोने लगे। वह बोले, 'मैं इस बुढ़ापे में क्या करूं ? लगता है सपरिवार यवनों के हाथों विनाश होगा।'

दामोदर बोले, 'महाराज अवसर रहते आप तीर्थ-यात्रा करें। धर्माधिकारी को राज-भार दे जाइए। तभी आपकी रक्षा होगी। शास्त्र मिथ्या निकले तो आप लौट आएं।' राजा ने सन्तुष्ट होकर नाव तैयार करने की आज्ञा दी है। वह शीघ्र ही परिवार सहित तीर्थ-यात्रा पर जा रहे हैं।'

यह सूचना देकर शांतशील चला गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पशुपति ऊंचा वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे, परन्तु उस सब में कोई सुख नहीं था।

वह मन में सोच रहे थे, 'इतने दिन पश्चात् शायद मेरा अन्धकारपूर्ण जीवन उज्जवल हो उठेगा। जगदम्बा की कृपा से मनोरमा इस अन्धकार को दूर करेगी।'

यही सोचते-सोचते पशुपति ने देवी के मन्दिर में प्रवेश किया। उन्होंने देखा, वहां मनोरमा बैठा थी।

पशुपति बोले, 'मनोरमा ! तुम कब आई ?'

मनोरमा पूजा के फूलों से बिना सूत्र की माला गूंथ रही थी। उसने उनकी इस बात का कोई उत्तर न दिया।

पशुपति फिर बोले, 'मुझसे बातें करो मनोरमा ! तुम यहां रहती हो तो मैं सब कष्टों को भूल जाता हूं।'

मनोरमा मुंह उठाकर पशुपति के मुंह की ओर देखती रही। वह कुछ देर बाद बोली, 'आज मैं तुमसे कुछ कहने आई थी, परन्तु अब याद नहीं आ रहा कि मैं क्या कहने आई थी।'

पशुपति बैठ गए। मनोरमा माला गूंथती रही।

बहुत देर पश्चात् पशुपति बोले, 'मुझे भी तुमसे कुछ कहना है मनोरमा ! मैंने अब तक केवल विद्योपार्जन किया है। विषय की आलोचना और अर्थोपार्जन किया है। मैं संसार-धर्म को नहीं जानता। जैसा अनुराग रहा, वही किया। अब तुम्हारा लाभ मेरा एकमात्र ध्यान है। इसी के लिए मैंने यह कठोर व्रत लिया है। यदि देवी का अनुग्रह होगा तो राज्य-लाभ कर तुमसे विवाह करूंगा। विधवा कहकर इसमें विध्न है, उसे मैं शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा खंडित करूंगा।'

मनोरमा का ध्यान इन बातों की ओर नहीं था। पशुपति ने देखा, मनोरमा का चित्त खो गया था। पशुपति बोले, 'कुल-रीति श्रद्धामूलक नहीं है। इससे कुल-नाश, धर्म-नाश या जाति-नाश नहीं होता। हम लोग तुम्हारे पितामह के अनजाने भी यह विवाह सम्पन्न कर सकते हैं। बाद को तुम्हारे पितामह जानेंगे तो विवाह लौट नहीं सकता।'

मनोरमा ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया। एक बिल्ली उसके पास आकर बैठी थी। वह बिना सूत की माला उसके गले में पहना रही थी। माला खुल गई। मनोरमा फिर अपने सिर का एक बाल तोड़कर उससे माला गूंथने लगी।

पशुपति कोई उत्तर न पाकर चुपचाप मनोरमा की अंगुली की गति देखकर मुग्ध होकर उधर देखते रहे।

वह फिर बोले, मनोरमा ! रात अधिक हो गई है। मैं अब सोने जा रहा हूं ?'

'जाओ।' मनोरमा बोली।

पशुपति सोने न जाकर माला गूंथने लगे। फिर मनोरमा को डराने के लिए पशुपति बोले, 'मनोरमा ! यदि इसी समय यवन आ जाएं तो तुम क्या करोगी ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यहीं रहूंगी।' वह बोली।

'यहां तुम्हारी रक्षा कौन करेगा ?'

'यह सब मैं नहीं जानती।'

'तुम मुझसे क्या कहने के लिए आई थीं ?'

'मैं देवता को प्रणाम करने आई थी।'

पशुपति बोले, 'मैं तुमसे विनती करता हूं मनोरमा ! मैं जो कहता हूं, उसे ध्यान से सुनो। तुम कह दो कि मुझसे विवाह करोगी ?

मनोरमा माला गूंथ चुकी थी। वह उसे काली बिल्ली को पहिना रही थी। पशुपति ने चिढ़कर बिल्ली को थप्पड़ मारा। वह उठकर भाग गई। मनोरमा ने हंसते-हंसते वह माला पशुपति के गले में डाल दी।

पशुपति हतबुद्धि हो गए। क्रोध भी आया, परन्तु हास्यमय रूपमाधुरी देखकर उनका सिर चकरा गया। उन्होंने मनोरमा को बाहुओं में भरने के लिए हाथ फैलाए तो मनोरमा दूर हट गई।

पशुपति मनोरमा के मुंह की ओर न देख सके। उन्होंने देखा मनोरमा प्रौढ़ आयु की हंसमुख अनुपम सुन्दरी थी।

'मनोरमा ! बुरा न मानना। तुम मेरी पत्नी हो, मुझसे विवाह करो।'

मनोरमा तीव्र कटाक्ष डालकर बोली, 'पशुपति ! केशव की कन्या कहां है ?'

'मैं नहीं जानता वह कहां है? अब मैं जानना भी नहीं चाहता। तुम मेरी एकमात्र पत्नी हो।

'मैं बताऊं वह कहां है ?'

पशुपति मनोरमा के मुंह की ओर देख रहे थे।

मनोरमा बोली, 'एक ज्योतिषी ने बताया कि केशव की पुत्री अल्प आयु में विधवा होकर पति के साथ सती हो गयी। इसीलिए केशव अल्प आयु में ही अपनी पुत्री के बिछोह से भयभीत हो उठे। उन्होंने पुत्री का विवाह किया, परन्तु विवाह की रात को ही लड़की को लेकर प्रयाग भाग गए। वह चाहते थे कि उनकी लड़की स्वामी की मृत्यु का समाचार कभी न जान सके। कुछ दिन पश्चात् प्रयाग में केशव की मृत्यु हो गई। लड़की की माता पहिले ही मर चुकी थी। मृत्यु के समय केशव हेमवती को आचार्य के हाथों में सौंप कर बोले, 'मेरी लड़की को अपने घर रखें। इसके पति पशुपति हैं। परन्तु ज्योतिषी ने कहा है कि यह अल्प आयु में पति के साथ सती होगी। इसलिए आप इस लड़की से कभी यह न कहना कि पशुपति इसके स्वामी हैं। पशुपति से भी कभी प्रकट न कीजिए।'

आचार्य ने यह स्वीकार किया। उन्होंने यह बात सबसे छिपाकर रखी थी।

'इस समय वह कन्या कहां है ?'

'मैं ही केशव की लड़की हूं। जनार्दन शर्मा मेरे आचार्य हैं।'

पशुपति भयभीत से हो गए। उनका सिर चकरा गया। उन्होंने कुछ न कहकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी को साष्टांग प्रणाम किया। फिर उठकर मनोरमा को छाती से लगाने लगे। मनोरमा फिर हट गई। वह बोली, 'अभी नहीं, कुछ और भी बातें हैं।'

'मनोरमा ! तूने पहिले यह क्यों नहीं बताया ?

'क्या तुम मेरी बात का विश्वास करते ?'

'मनोरमा ! तुम्हारी बात का मैंने अविश्वास कब किया ? यदि मुझे भ्रम होता तो मैं जनार्दन शर्मा से पूछ लेता।'

'क्या जनार्दन उसे प्रकट करते ? उन्होंने शिष्य से प्रकट न करने की प्रतिज्ञा की थी।'

'तब उन्होंने तुमसे क्यों प्रकट किया ?'

'उन्होंने नहीं कहा। वह एक दिन ब्राह्मणी से कह रहे थे। मैंने छिपकर सुन लिया। लोगों के आगे निन्दनीय होकर तुम मुझे कैसे ग्रहण करते ?'

'मैं लोगों को समझा देता।'

'विधि-विधान को कैसे टालते ?'

'मैं ग्रह-शान्ति कराता। अच्छा, जो होना था सो तो हो गया। अब मुझे जो रत्न मिला है, उसे छाती से क्यों न लगाऊं ? अब तुम मेरा घर छोड़कर न जा सकोगी।

'यह घर छोड़कर जाना ही होगा पशुपति ! अब मैं आज जो कहने आई हूं, वह सुनो। यह घर छोड़ दो। राज्य प्राप्त करने की दुराशा त्याग दो। राजा के अहित की चेष्टा करना पाप है। चलो यह देश छोड़कर काशी चलें। वहीं मैं तुम्हारी चरण-सेवा कर अपना जन्म सार्थक करूंगी। जब हमारी आयु समाप्त होगी तब एक साथ परम-धाम की यात्रा करेंगे। यदि यह स्वीकार है तो मेरी भक्ति भी अचल है, अन्यथा....।'

'अन्यथा क्या ?'

मनोरमा आंखों में आंसू भरकर देवी की प्रतिमा के समक्ष हाथ जोड़कर बोली, 'नहीं, तो देवी के सामने शपथ लेकर कहती हूं कि हमारी इस जन्म में फिर कभी भेंट न होगी।'

पशुपति देवी के सामने हाथ जोड़कर बोले, 'मनोरमा ! मुझे भी शपथ है कि मेरा जीवन रहते तुम घर छोड़कर न जा सकोगी। मनोरमा ! मैंने जिस मार्ग पर कदम रखा है, उसे मैं लौटा नहीं सकता। मैं लौटा लेता और काशी की यात्रा करता, परन्तु अब लौटाने का समय नहीं रहा।

जो होना था सो हो गया। क्या इसी के लिए तुम मुझे मेरे चरम सुख से वंचित करोगी ? तुम मेरी स्त्री हो, मैं तुम्हें गृहिणी बनाऊंगा। एक क्षण ठहरो, मैं अभी आता हूं।'

यह कहकर पशुपति मन्दिर से बाहर गए। मनोरमा के चित्त में संशय हुआ। वह कुछ देर मन्दिर में खड़ी रही। अब पशुपति से विदा लिए बिना वह जा नहीं सकती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ी देर में पशुपति लौटे। वह बोले, 'प्राणाधिके ! अब तुम मुझे छोड़कर न जा सकोगी। मैं सब दरवाजे बन्द कर आया हूं।'

मनोरमा महल में बन्द हो गई।

15

सत्रह यवन सवार तीव्र गति से राज-भवन की ओर आ रहे थे। उन्हें देखकर नव-द्वीपवासी धन्यवाद देने लगे। वे चुपचाप राजपुर की ओर चले गए। कौतूहलवश किसी नगरवासी ने उनसे कुछ पूछा तो वे बोले, 'हम यवन-राजा के दूत है।' पशुपति की आज्ञा से यही परिचय देकर उन लोगों ने नगर में प्रवेश किया।

वे सब सवार राज-द्वार पर पहुंचे। पशुपति के कौशल से राज-पुरी रक्षकहीन थी। राज-सभा भंग हो गई थी। पुरी में केवल पुरवासी थे। चन्द दरबान द्वारों की रक्षा कर रहे थे। एक दरवान ने पूछा, 'तुम लोग किसलिए आए हो ?'

'हम लोग यवन राजा के दूत हैं। गौड़ेश्वर से भेंट करेंगे।'

'गौड़ेश्वर इस समय अन्तःपुर में हैं। अभी भेंट न हो सकेगी।'

यवन दरबान का कहना न मानकर द्वार में प्रवेश करने लगे। दुर्भाग्यवश दरबान उन्हें रोकने के लिए हाथ में शूल लेकर सामने आ गया। वह बोला, 'लौट जाओ नहीं तो मार दूंगा।

'क्या तुम्हें ही पहिले खत्म करूं ?' कहकर यवन ने दरबान को तलवार से काट डाला। दरबान को मारकर बोला, 'अपना-अपना काम करो ?' अन्य सवारों ने भीषण जय-ध्वनि की। उनके हाथों में तलवारें चमकने लगीं। उन्होंने दरवानों पर आक्रमण किया। दरबान तैयारी में नहीं थे, इसलिए देखते-ही-देखते सब मारे गए।

यवन बोला, 'यहां जिसे पाओ, उसे मारो। पुरी अरक्षित है। राजा को भी मार डालो।'

तब यवनों ने बिजली की तरह पुरी में प्रवेश कर बालक, वनिता, जहां जो मिला, उसका सिर तलवार से काट दिया।

लोग-बाग आर्तनाद कर इधर-उधर भागने लगे। यह घोर आर्तनाद वृद्ध राजा के पास तक भी पहुंचा ! उनका हलका सूख गया। उन्होंने पूछा, 'क्या यवन आ गए।'

किसी ने कहा यवन सबको मारकर आपका वश करने आ रहे हैं।'

राजा के हाथ से ग्रास गिर गया। उनका बदन कांपने लगा।

राजरानी बोलीं, 'आप उठिए।' यह कहकर उन्होंने उनका हाथ पकड़कर उठाया। राजा कांपते हुए खड़े हो गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रानी बोलीं, 'चिन्ता की क्या बात है ? नाव पर सब समान पहुंच गया है। चलिए हम लोग खिड़की की राह से निकल चलें।'

उन्होंने गुप्त राह से निकलकर सुवर्ण गांव की यात्रा की।

सोलह साथियों को लेकर बख्तियार खिलजी ने पशुपति के पास अपना दूत भेजा और भेंट की इच्छा प्रकट की। उनके साथ जो सन्धि-बन्धन हुआ था, उसके फलित होने का समय आ गया।

पशुपति इष्ट देवी को प्रणाम कर क्रुद्ध मनोरमा से विदा ले, उल्लसित और सशंकित बख्तियार खिलजी के पास पहुंचे। बख्तियार खिलजी ने उठकर उनका स्वागत किया और कुशल-मंगल पूछा। पशुपति राजा के दरबानों के खून में पैर रंगकर वहां आए थे, इसलिए उत्तर न दे सके। बख्तियार खिलजी उनके चित्त का भाव जानकर बोले, 'पंडितजी ! राजसिंहासन की राह फूलों की राह नहीं होती। इस पर चलने के लिए मित्रों की लाशों को पैरों से रौंदना पड़ता है।'

पशुपति बोले, 'सही है, परन्तु जो विरोधी हो, उसका ही तो वध आवश्यक है। ये सब तो निर्विरोधी थे।'

'क्या आप खून देखकर जो स्वीकार किया है, वह नहीं करना चाहते ?'

'मैंने जो स्वीकार किया है, वह अवश्य स्वीकार करूंगा। आप भी अपना वचन पालन करेंगे, इसमें कोई संशय नहीं है।'

'कुछ संदेह नहीं। हमारी केवल एक मांग है।'

'कहिए।'

'कुतुबद्दीन ने गौड़-शासन आपको दिया। अब से आप बंग-राज प्रतिनिधि होंगे, परन्तु यवन-सम्राट ने लिखा है कि आपको इस्लाम-धर्म स्वीकार करना होगा।'

पशुपति बोले, 'संधि के समय तो इस प्रकार की कोई शर्त नहीं रखी गई थी।'

'अगर न थी तो वह भूल हुई थी। आप जैसे बुद्धिमान व्यक्ति को समझ लेना चाहिए था कि मुसलमान बंगाल को जीतकर हिन्दू के हवाले नहीं कर सकते ?'

'मैं आपके सामने बुद्धिमान साबित नहीं हो सका।'

'तो अब आप राज्य प्राप्त करने के लिए इस्लाम-धर्म ग्रहण करने को उद्यत हो जाइए।'

'मैं राज्य प्राप्त करने के लिए अपने धर्म का परित्याग नहीं करूंगा।'

'यह आपकी भूल है। आपके सनातन धर्म में भूल ही होती है। कुरान का धर्म सच्चा है।'

पशुपति उसकी शठता को समझ गए थे। उसका अभिप्राय यह था कि ऐसा होने से संधि भंग हो जाएगी। वह समझ गए कि यह कार्य छल से न होगा तो वे बल से करेंगे। इसलिए कपटी के साथ कपट का सहारा लेना ही उन्होंने उचित समझा। वह बोले, 'मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा।'

बख्तियार उनके मन का भाव समझ गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बख्तियार बोले, 'अच्छी बात है। आज हम लोगों का प्रथम दिन है। ऐसे काम में देर की आवश्यकता नहीं। हम आपको मुसलमान-धर्म से दीक्षित कर देंगे।'

पशुपति बोले, 'मुझे कुछ देर का अवसर दीजिए। मैं अपने परिवार को भी ले आऊं। मैं सपरिवार दीक्षित हूंगा।'

बख्तार ने कहा, 'मैं उन्हें यहीं बुलाने को आदमी भेजता हूं। आप इस पहरेदार के साथ जाकर विश्राम करें।'

सिपाही ने पशुपति को पकड़ा। पशुपति क्रूद्ध होकर बोले, 'तो क्या मैं अब आपका बन्दी हूं ?'

बख्तियार बोले, 'अभी यही समझिए।'

पशुपति एक महल में बन्द कर दिए गए। मकड़ी अपने ही जाल में स्वयं फंस गई।

उसी रात को महावन से बीस हजार यवन आकर नव-द्वीप में फैल गए। नव-द्वीप यवनों द्वारा जीत लिया गया।

16

पशुपति घर से चलते समय मनोरमा को घर के ही अन्दर बन्द करके शान्तशील को घर की रक्षा के लिए छोड आए थे।

पशुपति के जाते ही मनोरमा भागने का उद्योग करने लगी। घर का कोना-कोना ढूंढ़ने लगी। उसे कोई मार्ग दिखाई न दिया। बहुत ऊंचाई पर खिड़कियां थीं। उनमें मनुष्य निकल सकता था।

मनोरमा ने वहीं से निकलने की बात सोची।

मनोरमा कुछ देर पशुपति के पलंग पर लेटी रही। पलंग से रोशनदान पर चढ़ना सहज ही था। वह रोशनदान पर चढ़ गई। उससे सटा एक आम का वृक्ष था। मनोरमा उसे पकड़कर बाहर निकल गई। कोमल शाखा झुकी और वह भूमि पर थी। मनोरमा जर्नादन के घर की ओर चली।

नव-द्वीप नगर में यवन-आतंक छा गया था। राज-पथ सवारों, पैदलों, खंगी, धनुषी, भाले आदि धारण किए सिपाहियों से भर उठा। राजधानी के नागरिक डरकर अपने-अपने घरों में घुस गए। लोग द्वार बन्द कर भय से इष्टदेव का जाप करने लगे।

यवनों ने जिसे भी पाया उसको मौत के घाट उतार दिया। उन्हें मारकर बन्द मकानों पर भी आक्रमण किया। कहीं दरवाजा तोड़कर और कहीं दीवार फांदकर घरों में प्रवेश करने लगे। घरों में घुसकर गृहस्थों का सर्वस्व लूट-खसोट लिया। वे स्त्री-पुरुष-बालक-वृद्ध सबके सिर काटने लगे। केवल युवतियों के लिए उनका स्वतंत्र

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम था।

सड़कों पर रक्त की कीचड़ हो गई। यवन-सेना रक्त से लाल हो गई। लूटे हुए माल से घोड़ों की पीठें दुखने लगीं। ब्राह्मणों के यज्ञोपवीत घोड़ों के गलों में लटकने लगे। शालिग्राम की मूर्तियां यवनों के पैरों से ठुकराई जाने लगीं।

भयानक नाद से आकाश गूंज उठा। घोड़ों की टापों, सैनिकों के चिल्लाने, हाथी की चिंघाड़ों यवनों के जय-नाद, घायलों की कराह से वातावरण आच्छादित हो गया।

जिस वीर पुरुष को माधवाचार्य यवनों के दमन के लिए नव-द्वीप में लाए थे वह उस समय अपने शयन-मन्दिर में शय्या पर आराम के साथ सोया हुआ था। जब नगर के आक्रमण का कोलाहल उसके कानो तक पहुंचा तो उसने दिग्विजय से पूछा, 'यह सब क्या दिग्विजय ?'

'यवन-सेना ने नगर पर आक्रमण कर दिया है।'

हेमचन्द्र चौंक पड़े। उन्होंने बख्तियार के राजपुरी पर अधिकार और राजा के भागने का समाचार सुना। दिग्विजय ने हेमचन्द्र को सब कुछ सुनाया।

हेमचन्द्र बोले, 'नागरिक क्या कर रहे हैं ?'

'जो भाग सकता है वह भागा जा रहा है। जो नहीं भाग सकता वह मारा जा रहा है।'

'और गौड़ीय सेना ?'

'वह किसके लिए युद्ध करे ? राजा भाग गए। ये सब अपनी-अपनी राह देख रहे हैं।'

'मेरा घोड़ा कसो।'

'तुम कहां जाओगे ?'

'नगर में।'

'अकेले ?'

'हां।'

हेमचन्द्र ने भौंह तरेरी तो दिग्विजय भयभीत होकर घोड़ा कसने लगा।

हेमचन्द्र शस्त्रास्त्रों से सज्जित होकर घोड़े पर सवार हुए और भीषण शूल हाथ में लेकर असीम यवन-सेना में घुस गए।

उन्होंने देखा कि अब वे युद्ध नहीं कर रहे थे, केवल लूट रहे थे। यवनों ने दल बांधकर हेमचन्द्र को मारने का कोई उद्योग नहीं किया। जिस यवन ने उनसे युद्ध किया, वही मारा गया।

हेमचन्द्र ने मन में सोचा, वृक्ष के पत्ते तोड़ने से जंगल समाप्त नहीं हो सकता? हेमचन्द्र गृहस्थों की रक्षा करने लगे परन्तु विशेष कृतकार्य न हो सके। एक दो यवन उनके साथ लड़ने लगते थे और तीसरा गृहस्थों का सर्वस्व हरण कर लेता था। तब हेमचन्द्र पीड़ितों का उपचार करने लगे। राह के किनारे एक कुटी में हेमचन्द्र को अर्तनाद सुनाई दिया। हेमचन्द्र उस घर में घुस गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर में यवन नहीं थे, उनके दौरात्म्य के चिह्न थे। एक घायल ब्राह्मण जमीन पर पड़ा आर्तनाद कर रहा था। उसकी मृत्यु समीप थी। हेमचन्द्र को देखकर वह यवनों के भ्रम में बोला, 'आओ—मारो—मेरा सिर काटकर उस राक्षसी को दे दो। ओह ! प्राण जाता है, पानी ! पानी, कौन पानी देगा ?'

'तुम्हारे घर में पानी है ?'

'नहीं मालूम—पानी— पानी ! पानी ! पिशाची के कारण मेरा प्राण गया।'

हेमचन्द्र ने एक घड़े में पानी देखा। पत्ते से उसे पानी पिलाना चाहा। ब्राह्मण बोला, 'नहीं ! नहीं ! पानी नहीं पीऊंगा ! यवन के हाथ से पानी नहीं पीऊंगा।'

'मैं यवन नहीं, हिन्दू हूं। तुम मेरे हाथ का पानी पी सकते हो।'

ब्राह्मण ने पानी पिया। हेमचन्द्र बोले, 'मैं तुम्हारा और क्या उपचार करूं ?'

'और क्या करोगे तुम ! मैं मरा ! मरते के लिए क्या करना है ?'

'तुम्हारे कोई है तो उसे मेरे संरक्षण में दे दो।'

'मेरा और कौन है ? वही राक्षसी है। उससे कहना कि मेरे अपराध का बदला मिल गया।'

'वह कौन है, किससे कहूं ?'

'कौन ? उसे तुम नहीं पहिचानते ? वह मृणालिनी है ?'

ब्राह्मण अधिक कराहने लगा। हेमचन्द्र ने मृणालिनी का नाम सुनकर पूछा, 'मृणालिनी तुम्हारी कौन है ?'

'मृणालिनी मेरी कौन है ? कौन नहीं, वह यम है मेरी।'

मृणालिनी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?'

'क्या बिगाड़ा है ? कुछ नहीं है। मैंने उसकी दुर्दशा की थी, उसका बदला पाया है मैंने।'

'तुमने क्या दुर्दशा की थी उसकी ?'

'अब बोल नहीं सकता, पानी पिला दो।

हेमचन्द्र ने फिर पानी पिलाया। ब्राह्मण के पानी पीकर स्थिर होने पर हेमचन्द्र ने उससे पूछा, 'तुम्हारा क्या नाम है ?'

'व्योमकेश।'

हेमचन्द्र की आंखों से आग की चिनगारियां निकलने लगीं। हाथ के शूल की मुट्ठी कस गई, परन्तु फिर शान्त होकर उन्होंने पूछा, 'तुम कहां के रहने वाले हो?'

'गौड़ को तुम नहीं जानते ? मृणालिनी हमारे घर रहती थी।'

'फिर ?'

'फिर क्या ? इसके बाद मेरी यह दशा हुई। मेरी ओर उसने पलटकर भी न देखा। क्रोध में मैंने अपने पिता के समक्ष उस पर झूठा कलंक लगाया था। पिता ने उसे सही मानकर बिना दोष के उसे घर से निकाल दिया। राक्षसी ! वह हमें छोड़कर चली गई।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तब तुम उसे गाली क्यों दे रहे हो ?'

'क्यों ? मैं गाली क्यों न दूं ? मृणालिनी ने मेरी ओर देखा भी नहीं। मैं उसे देखकर जीवन धारण करता था। वह चली आई। तभी से मैंने सब कुछ त्याग दिया। उसके लिए कहां-कहां नहीं गया। कहां उसे नहीं ढूंढा ? गिरिजाया की ताई ने बताया कि वह नव-द्वीप में है। नव-द्वीप में भी कुछ पता नहीं चला। यहां मैं एक यवन के हाथों मारा गया। मुझे पाप का फल मिल गया।'

व्योमकेश कुछ आगे न बोल सका। वह बिल्कुल निर्जीव पड़ा था। उसका दीपक बुझ गया। व्योमकेश ने प्राण त्याग दिए।

हेमचन्द्र यवनों के वध की बात छोड़कर अपने घर की ओर लौटे।

17

हेमचन्द्र मृणालिनी को सीढ़ियों के पत्थर की चोट से व्यथित कर वहीं पड़ी जहां छोड़ गए थे मृणालिनी अब भी वहीं थी। उसके लिए संसार में अन्य काई स्थान नहीं था। सवेरा हुआ, गिरिजाया बोली, 'मृणालिनी !'

उसने उत्तर न दिया। वह सिर झुकाए बैठी रही। स्नान और भोजन का समय हुआ तो गिरिजाया ने उसे स्नान कराया। स्नान करके मृणालिनी गीले कपड़ों से वहीं बैठी रही। गिरिजाया भी भूखी थी। उसने समीप के वन से कुछ फल लाकर मृणालिनी को दिए। मृणालिनी उन्हें न खा सकी। वे गिरिजाया ने ही खाए।

इसी तरह संध्या हो गई। गिरिजाया ने देखा कि मृणालिनी फिर भी घर जाने के लिए उद्यत न थी। गिरिजाया ने सीढ़ी के ऊपर ही अपना बिस्तर लगा लिया। मृणालिनी उसका मतलब समझकर बोली, 'तू घर जाकर सो जा गिरिजाया ?'

गिरिजाया बोली, 'मैं अकेली नहीं जा सकती।'

'तू चल, मैं भी आ रही हूं।'

'कब तक मैं तुम्हारे आश्रित रहूंगी ? भिखारिणी को जमीन पर सोने में क्या हानि है ? यदि साहस पाऊं तो कहूं कि राजपुत्र से तुम्हारा इस जीवन का सम्बन्ध ा छूट गया। तब हम ओस में कष्ट क्यों सहें ?'

'गिरिजाया ! उनसे इस जन्म में सम्बन्ध न छूटेगा। मैं कल भी उनकी दासी थी और आज भी उनकी दासी हूं।'

गिरिजाया चिढ़कर बोली, 'तुम उनकी दासी हो तो मैं चली। अब मेरी यहां कोई आवश्यकता नहीं।'

'गिरिजाया ! यदि उन्होंने तुम्हें कष्ट दिया है तो तुम दूसरों के आगे उनकी निन्दा करना। उन्होंने मुझपर कोई अत्याचार नहीं किया। मैं क्यों उनकी निन्दा सहूं ? वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजपुत्र है, मेरे पति हैं, उन्हें पाखण्डी न कहो।'

गिरिजाया और भी चिढ़ी। वह बोली, 'पाखण्डी न कहूं ? एक बार नहीं, दस बार कहूंगी, सौ बार कहूंगी हजार बार कहूंगी। पाखण्डी न कहूं किस दोष पर उन्होंने तुम्हारा अपमान किया ?'

'यह मेरा ही दोष है। मैं उन्हें समझाकर बात न कह सकी। क्या कहने को था और क्या कह गई ?'

'अपना सिर छूकर देखो।'

मृणालिनी ने सिर पर हाथ फेरा।

'क्या देखा ?'

'दर्द है।'

'दर्द कैसे हुआ ?'

'याद नहीं।'

'तुमने हेमचन्द्र के कंधे पर माथा रखा हुआ था। वह उसे पटककर चले गए। पत्थर पर गिरने से तुम्हारे सिर में चोट लगी है।'

'याद नहीं, हो सकता है कि मैं आप ही गिर गई होऊं।'

गिरिजाया विस्मय से बोली, 'इस संसार में तुम सचमुच सुखी हो मृणालिनी ?'

'घर चलो। नगर में कैसा शोर है ?'

शोर सुनकर दोनों को शंका हुई। गिरिजाया बोली, 'अब होशियार हो जाना चाहिए।'

'यदि ये यहां आए तो ?' मृणालिनी चुप रह। गिरिजाया ने सोचा कि वे वन में छिप जाएंगी।

मृणालिनी बोली, 'गिरिजाया ! शायद मेरा सर्वनाश अब बहुत निकट है।'

'वह कैसे ?'

'अभी एक सवार गया था। नगर में घोर युद्ध हो रहा है। प्रभु इस युद्ध में गए होंगे तो न मालूम किस विषद् में पड़े।'

गिरिजाया ने कोई उत्तर न दिया। मृणालिनी ने देखा गिरिजाया लेट गई थी।

मृणालिनी भी भूख और निद्रा के कारण दुर्बल हो गई थी। वह मानसिक यंत्रणा सह रही थी। उसे नींद आ गई। नींद में उसने एक स्वप्न देखा। उसने देखा हेमचन्द्र अकेले समर में विजयी हुए। मृणालिनी विजयी वीर को देखने के लिए राह में खड़ी थी। वह सेना मृणालिनी को गिराकर पैरों से कुचलती हुई चली गई। तब हेमचन्द्र ने अपनी घोड़ी से उतरकर उसे उठाया। वह बोली, 'प्रभु ! बहुत कष्ट उठाया है। अब दासी का त्याग न करता।' हेमचन्द्र बोले, 'अब कभी तुम्हें न छोड़ूंगा।' यह सुनकर उसकी नींद खुल गई। उसने जागते ही सुना, 'अब तुम्हें कभी न छोड़ूंगा।' उसने जो देखा, उस पर उसे विश्वास न हुआ। उसने देखा, हेमचन्द्र सामने खड़े थे। वह कह रहे थे, 'क्षमा करो देवी !' अब कभी तुम्हें न छोड़ूंगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरभिमानी मृणालिनी ने फिर उनके गले में लगकर उनके कंधे पर सिर टिका दिया।

मृणालिनी को हेमचन्द्र उपवन-गृह की ओर ले चले। हेमचन्द्र उन्हें एक बार अपमानित कर, त्याग कर चले गए थे। फिर स्वयं उसे हृदय में ग्रहण किया। यह देखकर गिरिजाया विस्मय में आई, परन्तु मृणालिनी ने न कुछ पूछा, न कुछ कहा। वह आनन्दविभोर हो आंखों से आसूं पौंछती हुई उनके साथ चल दी। गिरिजाया भी उनके साथ-साथ चल पड़ी।'

उपवन-वाटिका में दोनों अपने-अपने हृदय की पुरानी बातें खोलने लगे। जिन घटनाओं से हेमचन्द्र के चित्त में मृणालिनी के प्रति वैराग्य उत्पन्न हुआ था और जिन कारणों से उस वैराग्य का ध्वंस हुआ, वह हेमचन्द्र ने बताया। मृणालिनी ने हृषीकेश-गृह के त्याग और नव-द्वीप में आने की कथा सुनाई। दोनों ने आंखों से आंसू गिराए। दोनों एक-दूसरे की ओर देखकर हंसे। तभी चिड़ियों ने प्रभातोदय की सूचना दी तो दोनों ने विस्मय से पूछा, 'क्या रात बीत गई।

मृणालिनी को लेकर जब गिरिजाया उपवन-गृह में आई थी तो दिग्विजय ने उन्हें पहिचान लिया था। दिग्विजय ने सोचा था कि वे दोनों हम दोनों को देखने आई थीं। मालकिन युवराज को देखने आई थीं और यह मुझे। दिग्विजय ने मूंछों पर ताव देकर सोचा, 'भेंट क्यों न होगी ? परन्तु यह बड़ी पाजी है। एक दिन भी मुझसे अच्छी तरह न बोली। यह मुझे गाली ही देती है। तब क्या सम्भावना है कि मुझे देखने आई है ?' दिग्विजय एकान्त में जाकर सो गया। गिरिजाया ने भी उसे देख लिया।

उसकी पीठ पर झाड़ूं मारकर गिरिजाया बोली, 'अरे मरी ! घर भर में धूल जमी है। यह कौन है ? चोर है क्या ? पाजी ! राजा के घर में चोरी ?' कहकर वह फिर लेकर दौड़ी।

'अरी गिरिजाया ! यह तो मैं हूं।'

'मैं तुझे समझकर ही तो झाड़ू मार रही हूं।'

'गिरिजाया ! मैं दिग्विजय हूं।'

गिरिजाया की झाड़ूं तब भी न रुकी।

'गिरिजाया बोली, 'मेरी तेरी कब की भेंट है रे !' उसने रंग में भंग करने की ठहराई थी।

दिग्विजय वहां से भागा। गिरिजाया झाड़ूं लिए उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगी।

18

सवेरे हेमचन्द्र माधवाचार्य की खोज में निकले। गिरिजाया मृणालिनी के पास बैठी थी। आज सुख के दिन वह सुख की भागिनी क्यों न बनती ? वह उसी सहृदता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सुख की बातें क्यों न सुनती ? गिरिजाया भिखारिणी थी और मृणालिनी महा-धनी की कन्या, परन्तु दुःख के दिनों में गिरिजाया मृणालिनी की एक मात्र सुहृदय रही थी। गिरिजाया मृणालिनी की परम प्रिय थी।

गिरिजाया ने पूछा, 'तुमने इतने दिन से ये सब बातें प्रकट क्यों नहीं की ?'

'अब तक राजपुत्र ने कहने को मना किया था। अब उन्होंने प्रकट करने की अनुमति दे दी है, इसलिए प्रकट करती हूं।'

'अब सब बातें कहो ? मुझे सुनकर बहुत शान्ति मिलेगी।'

'मेरे पिता बौद्धमतावलम्बी सेठ हैं। वह मथुरा के राजा के प्रिय पात्र हैं। मथुरा की राजकन्या से मेरा सखी-भाव था।

मैं एक दिन राजकन्या के साथ जल-विहार को गई। वहां प्रबल आंधी से नाव डूब गई। राज-कन्याओं ने रक्षकों द्वारा रक्षा पाई और मैं बह गई। हेमचन्द्र नाव पर सैर कर रहे थे। इन्होंने पानी में मेरे बाल देखकर मुझे बचाया। यह मुझे न जानते थे। मैं भी इन्हें न जानती थी। अपने डेरे पर ले जाकर इन्होंने मेरे चिकित्सा कराई। होश में आने और अपना परिचय देने पर यह मुझे मेरी घर ले जाने लगे, परन्तु तीन दिन आंधी-पानी रुके नहीं। तीन दिन हमें एक साथ रहना पड़ा। दोनों ने दोनों का परिचय पाया। दोनों ने एक-दूसरे के अन्तःकाल का परिचय पाया। मेरी आयु तब पन्द्रह वर्ष की थी। मैं इनकी दासी हो गई, यह उस समय कुछ समझ न सकी। मैं हेमचन्द्र को देवता की तरह देखने लगी। इन्होंने कहा, 'विवाह करो।' चौथे दिन राजपुत्र के कुलपुरोहित ने हमारा विवाह करा दिया।

'कन्यादान किसने किया ?'

'अरुन्धती नामक मेरी एक कुटुम्बिनी ने। उन्होंने मुझे बचपन से खिलाया और पाला था। वह मेरे सब पाजीपन को सहती थीं। मैं, हेमचन्द्र, दिग्विजय, कुलपुरोहित और अरुंधत मौसी के अतिरिक्त इस विवाह को और कोई नहीं जानता। आज तुम्हें बताया है।'

'माधवाचार्य भी नहीं जानते ?'

'नहीं। वह जान जाते तो सर्वनाश हो जाता। मगधराज सुन लेते तो अनर्थ हो जाता। मेरे पिता बौद्ध है और वह बौद्धों के शत्रु थे।'

'अच्छा, तुम्हारे पिता यदि तुम्हें कुमारी समझते थे तो इतनी आयु होने पर भी तुम्हारा विवाह क्यों नहीं किया ?'

'उनका कोई दोष नहीं है इसमें। उन्होंने बहुत प्रयत्न किया। पिता बौद्ध दामाद चाहते थे। और फिर सुपात्र भी। इस तरह का एक उन्होंने खोजा भी, परन्तु मैंने स्वीकार न किया।'

इसी प्रकार की अनेकों बातें होती रहीं।

उधर हेमचन्द्र माधवाचार्य के पास पहुंचकर बोले, 'हम लोगों का सब प्रयत्न विफल हो गया। अब सेवक को क्या आज्ञा है ? यवनों ने नगर पर अधिकार कर लिया

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। मैं रात को युद्ध की आशा से नगर में गया, परन्तु युद्ध कहीं दिखाई न दिया।'

माधवाचार्य बोले, 'वत्स ! दुःखी न हो। देव-निर्देश कभी विफल न होगा। जब मैंने गणना की है कि यवन पराभूत होंगे, तो निश्चय ही पराभूत होंगे। यवनों ने नव-द्वीप पर अधिकार किया है, परन्तु नव-द्वीप गौड़ नहीं है। राजा राज-सिंहासन छोड़कर भाग गए हैं। गौड़-राज्य में अनेक राजे हैं। वे सब अभी हैं। कौन जानता है कि सब राजे मिलकर यवनों की जीत सकेंगे ?'

'इसकी सम्भावना बहुत कम है।'

माधवाचार्य बोले, 'ज्योतिष-गणना मिथ्या नहीं होगी। गौड़-राज्य बिल्कुल पूर्व नहीं है। कामरूप पूर्व है। शायद वही हम लोगों की आशा फलवती होगी।'

'परन्तु अभी तो यवनों की कामरूप जाने की कोई सम्भावना नहीं है।'

'यवन क्षण भर भी स्थिर नहीं रहते। गौड़ में स्थिर होकर ये कामरूप पर आक्रमण करेंगे।'

'इससे मेरे पिता के राज्य के उद्धार का क्या सम्बन्ध है ?'

'यवन बार-बार जय-लाभ कर विख्यात हो गए हैं। कोई इनका विरोध नहीं करना चाहता। जब इन लोगों के बल के एक बार पराजित होने से इनकी महिमा नष्ट हो जाएगी तब सब राजे शस्त्र उठाएंगे। सबके एक साथ शस्त्र धारण करने पर यवन न ठहरने पायेंगे ?

'गुरुदेव ! आप बहुत बड़े आशावादी हैं। मैंने वही किया है जो आपने आज्ञा की। अब आज्ञा दीजिए मैं क्या करूं ?'

'अब इस नगर में तुम्हारा रहना उचित नहीं है क्योंकि यवनों ने तुम्हें मरवा डालने का संकल्प किया हुआ है। तुम आज ही यह नगर छोड़ दो।'

'मैं कहां जाऊं ?'

'मेरे साथ कामरूप चलो।'

हेमचन्द्र सिर झुकाकर बोले, 'मृणालिनी कहां जाएगी ?'

'यह क्या ? मैं समझता था कि तुमने मृणालिनी को चित्त से निकाल दिया होगा।'

'मृणालिनी को छोड़ा नहीं जा सकता गुरुदेव ! वह मेरी विवाहिता पत्नी है।'

माधवाचार्य यह सुनकर चोंक पड़े। वह बोले, 'परन्तु मैं तो इस विषय में कभी कुछ जान ही न सका।'

तब हेमचन्द्र ने आद्योपान्त अपने विवाह की बात सुनाई। उसे सुनकर माधवाचार्य कुछ देर चुप रहे। फिर बोले, 'दुराचारिणी स्त्री शास्त्रानुसार त्याज्य है। मृणालिनी के चरित्र पर संशय है। वह मैंने तुम पर प्रकट किया था।'

तब हेमचन्द्र ने व्योमकेश का सब वृतान्त सुनाया। उसे सुनकर माधवाचार्य सानन्द बोले, 'वत्स ! मैं यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। मैंने तुम्हारी प्रियतमा और गुणवती भार्या को तुमसे पृथक् रखकर तुम्हें बहुत कष्ट दिया। अब मैं आशीर्वाद देता हूं कि लोग दीर्घजीवी हो। तुम्हें मैं अपने साथ कामरूप चलने का अनुरोध किया करता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं पहिले जाता हूं। जब समय देखूंगा, तब कामरूपाधिपति से तुम्हारे पास दूत भिजवाऊंगा। इस समय तुम बहू को लेकर मथुरा चले जाओ।'

हेमचन्द्र माधवाचार्य के पास से विदा हुए। माधवाचार्य ने उन्हें आशीर्वाद किया।

19

राजधानी में यवन-सेना का अत्याचार हो रहा था और पशुपति कारागर में थे। प्रातःकाल तक सैन्य-विप्लव समाप्त हुआ। तब मुहम्मदअली पशुपति के पास आए। पशुपति बोले, 'यवन ! अब मधुर भाषण की आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हारी बातों पर विश्वास करके इस दशा को प्राप्त हुआ हूं। मैं तुम्हारे विश्वास का फल पा चुका। अब मैंने मृत्यु को ही उचित समझकर सब आशाओं को छोड़ दिया हैं।'

मुहम्मदअली ने कहा, 'मैं मालिक की आज्ञा पालन कराने के लिए आया हूं। आपको मुसलमानी वस्त्र पहिनने होंगे।'

'मैंने मरने का निश्चय किया है। मैं प्राण-त्याग के लिए उद्यत हूं। मैं यवन-धर्म स्वीकार नहीं करूंगा।'

'मैं आपको अभी उसके लिए नहीं कहता। मैं केवल राजा की प्रसन्नता के लिए ये वस्त्र पहिनने को कह रहा हूं।'

'मैं ये न पहिनूंगा।'

'आप खुशी से न पहिनेगे तो मैं बलपूर्वक पहिनाऊंगा। इंकार का अर्थ अपमान माना जाएगा।'

पशुपति ने कोई उत्तर न दिया। मुहम्मदअली ने उन्हें मुसलमानी वस्त्र-पहिनाकर कहा, मेरे साथ चलिए।'

'कहां ?'

'आप बन्दी हैं, आपको यह पूछने का हक नहीं कि मैं आपको कहां ले जा रहा हूं।'

मुहम्मदअली उन्हें वहां से सिंहद्वार की ओर ले चला। जो आदमी पशुपति की रक्षा में नियुक्त थे, वे उनके साथ-साथ चले।

द्वार पर पहरेदारों के पूछने पर मुहम्मदअली ने अपना परिचय दिया। पहरेदारों ने राह छोड़ दिया। सिंहद्वार से निकलकर सड़क तक आए। उस समय यवन-सेना विश्राम कर रही थी। सड़क पर कोई उपद्रव न था। मुहम्मदअली बोला, धर्माधिकार! आपने व्यर्थ मेरा निरादर किया। मैंने बख्तियार खिलजी के इस इरादे को नहीं समझा था। ऐसा समझता तो कभी आपसे धोख्बाजी की बातें न करता। आप मेरी बात का विश्वास करके इस दशा को प्राप्त गए। मैंने उसका प्रायश्चित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगा-किनारे नाव लगी है। आप उस पर बैठकर जहां चाहें, चले जाएं, मैं विदा होता हूं।'

पशुपति हैरान रह गए। मुहम्मदअली बोला, आप इसी रात को यह नगरी छोड़ दें। यह काम मैंने खिलजी की आज्ञा के विरुद्ध किया है, यह पहरेदार गवाह है। इसे भी आप अपने साथे ले जाएं।'

यह कहकर मुहम्मदअली विदा हुआ। पशुपति गंगा-किनारे की ओर चल पड़े।

पशुपति धीरे-धीरे चले। सड़क पर जो दिखाई दिया उसे देखकर वह बहुत दुःखी हुए। उन्हें हर कदम पर शव पड़े हुए मिलने लगे। उनके पैर रक्त की कीचड़ में लथपथ होने लगे। राजपथ के दोनों किनारे के मकान जन-शून्य थे। घर जल गए थे। कहीं-कहीं अंगार अभी तक सुलग रहे थे। चारों और विनाश का साम्राज्य था। राजधानी श्मशान बन गई थी। पशुपति ने मन में स्वीकार किया कि उन्हें प्राणदंड मिलना ही चाहिए। वह क्यों मुहम्मदअली को कलंकित कर बन्दी-गृह से भागे ? यवन उन्हें पकड़ें और मनमाना दण्ड दें। उनके मन में आया कि वह फिर लौट चलें। उन्होंने मन-ही-मन इष्टदेवी का स्मरण किया। सोचा क्या कामना करें ? कमाल के लिए कोई विशेष विषय न मिला। उन्होंने आकाश की ओर देखा। उन्होंने तीव्र प्रकाश देखकर आंखें बन्द कर लीं। अकारण भय से वह आगे न बढ़ सके। वह बलहीन हो गए। विश्राम के लिए बैठते-बैठते देखा, एक शव पड़ा था। एकाएक उन्हें एक बात याद आई, उनका मकान ? क्या वह यवनों से बच रहा होगा ? जिसे वह उसमें छिपा आए थे, उनकी क्या दशा हुई होगी ? मनोरमा अब कहां होगी ? यवन-सेना के प्रवाह में वह कुसुमकली ने जाने कहां खो गई होगी।

पशुपति पागल की तरह अपने घर की ओर दौड़ पड़े। उन्होंने देखा कि वह आग से चल रहा था। वह जान न सके कि मनोरमा वहां से भाग गई थी।

पास में कोई नहीं था, जो उन्हें यह समाचार देता। वह कुछ देर तक आंखें फाड़-फाड़कर जलते महल को देखते रहे। क्षण-भर के लिए विकल शरीर से एक स्थान पर ठहरे, फिर वेग से उस अनल में कूद पड़े। साथ का सिपाही यह देखकर भौंचक्का रह गया।

पशुपति जलते हुए द्वार में घुस गए। वह अग्नि-कुण्ड पार कर अपने शयन-कक्ष में पहुंचे। जलते शरीर से कोठरी-कोठरी घूमने लगी। उनके हृदय में जो भयानक आग चल रही थी, उससे वह बाहरी जलन का अनुभव न कर सके।

उस अग्नि-कांड में पशुपति उन्मत्त होकर बोले, मां ! जगदम्बा न कहूंगा। अब तुम्हारी पूजा न करूंगा, तुम्हें प्रणाम न करूंगा। मां ! एक दिन के पाप से मैंने अपना सर्वस्व खो दिया। तुमने मेरी पाप-मति को दूर क्यों नहीं किया?'

आग प्रबल होकर गर्जन कर उठी। फिर भी पशुपति प्रतिमा के पास जाकर बोले, 'तुम धातु-मूर्ति मात्र हो, देवी नहीं। मैंने तुम्हें स्थापित किया था, मैं ही तुम्हारा विसर्जन करूंगा इष्टदेवी ! मैं ही तुम्हें गंगाजल में विसर्जित करूंगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पशुपति ने प्रतिमा उठानी चाही। आग फिर गर्जन कर उठी। जलता हुआ मन्दिर धूलि, धुआं और राख के साथ आग की चिनगारियां उगलता हुआ गिर गया।

पशुपति अष्टभुजा की अर्चना करते थे। उनकी नित्य की सेवा के लिए दुर्गादास ब्राह्मण नियुक्त थे। जब दुर्गादास ने सुना कि पशुपति का घर जल गया तो उन्होंने अष्टभुजा की मूर्ति को अपने घर में स्थापित करने का संकल्प किया। नगर लूटकर बख्तियार खिलजी ने व्यर्थ नगरवासियों को सताने को मना कर दिया था। इसलिए लोग-बाग सड़कों पर निकलने लगे थे। दुर्गादास भी पशुपति के मकान की ओर चले। जहां मन्दिर था, वहीं उन्होंने प्रवेश किया। उन्होंने देखा कि ईंटों का ढेर हटाए बिना देव की प्रतिमा नहीं निकल सकती थीं। ईंटों का ढेर हटाने पर दो प्रतिमाएं निकलीं। प्रतिमा के पैरों पर देखा एक मनुष्य का शव पड़ा था। वह शव पशुपति का था।

दुर्गादास पशुपति के शव को उठाकर गंगा-किनारे ले गए। उनका पुत्र भी उनके साथ था। वह पुत्र को शव की रक्षा में छोड़कर नगर में लकड़ी आदि का प्रबन्ध करने गए और यथासाध्य सुगन्धित लकड़ी संग्रह करके लौट आए।

दुर्गादास ने अपने पुत्र की सहायता से उन्हें स्नान कराकर सुगन्धित लकड़ी की चिता बनाई और उस पर पशुपति का शव उठाकर रख दिया।

तभी उन्होंने देखा कि एक सती उनके समक्ष खड़ी थी। ब्राह्मणों ने विस्मित होकर उसे देखा। वह एक मलिनवसना, सिर के बाल खोले, धूलि में सनी पागल स्त्री थी।

दुर्गादास ने पूछा, 'आप कौन हैं ?'

'तुम लोग किसका संस्कार कर रहे हो ?'

'मृत धर्माधिकारी पशुपति का।

'पशुपति की मृत्यु कैसे हुई ?'

'नगर में अफवाह है कि यह यवनों की कारा से किसी प्रकार रात को भागे थे। आज इनके महल के मन्दिर में मैं अष्टभुजा की प्रतिमा का उद्धार करने गया तो मैंने इनका शव वहां पड़ा देखा।'

रमणी गंगा किनारे रेती पर बैठ गई। बहुत देर चुपचाप रहने के पश्चात् बोली, 'तुम लोग कौन हो ?'

'हम ब्राह्मण हैं। हम धर्माधिकारी के अन्न से पालित हुए हैं। आप कौन हैं ?'

'मैं इनकी पत्नी हूं।'

'इनकी पत्नी तो बहुत दिन से लापता थीं। आप इनकी पत्नी कैसे हैं ?'

'मैं वही लापता केशव-कन्या हूं। मैं अभी इनकी चिता पर सती होकर अपने पत्नी होने का प्रमाण दूंगी।'

यह सुनकर पिता-पुत्र कांप उठे। विधवा बोली, 'अब मैं स्त्री-जाति का कर्त्तव्य पालन करूंगी। तुम लोग तैयारी करो।'

तैयारी के लिए ब्राह्मण फिर नगर गए। जाते समय विधवा ने दुर्गादास से कहा, 'तुम नगर में जा रहे हो। राजा की उपवन-वाटिका में हेमचन्द्र नामक एक परदेशी

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजपुत्र ठहरे हैं। उनसे कहना कि मनोरमा गंगा-किनारे चिता पर सती हो रही है। वह एक बार आकर मुझसे मिल जाएं।'

हेमचन्द्र ने जब ब्राह्मण से सुना कि मनोरमा पशुपति के साथ सती हो रही है, तो वह अवाक् रह गए। वह दुर्गादास के साथ गंगा-किनारे आए। वहां मनोरमा मलिन, उन्मादिनी-सी उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। उस मुख-कान्ति को देखकर उनकी आंखों में आंसू आ गए। उन्होंने कहा, 'मनोरमा बहिन ! यह क्या ?'

मनोरमा गम्भीर स्वर में बोली, 'भाई ! आज मैंने जीवन की चरम-सीमा को प्राप्त किया है। मैं अपने स्वामी के साथ जल रही हूं।'

मनोरमा संक्षेप में हेमचन्द्र से फिर बोली, 'मेरे स्वामी अपरिचित धन का संचय करके रख गए हैं। मैं अब उस धन की अधिकारिणी हूं। मैं उसे तुम्हें देती हूं। तुम उसे ग्रहण करो। उसमें से थोड़ा खर्च करके जनार्दन शर्मा को काशी में रख देना। जर्नादन को अधिक धन न देना। मेरे दाह के बाद तुम मेरे स्वामी के घर से जाकर धन निकाल लेना मनोरमा ने वह जगह बता दी जहां धन गड़ा था।

फिर ब्राह्मणों ने मनोरमा को यथाशास्त्र दीक्षित कराया और मनोरमा ने ब्राह्मण के लाए हुए वस्त्रों को धारण किया। पुष्पमाला गले में धारण कर वह पशुपति की जलती चिता की प्रदक्षिणा करके चिता पर चढ़ गई। वह हंसती हुइ चिता पर बैठ गई। हेमचन्द्र ने मनोरमा को नतमस्तक होकर प्रणाम करके प्रस्थान किया।

हेमचन्द्र ने मनोरमा के दिए धन का कुछ भाग जनार्दन को देकर उन्हें काशी भेज दिया। शेष धन उन्होंने माधवाचार्य के सामने रख दिया। माधवाचार्य बोले, 'इस धन से पशुपति के विनाशकारी बख्तियार खिलजी का विनाश किया जाएगा। दक्षिण समुद्र के किनारे के प्रदेश जनहीन पड़े हैं। तुम इस धन से वहां नया राज्य स्थापित करो और यवनों के दमन के लिए सेना एकत्रित करो। उसकी सहायता से पशुपति के शत्रुओं का विनाश करो।'

माधवचार्य ने उसी दिन हेमचन्द्र को नव-द्वीप से दक्षिण की ओर भेजा। पशुपति के धन को उन्होंने अपने साथ ले लिया। मृणालिनी, गिरिजाया और दिग्विजय उनके साथ चले। राज्य का संस्थापन करने में कठिनाई न हुई। यवनों के धर्म-द्वेष से पीड़ित लोग अपने प्राचीन निवास-स्थानों को त्यागकर हेमचन्द्र के नए स्थापित राज्य में चले आए।

माधवाचार्य की सलाह से बहुतेरे धनी लोग वहां जाकर रहने लगे। इस प्रकार बहुत जल्द वह राज्य सुदृढ़ हो उठा। धीरे-धीरे सेना भी एकत्रित होने लगी। बहुत जल्द एक सुन्दर राजपुरी बन गई। मृणालिनी ने उस राजपुरी की शोभा बढ़ाई।

गिरिजाया से दिग्विजय का विवाह हुआ। गिरिजाया मृणालिनी की सेवा में रही और दिग्विजय हेमचन्द्र की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

20

हेमचन्द्र ने नए प्रदेश में शक्ति का संगठन किया। माधवाचार्य ने गौड़-प्रदेश का एक बार फिर दौरा किया और सब राजाओं को यवनों के विरुद्ध संगठित किया।

जब हेमचन्द की सेना संगठित हो गई तो उन्होंने बख्तियार खिलजी पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

मृणालिनी बोली, 'प्राणनाथ ! इच्छा होती है कि मैं एक बार जाकर उस सती की चिता के दर्शन करूं जिसको आपके निकट देखकर... ।'

'तुम्हारे मन में यह भ्रम हो गया था कि हेमचन्द्र किसी रूपसी के सौंदर्य-जाल में फंस गया है।'

मृणालिनी चुप हो गई। उनके नेत्र लज्जा से झुक गए।

गिरिजाया मुस्कराकर बोली, 'महाराज ! क्षमा करें। यह भूल दासी से बन पड़ी थी। हमारी रानी मृणालिनी के मन में कभी एक क्षण के लिए भी यह भ्रम पैदा नहीं हुआ कि महाराज किसी अन्य के हो सकते है।

मृणालिनी द्वारा स्मरण कराने पर हेमचन्द्र के नेत्रों के समक्ष मनोरमा की मूर्ति साकार हो उठी। उन्हें मनोरमा की वे सभी बातें स्मरण हो आई जो उसने उनके मन में मृणालिनी के चरित्र के विषय में भ्रम पैदा हो जाने पर कही थीं।

हेमचन्द्र बोले, 'मृणालिनी ! उस देवी को मैं अंतिम समय तक नहीं समझ पाया। वह अद्‌भुत ज्ञान की भंडार थी। देखने में सरल और अनजान, परन्तु ज्ञान धारिणी थी वह। उस देवी को वास्तव में प्रेम की पहिचान थी। यह उसी ने कहा था कि सद्‌चरित्रा को तो सभी प्रेम करते हैं। प्रेमी वही है जो दुश्चरित्र को भी प्रेम करे।;

मृणालिनी बोली, 'नाथ ! क्या हमें कभी यह अवसर मिल सकेगा कि जब हम उस सती की समाधि स्थापित कर सकें। ?'

'अवश्य कर सकेंगे मृणालिनी ! वहीं वह देवी थी जिसने पशुपति के जाल में फंस जाने पर मेरे प्राणों की रक्षा की थी। उसी ने मुझे बताया था कि पशुपति ने मुझे मरवाने का प्रपंच रचा था।

वही पशुपति मनोरमा के पति थे मृणालिनी और उन्हीं की चिता पर जल कर वह देवी सती हुई। वह देवी आश्चर्यजनक थी। उसकी थाह पाना बहुत कठिन था। मैं अन्त समय तक यह नहीं जान पाया था कि पशुपति उसके पति हैं। मैं उसे विधवा समझता रहा।'

तभी हेमचन्द्र को माधवाचार्य का संदेश मिला कि उन्हें तुरन्त बख्तियार खिलजी पर आक्रमण के लिए कूच करना चाहिए।

हेमचन्द्र ने तुरन्त अपने सेनापति को कूच करने का आदेश दिया।

हेमचन्द्र की सेना ने कूच किया। भयंकर युद्ध हुआ और युद्ध में बख्तियार खिलजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अंत हुआ।

नव-द्वीप को हेमचन्द्र ने स्वतंत्र किया और माधवाचार्य ने हेमचन्द्र को नव-द्वीप का राजा घोषित किया।

नव-द्वीप से यवनों को निकालकर हेमचन्द्र और मृणालिनी उस स्थान पर गए जहां मनोरमा सती हुई थी और दोनों ने उस स्थान की मिट्टी को उठाकर अपने मस्तक पर लगाया।

मृणालिनी के आग्रह से हेमचन्द्र ने उस स्थान पर मनोरमा की समाधि स्थापित की।

■■■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

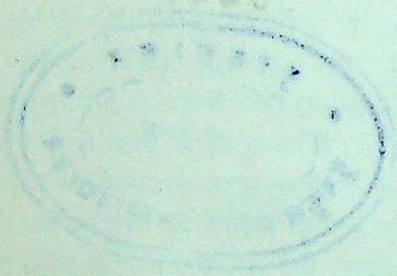

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY		
	Signature	Date
Acces		
Class		
Tag etc		
Filing		
E.A.R		
Any other		
Checked		

ARCHIVE COPY
2011-12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar